

प्रमचंद



२

प्रस्तुतकर्ता - अमृत राय

हंस प्रकाशन
इ ला हा बा द

© अमृत राय



मूल्य — आठ रुपया

प्रकाशक —	हंस प्रकाशन,	इलाहाबाद
मुद्रक —	सम्मेलन मुद्रणालय,	इलाहाबाद
आवरण - सज्जा —	कृष्ण चद्र	श्रीवास्तव
प्रथम सस्करण —	प्रेमचद स्मृति दिवस १९६२	

भूमिका

‘गुप्तधन’ के दो खण्डों में प्रेमचंद की छप्पन नयी कहानियाँ दी जा रही हैं। ये कहानियाँ इस अर्थ में नयी नहीं हैं कि इतनी नयी पाण्डुलिपियाँ मिली हैं। वह कैसे होता? कहानियों की जिस क्रमर माँग रहती है, साधारण जाने-माने लेखक के पास भी कहानी नहीं बचती, प्रेमचंद की तो बात ही और है।

ये कहानियाँ नयी इस अर्थ में हैं कि हिन्दी पाठकों के सामने पहली बार संकलित होकर आ रही हैं। हर कहानी के अंत में सूत्र का संकेत दिया हुआ है और जैसा कि आप देखेंगे, इनमें से अधिकांश कहानियाँ हमको मुंशीजी के उर्दू कहानी-संग्रहों और पुरानी पत्रिकाओं से मिली हैं और कुछ हैं जो हिन्दी की पुरानी पत्रिकाओं में दबी पड़ी थीं। क्यों ये कहानियाँ उर्दू से हिन्दी में नहीं आयीं या जो हिन्दी में हैं भी, क्यों उन्हें संकलित नहीं किया गया—यह मैं नहीं कह सकता। यही अनुमान होता है कि मुंशीजी चीखों के रख-रखाव के मामले में जिस क्रमर लापरवाह थे, समय पर उनको ये कहानियाँ न मिली होंगी, कटिंग न रखी होगी, फ़ाइल इधर-उधर हो गयी होगी, शायद कुछ कहानियाँ ध्यान से भी उतर गयी हों, जो भी बात रही हो, ये कहानियाँ छूट गयीं। गुमशुदा कहानियों का यह नया खजाना, यह गुप्त धन, आपके सामने रखते हुए मुझे वास्तव में बड़ा हर्ष हो रहा है—यही कि मेहनत ठिकाने लगी, एक ढंग का काम हुआ। ‘सोजे वतन’ की चार कहानियाँ भी, जो पहले और कहीं नहीं छपीं, इस किताब में शामिल कर ली गयी हैं। इस तरह इन कहानियों को लेकर प्रेमचंद की कुल कहानियों की संख्या २१० से २६६ हो जाती है। मेरा अनुमान है कि अभी तीस-चालीस कहानियाँ और मिलनी चाहिए। उर्दू-हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फ़ाइलें—और हिन्दी से भी ज्यादा उर्दू पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलें—आसानी से नहीं मिलतीं। अकसर खण्डित मिलती हैं। कम जाने-माने और साप्ताहिक-पाक्षिक पत्रों की तो प्रायः नहीं मिलतीं। उदाहरण के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी के ‘प्रताप’ की फ़ाइल का न मिलना बड़े ही कष्ट की बात है। मेरा विश्वास है कि उसमें मुंशीजी की कुछ कहानियाँ मिलनी चाहिए। इतना तो निश्चित है कि उसमें मुंशीजी की पहली हिन्दी कहानी है। एक चिट्ठी में इसका संकेत मिलता है। लेकिन वह कहानी कौन-सी है, कैसी है, किसी संग्रह में संकलित होकर प्रकाशित होती रही है या नहीं—यह सब कुछ भी पता नहीं चल सकता जब तक वह फ़ाइल देखने को न मिले। और कहीं न मिले, ‘प्रताप’ कार्यालय में ज़रूर मिलेगी, इस विश्वास से मैं वहाँ गया, पर निराश होना पड़ा। पर मैं पूरी तरह निराश नहीं हूँ और सच तो यह है कि पुराने पत्रों की

छानबीन अभी उस आत्यंतिक लगन से की भी नहीं जा सकी है जो कि अपेक्षित है। मुझे यक़ीन है कि अगले कुछ बरसों में मुझे या मेरे किसी और उत्साही भाई को और भी कुछ कहानियाँ मिलेंगी।

उर्दू से प्राप्त कहानियों को ज्यों का त्यों छाप देना हिन्दी पाठकों के प्रति अन्याय समझकर मैंने उनको हिन्दी का जामा पहनाया है—मुंशीजी की अपनी हिन्दी का, यानी जहाँ तक मुझसे हो सका। कहानी की आत्मा ही नहीं, भाषा और शैली की भी रक्षा करने के इस प्रयत्न में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है या नहीं मिली, इसका निर्णय तो आप करेंगे, पर मुझे संतोष है कि मैंने अपनी ओर से इसमें कुछ उठा नहीं रखा।

उर्दू संग्रहों में मुंशीजी की दो कहानियाँ 'बरात' और 'क्लातिल की माँ' ऐसी मिलीं जो हिन्दी में नहीं मिलतीं। मुझे उनको भी शामिल कर लेना चाहिए था। लेकिन मैंने उनको छोड़ देना ही ठीक समझा क्योंकि वही या लगभग वही कहानियाँ, बहुत थोड़े हेर-फेर के साथ, श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद के कहानी संग्रह 'नारी हृदय' में मिलती हैं। उनके शीर्षक क्रमशः 'बरयात्रा' और 'हृत्यारा' हैं। संग्रह में आने के पहले ये दोनों ही कहानियाँ 'हंस' में छपी थीं, खुद मुंशीजी ने उन्हें छपा था। मुंशीजी के नाम से ये कहानियाँ कब और कैसे उर्दू में छपने लगीं, इस रहस्य का उद्घाटन हुए बिना उन कहानियों को इस संग्रह में शामिल करना ठीक नहीं जान पड़ा। हो सकता है कि वे संग्रह मुंशीजी के देहान्त के बाद प्रकाशकों ने अपने मन से तैयार कर लिये हों। जो भी बात हो, वे कहानियाँ विवादास्पद हैं और उनको यहाँ शामिल नहीं किया गया।

'तांगेवाले की बड़' और 'शादी की वजह' सही मानों में कहानी की प्रेमचंदी परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आतीं, लेकिन अत्यंत रोचक हैं, कहानी के समान ही रोचक, उन्हें किसी तरह छोड़ा नहीं जा सकता था और लेखों के साथ उनको देना उनकी मिट्टी खराब करना होता क्योंकि वे लेख से ज्यादा कहानी के करीब हैं और उनकी चाशनी बिल्कुल कहानी की है, इसलिए उन्हें यहीं शामिल कर लिया गया है। ये दोनों ही चीजें 'जमाना' में छपी थीं और 'बंबूक' के नाम से छपी थीं। पता लगाने पर मालूम हुआ कि अपनी हलकी-फुलकी चीजों के लिए मुंशीजी कभी-कभी इस नाम का इस्तेमाल करते थे जो १९०५ के आसपास कानपुर में ही उन्हें अपने करीबी दोस्तों की महफ़िल में मिल चुका था।

अनुक्रम

१ पुत्र-प्रेम	११
२ इज्जत का खून	१८
३ होली की छुट्टी	२८
४ नादान दोस्त	४३
५ प्रतिशोध	४९
६ देवी	६१
७ खुदी	६३
८ बड़े बाबू	६९
९ राष्ट्र का सेवक	८०
१० आखिरी तोहफा	८१
११ क्रांतिल	९४
१२ बोहनी	१०६
१३ बंद दरवाजा	११२
१४ तिरसूल	११४
१५ स्वाँग	१२७
१६ सैलानी बंदर	१३८
१७ नबी का नीति-निर्वाह	१४८
१८ मंदिर और मसजिद	१५९
१९ प्रेम सूत्र	१७०
२० ताँगेवाले की बड़	१८४
२१ शादी की वजह	१९०
२२ मोटेराम जी शास्त्री	१९३
२३ पर्वत-यात्रा	१९९
२४ कवच	२१४
२५ दूसरी शादी	२२५
२६ सौत	२२८
२७ देवी	२३७
२८ पैपुजी	२५२
२९ क्रिकेट मैच	२५७
३० कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो	२७२

गुप्त धन - २

ebookspdf.in

पुत्र-प्रेम

१

बाबू चैतन्यदास ने अर्थशास्त्र खूब पढ़ा था, और केवल पढ़ा ही नहीं था, उसका यथायोग्य व्यवहार भी वे करते थे। वे वकील थे, दो-तीन गाँवों में उनकी जमींदारी भी थी, बैंक में भी कुछ रुपये थे। यह सब उसी अर्थशास्त्र के ज्ञान का फल था। जब कोई खर्च सामने आता तब उनके मन में स्वभावतः प्रश्न होता था — इससे स्वयं मेरा उपकार होगा या किसी अन्य पुरुष का ? यदि दो में से किसी का कुछ भी उपकार न होता तो वे बड़ी निर्दयता से उस खर्च का गला दबा देते थे। 'व्यर्थ' को वे विष के समान समझते थे। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त उनके जीवन-स्तम्भ हो गये थे।

बाबू साहब के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्रभुदास था, छोटे का शिवदास। दोनों कालेज में पढ़ते थे। उनमें केवल एक श्रेणी का अन्तर था। दोनों ही चतुर, होनहार युवक थे। किन्तु प्रभुदास पर पिता का स्नेह अधिक था। उसमें सदुत्साह की मात्रा अधिक थी और पिता को उसकी जात से बड़ी-बड़ी आशाएँ थी। वे उसे विद्योन्नति के लिए इंग्लैण्ड भेजना चाहते थे। उसे बैरिस्टर बनाना उनके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

२

किन्तु कुछ ऐसा सयोग हुआ कि प्रभुदास को बी० ए० की परीक्षा के बाद ज्वर आने लगा। डाक्टरों की दवा होने लगी। एक मास तक नित्य डाक्टर साहब आते रहे, पर ज्वर में कमी न हुई। दूसरे डाक्टर का इलाज होने लगा। पर उससे भी कुछ लाभ न हुआ। प्रभुदास दिनोदिन क्षीण होता चला जाता था। उठने-बैठने की शक्ति न थी। यहाँ तक कि परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का शुभ-सम्वाद सुनकर भी उसके चेहरे पर हर्ष का कोई चिन्ह न दिखायी दिया। वह सदैव गहरी चिन्ता में डूबा रहता था। उसे अपना जीवन बोझ-सा जान पड़ने लगा था। एक रोज चैतन्यदास ने डाक्टर साहब से पूछा — यह क्या बात है कि दो महीने हो गये और अभी तक दवा का कोई असर नहीं हुआ ?

डाक्टर साहब ने सन्देहजनक उत्तर दिया — मैं आपको सशय में नहीं डालना चाहता। मेरा अनुमान है कि यह ट्युबरक्युलासिस है।

चैतन्यदास ने व्यग्र होकर कहा — तपेदिक ?

डाक्टर — जी हाँ, उसके सभी लक्षण दिखायी देते हैं।

चैतन्यदास ने अविश्वास के भाव से कहा, मानो उन्हें कोई विस्मयकारी बात सुन पड़ी हो — तपेदिक हो गया !

डाक्टर ने खेद करते हुए कहा — यह रोग बहुत ही गुप्तरिति से शरीर में प्रवेश करता है।

चैतन्यदास — मेरे खानदान में तो यह रोग किसी को न था।

डाक्टर — सम्भव है, मित्रों से इसके जर्म (कीटाणु) मिले हों।

चैतन्यदास कई मिनट तक सोचने के बाद बोले — अब क्या करना चाहिए ?

डाक्टर — दवा करते रहिये। अभी फेफड़ों तक असर नहीं हुआ है। इनके अच्छे होने की आशा है।

चैतन्यदास — आपके विचार में कब तक दवा का असर होगा ?

डाक्टर — निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। लेकिन तीन-चार महीने में ये स्वस्थ हो जायेंगे। जाड़ों में इस रोग का जोर कम हो जाया करता है।

चैतन्यदास — अच्छे हो जाने पर ये पढ़ने में परिश्रम कर सकेंगे ?

डाक्टर — मानसिक परिश्रम के योग्य तो ये शायद ही हो सके।

चैतन्यदास — किसी सैनेटोरियम (पहाड़ी स्वास्थ्यालय) में भेज दूँ तो कैसा हो ?

डाक्टर — बहुत ही उत्तम।

चैतन्यदास — तब तो ये पूर्णरिति से स्वस्थ हो जायेंगे ?

डाक्टर — हो सकते हैं, लेकिन इस रोग को दवा रखने के लिए इनका मानसिक परिश्रम से बचना ही अच्छा है।

चैतन्यदास नैराश्य भाव से बोले — तब तो इनका जीवन ही नष्ट हो गया।

गर्मी बीत गयी। बरसात के दिन आये। प्रभुदास की दशा दिनोंदिन बिगडती गई। वह पड़े-पड़े बहुधा इस रोग पर की गई बड़े-बड़े डाक्टरों की व्याख्याएँ पढ़ा करता था। उनके अनुभवों से अपनी अवस्था की तुलना किया करता। पहले

कुछ दिनों तक तो वह अस्थिरचित्त-सा हो गया था। दो-चार दिन भी दशा सँभली रहती तो पुस्तकें देखने लगता और विलायत यात्रा की चर्चा करता। दो-चार दिन भी ज्वर का प्रकोप बढ़ जाता तो जीवन से निराश हो जाता। किन्तु कई मास के पश्चात् जब उसे विश्वास हो गया कि इस रोग से मुक्त होना कठिन है तब उसने जीवन की भी चिन्ता छोड़ दी। पथ्यापथ्य का विचार न करता, घरवालों की निगाह बचाकर औषधियाँ ज़मीन पर गिरा देता। मित्रों के साथ बैठकर जी बहलाता। यदि कोई उससे स्वास्थ्य के विषय में कुछ पूछता तो चिढ़कर मुँह मोड़ लेता। उसके भावों में एक शान्तिमय उदासीनता आ गई थी और बातों में एक दार्शनिक मर्मज्ञता पाई जाती थी। वह लोक-रीति और सामाजिक प्रथाओं पर बड़ी निर्भीकता से आलोचनाएँ किया करता। यद्यपि बाबू चैतन्यदास के मन में रह-रहकर शंका उठा करती थी कि जब परिणाम विदित ही है तब इस प्रकार धन का अपव्यय करने से क्या लाभ, तथापि वे कुछ तो पुत्र-प्रेम और कुछ लोक-मत के भय से धैर्य के साथ दवा-दर्पण करते जाते थे।

जाड़े का मौसम था। चैतन्यदास पुत्र के सिरहाने बैठे हुए डाक्टर साहब की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे थे। जब डाक्टर साहब टेम्परेचर लेकर (थर्मामीटर लगाकर) कुर्सी पर बैठे तब चैतन्यदास ने पूछा — अब तो जाड़ा आ गया। आपको कुछ अन्तर मालूम होता है ?

डाक्टर — बिलकुल नहीं, बल्कि रोग और भी दुस्साध्य होता जाता है।

चैतन्यदास ने कठोर स्वर में पूछा — तब आप लोग क्यों मुझे इस भ्रम में डाले हुए थे कि जाड़े में अच्छे हो जायेंगे ? इस प्रकार दूसरों की सरलता का उपयोग करना अपना मतलब साधने का साधन ही तो ही, इसे सज्जनता कदापि नहीं कह सकते।

डाक्टर ने नम्रता से कहा — ऐसी दशाओं में हम केवल अनुमान कर सकते हैं और अनुमान सदैव सत्य नहीं होते। आपको ज़ोरबारी अवश्य हुई, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी इच्छा आपको भ्रम में डालने की नहीं थी।

शिवदास बड़े दिन की छुट्टियों में आया हुआ था, इसी समय वह कमरे में आ गया और डाक्टर साहब से बोला — आप पिता जी की कठिनाइयों का स्वयं अनुमान कर सकते हैं। अगर उनकी बात नागवार लगी हो तो उसे क्षमा कीजिएगा।

चैतन्यदास ने छोटे पुत्र की ओर वात्सल्य की दृष्टि से देखकर कहा — तुम्हें यहाँ आने की क्या जरूरत थी। मैं तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ कि यहाँ मत आया करो। लेकिन तुमको सबर ही नहीं होती।

शिवदास ने लज्जित होकर कहा — मैं अभी चला जाता हूँ। आप नाराज न हों। मैं केवल डाक्टर साहब से यह पूछना चाहता था कि भाई साहब के लिए अब क्या करना चाहिए ?

डाक्टर ने कहा — अब केवल एक ही साधन और है। इन्हे इटली के किसी सैनेटोरियम में भेज देना चाहिए।

चैतन्यदास ने सजग होकर पूछा — कितना खर्च होगा ?

‘ज्यादा से ज्यादा तीन हजार। साल भर रहना होगा।’

‘निश्चय है कि वहाँ से अच्छे होकर आवेगे ?’

‘जी नहीं। यह तो एक भयकर रोग है, साधारण बीमारियों में भी कोई बात निश्चयरूप से नहीं कही जा सकती।’

‘इतना खर्च करने पर भी वे वहाँ से ज्यों के त्यों लौट आये तो ?’

‘तो ईश्वर की इच्छा। आपको यह तसकीन हो जायगी कि इनके लिए मैं जो कुछ कर सकता था, कर दिया।’

४

आधी रात तक घर में प्रभुदास को इटली भेजने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद होता रहा। चैतन्यदास का कथन था कि एक संदिग्ध फल के लिए तीन हजार का खर्च उठाना बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल है। शिवदास भी उनसे सहमत था। किन्तु उसकी माता इस प्रस्ताव का बड़ी दृढ़ता के साथ अनुमोदन कर रही थी। अन्त में माता की धिक्कारों का यह फल हुआ कि शिवदास लज्जित होकर उसके पक्ष में हो गया। बाबू साहब अकेले रह गये। तपेश्वरी ने तर्क से काम लिया। पति के सद्भावों को प्रज्वलित करने की चेष्टा की। धन की नश्वरता की लोकोक्तियाँ कहीं। इन शस्त्रों से विजय-लाभ न हुआ तो अश्रु-वर्षा करने लगी। बाबू साहब जल-बिन्दुओं के इस शर-प्रहार के सामने न ठहर सके। इन शब्दों में हार स्वीकार की — अच्छा भाई, रोओ मत। जो कुछ तुम कहती हो वही होगा।

तपेश्वरी — तो कब ?

‘रूपये हाथ में अपने दो।’

‘तो यह क्यों नहीं कहते कि भेजना ही नहीं चाहते ?’

‘भेजना चाहता हूँ किन्तु अभी हाथ खाली है। क्या तुम नहीं जानती ?’

‘बैंक में तो रूपये हैं ? जायदाद तो है ? दो-तीन हजार का प्रबन्ध करना ऐसा क्या कठिन है ?’

चैतन्यदास ने पत्नी को ऐसी दृष्टि से देखा मानो उसे खा जायेंगे और एक क्षण के बाद बोले — बिलकुल बच्चों की-सी बातें करती हो। इटली में ऐसी कोई सजीवनी नहीं रक्खी हुई है जो तुरन्त चमत्कार दिखायेगी। जब वहाँ भी केवल प्रारब्ध ही की परीक्षा करनी है तो सावधानी से कर लेगे। पूर्व पुरुषों की सचित जायदाद और रक्खे हुए रुपये मैं अनिश्चित हित की आशा पर बलिदान नहीं कर सकता।

तपेश्वरी ने डरते-डरते कहा — आखिर, आधा हिस्सा तो प्रभुदास का भी है ?

बाबू साहब तिरस्कार करते हुए बोले — आधा नहीं, उसको मैं अपना सर्वस्व दे देता, जब उससे कुछ आशा होती, वह खानदान की मर्यादा और ऐश्वर्य बढ़ाता और इस लगाये हुए धन के फलस्वरूप कुछ कर दिखाता। मैं केवल भावुकता के फेर में पडकर धन का ह्रास नहीं कर सकता।

तपेश्वरी अवाक् रह गयी। जीतकर भी उसकी हार हुई।

इस प्रस्ताव के छः महीने बाद शिवदास बी० ए० पास हो गया। बाबू चैतन्यदास ने अपनी जमींदारी के दो आने बन्धक रखकर कानून पढने के निमित्त उसे इंग्लैण्ड भेजा। उसे बम्बई तक खुद पहुँचाने गये। वहाँ से लौटे तो उनका अन्तःकरण सदिच्छाओं से परिपूर्ण था। उन्होंने एक ऐसे चलते हुए काम में रुपये लगाये थे जिससे अपरिमित लाभ होने की आशा थी। उनके लौटने के एक सप्ताह पीछे अभागा प्रभुदास अपनी उच्च अभिलाषाओं को लिये हुए परलोक सिंघारा।

५

चैतन्यदास मणिकर्णिका घाट पर अपने सम्बन्धियों के साथ बैठे चित्ता-ज्वाला की ओर देख रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। पुत्र-प्रेम एक क्षण के लिए अर्थ-सिद्धान्त पर गालिब आ गया था। उस विरक्तावस्था में उनके मन में यह कल्पना उठ रही थी — सम्भव है, इटली जाकर प्रभुदास स्वस्थ हो जाता। हाय ! मैंने तीन हजार का मुँह देखा और पुत्र-रत्न को हाथ से खो दिया। यह कल्पना प्रतिक्षण सजग होती जाती थी और उनको ग्लानि, शोक और पश्चात्ताप के बाणों से बेध रही थी। रह-रहकर उनके हृदय में वेदना की शूँसी उठती थी। उनके अन्तर की ज्वाला उस चित्ता-ज्वाला से कम दग्धकारिणी न थी। अकस्मात् उनके कानों में राहनाइयों की आवाज आयी। उन्होंने आँख ऊपर उठाई तो मनुष्यों का एक समूह एक अर्थी के साथ आता हुआ दिखाई दिया। वे सब के सब ढोल बजाते,

गाते, पुष्प आदि की वर्षा करते चले आते थे। घाट पर पहुँचकर उन्होंने अर्धी उतारी और चिता बनाने लगे। उनमें से एक युवक आकर चैतन्यदास के पास खड़ा हो गया। बाबू साहब ने पूछा—किस मुहल्ले में रहते हो ?

युवक ने जवाब दिया—हमारा घर देहात में है। कल शाम को चले थे। ये हमारे बाप थे। हम लोग यहाँ कम आते हैं, पर दादा की अन्तिम इच्छा थी कि हमें मणिकर्णिका घाट पर ले जाना।

चैतन्यदास—ये सब आदमी तुम्हारे साथ है ?

युवक—हाँ, और लोग पीछे आते हैं। कई सौ आदमी साथ आते हैं। यहाँ तक आने में सैकड़ों उठ गये पर सोचता हूँ कि बूढ़े पिता की मुक्ति तो बन गई। घन और है ही किसलिए।

चैतन्यदास—उन्हें क्या बीमारी थी ?

युवक ने बड़ी सरलता से कहा, मानो वह अपने किसी निज सम्बन्धी से बात कर रहा हो—बीमारी का किसी को कुछ पता नहीं चला। हरदम ज्वर चढ़ा रहता था। सूखकर काँटा हो गये थे। तीन वर्ष तक खाट पर पड़े रहे। जिसने जहाँ बताया वहाँ लेकर गये। चित्रकूट, हरिद्वार, प्रयाग सभी स्थानों में ले-लेकर घूमे। वैद्यो ने जो कुछ कहा उसमें कोई कसर नहीं की।

इतने में युवक का एक और साथी आ गया और बोला—साहब, मुँह देखी बात नहीं, नारायण लड़का दे तो ऐसा दे। इसने रुपयों को ठीकरे समझा। घर की सारी पूंजी पिता की दवा-दारू में स्वाहा कर दी। थोड़ी-सी जमीन तक बेच दी, पर काल बली के सामने आदमी का क्या बस है।

युवक ने गद्गद स्वर से कहा—भैया, रुपया-पैसा हाथ का मैल है। कहाँ आता है, कहाँ जाता है, मनुष्य नहीं मिलता। जिन्दगानी है तो कमा खाऊँगा। पर मन में यह लालसा तो नहीं रह गयी कि हाय ! यह नहीं किया, उस वैद्य के पास नहीं गया, नहीं तो शायद बच जाते। हम तो कहते हैं कि कोई हमारा सारा घर-द्वार लिखा ले, केवल दादा को एक बोल ब्ला दे। इसी माया-मोह का नाम जिन्दगानी है, नहीं तो इसमें क्या रक्खा है ? घन से प्यारी जान, जान से प्यारा ईमान। बाबू साहब, आपसे सच कहता हूँ, अगर दादा के लिए अपने बस की कोई बात उठा रखता तो आज रोते न बनता। अपना ही चित्त अपने को धिक्कारता। नहीं तो मुझे इस घड़ी ऐसा जान पड़ता है कि मेरा उद्धार एक भारी ऋण से हो गया। उनकी आत्मा सुख और शान्ति से रहेगी तो मेरा सब तरह कल्याण ही होगा।

बाबू चैतन्यदास सिर झुकाये ये बाते सुन रहे थे। एक-एक शब्द उनके हृदय में शर के समान चुभता जाता था। इस उदारता के प्रकाश में उन्हें अपनी हृदय-हीनता, अपनी आत्मशून्यता, अपनी भौतिकता अत्यन्त भयकर दिखायी देती थी। उनके चित्त पर इस घटना का कितना प्रभाव पड़ा, यह इसी से अनुमान किया जा सकता है कि प्रभुदास के अन्त्येष्टि सस्कार में उन्होंने हजारों रुपये खर्च कर डाले। उनके सन्तप्त हृदय की शान्ति के लिए अब एकमात्र यही उपाय रह गया था।

— सरस्वती, जून १९२०

इज्जत का खून

मैंने कहानियों और इतिहासों में तकदीर के उलट-फेर की अजीबोगरीब दास्ताने पढ़ी है। शाह को भिखमगा और भिखमगे को शाह बनते देखा है। तकदीर एक छुपा हुआ भेद है। गलियों में टुकड़े चुनती हुई औरतों सोने के सिंहासन पर बैठ गयी है और वह ऐश्वर्य के मतवाले जिनके इशारे पर तकदीर भी सर झुकाती थी, आन की आन में चील-कौओं का शिकार बन गये है। पर मेरे सर पर जो कुछ बीती उसकी नजीर कहीं नहीं मिलती। आह, उन घटनाओं को आज याद करती हूँ तो रोगटे खड़े हो जाते हैं और हैरत होती है कि अब तक मैं क्यों और क्योंकर जिन्दा हूँ। सौन्दर्य लालसाओं का स्रोत है। मेरे दिल में क्या-क्या लालसाएँ न थीं पर आह, निष्ठुर भाग्य के हाथों मर मिटी। मैं क्या जानती थी कि वही आदमी जो मेरी एक-एक अंदा पर कुर्बान होता था, एक दिन मुझे इस तरह जलील और बर्बाद करेगा।

आज तीन साल हुए जब मैंने इस घर में कदम रक्खा। उस वक्त यह एक हरा-भरा चमन था। मैं इस चमन की बुलबुल थी, हवा में उड़ती थी, डालियों पर चहकती थी, फूलों पर सोती थी। सईद मेरा था, मैं सईद की थी। इस सगमरमर के हौज के किनारे हम मुहब्बत के पाँसे खेलते थे। इन्हीं कारियों में उलफत के तराने गाते थे। इसी चमन में हमारी मुहब्बत की गुप-चुप बातें होती थी, मस्तियों के दौर चलते थे। वह मुझसे कहते थे — तुम मेरी जान हो। मैं उनसे कहती थी — तुम मेरे दिलदार हो। हमारी जायदाद लम्बी-चौड़ी थी। जमाने की कोई फ्रिक, जिन्दगी का कोई ग्राम न था। हमारे लिए जिन्दगी सशरीर आनन्द, एक अनन्त चाह और बहार का तिलिस्म थी, जिसमें मुरादे खिलती थी और खुशियाँ हँसती थी। जमाना हमारी इच्छाओं पर चलनेवाला था। आसमान हमारी भलाई चाहता था और तकदीर हमारी साथी थी।

एक दिन सईद ने आकर कहा — मेरी जान, मैं तुमसे एक बिनती करने आया हूँ। देखना इन मुसकराते हुए होंठों पर इनकार का हर्फ न आये। मैं चाहता हूँ कि अपनी सारी मिलकियत, सारी जायदाद तुम्हारे नाम चढ़वा दूँ। मेरे लिए

तुम्हारी मुहब्बत काफी है। यही मेरे लिए सबसे बड़ी नेमत है। मैं अपनी हकीकत को मिटा देना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि तुम्हारे दरवाजे का फ़कीर बनकर रहूँ। तुम मेरी नूरजहाँ बन जाओ, मैं तुम्हारा सलीम बनूँगा, और तुम्हारी मूँगे जैसी हथेली के प्यालो पर उम्र बसर करूँगा।

मेरी आँखें भर आयी। खुशियाँ अपनी चोटी पर पहुँचकर आँसू की बूँद बन गयी।

२

पर अभी पूरा साल भी न गुजरा था कि मुझे सईद के मिजाज में कुछ तवदीली नजर आने लगी। हमारे दरमियान कोई लड़ाई-झगडा या बदमजगी न हुई थी। मगर अब वह सईद न था जिसे एक लमहे के लिए भी मेरी जुदाई दूभर थी। वह अब रात की रात गायब रहता। उसकी आँखों में प्रेम की वह उमग न थी न अन्दाजों में वह प्यास न मिजाज में वह गर्मी।

कुछ दिनों तक इस रूपेण ने मुझे खूब रलाया। मुहब्बत के मज्ने याद आ-आकर तड़पा देते। मैंने पढ़ा था कि प्रेम अमर होता है, क्या वह स्रोत इतनी जल्दी सूख गया? आह, नहीं वह अब भी लहरे मार रहा था। पर अब उसका बहाव किसी दूसरी ओर था। वह अब किसी दूसरे चमन को शादाब करता था। आखिर मैं भी सईद से आँखें चुराने लगी। बेदिली से नहीं, सिर्फ इसलिए कि अब मुझे उससे आँखें मिलाने की ताब न थी। उसे देखते ही मुहब्बत के हज़ारों करिश्मे नजरो के सामने आ जाते और आँखें भर आती। मेरा दिल अब भी उसकी तरफ खिचता था, कभी-कभी बेअख्तियार जी चाहता कि उसके पैरो पर गिरूँ और कहूँ — मेरे दिलदार, यह बेरहमी क्यों? क्यों तुमने मुझसे मुँह फेर लिया है, मुझसे क्या खता हुई है? लेकिन इस स्वाभिमान का बुरा हो जो दीवार बनकर रास्ते में खड़ा हो जाता।

यहाँ तक कि धीरे-धीरे मेरे दिल में भी मुहब्बत की जगह हसरत ने ले ली। निराशा के धैर्य ने दिल को तसकीन दी। मेरे लिए सईद अब बीते हुए बसन्त का एक भूला हुआ गीत था। दिल की गर्मी ठंडी हो गयी। प्रेम का दीपक बुझ गया। यही नहीं, उसकी इज्जत भी मेरे दिल से रुखसत हो गयी। जो आदमी प्रेम के पवित्र मन्दिर में मूल से भरा हुआ हो वह हरगिज इस योग्य नहीं कि मैं उसके लिए घुलू और मरूँ।

एक रोज़ शाम के वक़्त मैं अपने कमरे में पलंग पर पड़ी एक किस्सा पढ़ रही थी,

तभी अचानक एक सुन्दर स्त्री मेरे कमरे में आयी। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कमरा जगमगा उठा। रूप की ज्योति ने दरो-दीवार को रौशन कर दिया गया अभी सफ़ेदी हुई है। उसकी अलकृत शोभा, उसका खिला हुआ, फूल-जैसा लुभावना चेहरा, उसकी नशीली मिठास, किसकी तारीफ़ करूँ। मुझ पर एक रोब-सा छा गया। मेरा रूप का घमण्ड धूल में मिल गया। मैं आश्चर्य में थी कि यह कौन रमणी है और यहाँ क्योंकर आयी? बेअख्तियार उठी कि उससे मिलूँ और पूछूँ, कि सईद भी मुस्कराता हुआ कमरे में आया। मैं समझ गयी कि यह रमणी उसकी प्रेमिका है। मेरा गर्व जाग उठा। मैं उठी ज़रूर पर शान से गर्दन उठाये हुए। आँखों में हुस्न के रोब की जगह घृणा का भाव आ बैठा। मेरी आँखों में अब वह रमणी रूप की देवी नहीं, डसनेवाली नागिन थी। मैं फिर चारपाई पर बैठ गयी और किताब खोलकर सामने रख ली। वह रमणी एक क्षण तक खड़ी मेरी तस्वीरों को देखती रही, तब कमरे से निकली, चलते वक़्त उसने एक बार मेरी तरफ़ देखा, उसकी आँखों से अगारे निकल रहे थे जिनकी किरणों में हिंस्र प्रतिशोध की लाली झलक रही थी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ — सईद इसे यहाँ क्यों लाया? क्या मेरा घमण्ड तोड़ने के लिए?

३

जायदाद पर मेरा नाम था पर यह केवल एक भ्रम था, उस पर अधिकार पूरी तरह सईद का था। नौकर भी उसी को अपना मालिक समझते थे और अक्सर मेरे साथ ढिठाई से पेश आते। मैं सब्र के साथ जिन्दगी के दिन काट रही थी। जब दिल में उमगे न रही, तो पीडा क्यों होती?

सावन का महीना था, काली घटा छाया हुई थी, और रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं। बागीचे पर हसरत का अँवैरा और सियाह दरखतों पर जुगनुओं की चमक ऐसी मालूम होती थी कि जैसे उनके मुँह से चिनगारियों जैसी आँहें निकल रही हैं। मैं देर तक हसरत का यह तमाशा देखती रही। कीड़े एक साथ चमकते थे और एक साथ बुझ जाते थे, गोया रोशनी की बाढ़ें छूट रही हैं। मुझे भी झूला झूलने और गाने का शौक हुआ। मौसम की हालते हसरत के मारे हुए दिलों पर भी अपना जादू कर जाती है। बागीचे में एक गोल बँगला था। मैं उसमें आयी और बरामदे की एक कड़ी में झूला डलवाकर झूलने लगी। मुझे आज मालूम हुआ कि निराशा में भी एक आध्यात्मिक आनन्द होता है जिसका हाल उनको नहीं मालूम जिनकी इच्छाएँ पूर्ण हैं। मैं चाव से एक मल्हार गाने लगी। सावन विरह और शोक का

महीना है। गीत में एक वियोगी हृदय की कथा ऐसे दर्दभरे शब्दों में बयान की गयी थी कि बरबस आँखों से आँसू टपकने लगे। इतने में बाहर से एक लालटेन की रोशनी नजर आयी। सईद का नौकर पिछले दरवाजे से दाखिल हुआ। उसके पीछे वहीं हसीना और सईद दोनों चले आ रहे थे। हसीना ने मेरे पास आकर कहा — आज यहाँ नाच-रग की महफ़िल सजेगी और शराब के दौर चलेगे।

मैंने घृणा से कहा — मुबारक हो।

हसीना — बारहमासे और मल्हार की ताने उडेगी, साञ्चिन्दे आ रहे हैं।

मैं — शौक से।

हसीना — तुम्हारा सीना हसद से चाक हो जायगा।

सईद ने मुझे से कहा — जुबैदा, तुम अपने कमरे में चली जाओ, यह इस वक़्त आपे में नहीं है।

हसीना ने फिर मेरी तरफ लाल-लाल आँखें निकालकर कहा — मैं तुम्हें अपने पैरों की धूल के बराबर भी नहीं समझती।

मुझे फिर जब्त न रहा, अकडकर बोली — और मैं तुझे क्या समझती हूँ, एक कुतिया, दूसरों की उगली हुई हड्डियाँ चिचोडती फिरती है!

अब सईद के भी तेवर बदले, मेरी तरफ भयानक आँखों से देखकर बोले — जुबैदा, तुम्हारे सर पर शैतान तो नहीं सवार है?

सईद का यह जुमला मेरे जिगर में चुभ गया, तड़प उठी, जिन होंठों से हमेशा मुहब्बत और प्यार की बातें सुनी हों उन्हीं से यह जहर निकले, और बिलकुल बकसूर! क्या मैं ऐसी नाचीज और हक़ीर हो गयी हूँ कि एक बाज़ारू औरत भी मुझे छेड़कर गालियाँ दे सकती है और मेरा ज़बान खोलना मना! मेरे दिल में साल भर से जो बुखार जमा हो रहा था, वह उबल पड़ा। मैं झूले से उतर पड़ी और सईद की तरफ शिकायतभरी निगाहों से देखकर बोली — शैतान मेरे सर पर सवार है या तुम्हारे सर पर, इसका फ़ैसला तुम खुद कर सकते हो। सईद, मैं तुमको अब तक शरीफ़ और ग़ैरतवाला समझती थी, तुमने मेरे साथ बेवफ़ाई की, इसका मलाल मुझे ज़रूर था, मगर मैंने सपने में भी यह न सोचा था कि तुम ग़ैरत से इतने खाली हो कि एक हया-फ़रोश औरत के पीछे मुझे इस तरह ज़लील करोगे। इसका बदला तुम्हें खुदा से मिलेगा।

हसीना ने तेज़ होकर कहा — तू मुझे हया-फ़रोश कहती है?

मैं — बेशक कहती हूँ।

सईद — और मैं बेगैरत हूँ ?

मैं — बेशक ! बेगैरत ही नहीं, शोबदेबाज, मक्कार, पापी, सब कुछ। यह अल्फाज बहुत घिनावने है लेकिन मेरे गुस्से के इजहार के लिए काफ़ी नहीं। मैं यह बातें कह ही रही थी कि यकायक सईद के लम्बे-तगडे, हट्टे-कट्टे नौकर ने मेरी दोनों बाँहें पकड ली और पलक मारते भर मे हसीना ने झूले की रस्सियाँ उतारकर मुझे बरामदे के एक लोहे के खम्भे से बाँध दिया।

इस वक्त मेरे दिल में क्या खयाल आ रहे थे, यह याद नहीं पर मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया था, ऐसा भालूम होता था कि यह तीनों इन्सान नहीं, यमदूत है। गुस्से की जगह दिल में एक डर समा गया था। इस वक्त अगर कोई गैबी ताकत मेरे बन्धनों को काट देती, मेरे हाथों में आबदार खजर दे देती तो भी मैं जमीन पर बैठकर अपनी जिल्लत और बेकसी पर आँसू बहाने के सिवा और कुछ न कर सकती। मुझे खयाल आता था कि शायद खुदा की तरफ से मुझ पर यह क्रहर नाजिल हुआ है। शायद मेरी बेनमाजी और बेदीनी की यह सजा मिल रही है। मैं अपनी पिछली जिन्दगी पर निगाह डाल रही थी कि मुझसे कौन-सी गलती हुई है जिसकी यह सजा है। मुझे इसी हालत में छोडकर तीनों सूरते कमरे में चली गयी। मैंने समझा मेरी सजा खत्म हुई। लेकिन क्या यह सब मुझे यो ही बँधा रक्खेगे ? लौडियों मुझे इस हालत में देख लें तो क्या कहें ? नहीं, अब मैं इस घर में रहने के काबिल ही नहीं। मैं सोच रही थी कि रस्सियाँ क्योंकर खोलूँ मगर अफसोस, मुझे न भालूम था कि अभी तक मेरी जो गति हुई है, वह आनेवाली बेरहमियों का सिर्फ बयाना है। मैं अब तक न जानती थी कि यह छोटा आदमी कितना बेरहम, कितना कातिल है। मैं अपने दिल से बहस कर रही थी कि अपनी इस जिल्लत का इलजाम मुझ पर कहाँ तक है। अगर मैं हसीना की उन दिल जलानेवाली बातों का जवाब न देती तो क्या यह नौबत न आती ? आती और जरूर आती। वह काली नागिन मुझे डसने का इरादा करके चली थी। इसीलिए उसने ऐसे दिल दुखानेवाले लहजे में बात ही शुरू की थी कि मैं गुस्से में आकर उसको लान-तान करूँ और उसे मुझे जलील करने का बहाना मिल जाय।

पानी जोर से बरसने लगा था, बौछारों से मेरा सारा शरीर तर हो गया था। सामने गहरा अँधेरा था। मैं कान लगाये सुन रही थी कि अन्दर क्या मिसकौट हो रही है मगर मेह की सनसनाहट के कारण आवाजे साफ़ न सुनायी देती थी। इतने में लालटेन फिर कमरे से बरामदे में आयी और तीनों डरावनी सूरते फिर सामने

आकर खड़ी हो गयी। अब की उस खूनी परी के हाथों में एक पतली-सी कमची थी। उसके तेवर देखकर मेरा खून सर्द हो गया। उसकी आँखों में एक खून पीनेवाली वहशत, एक कातिल पागलपन दिखायी दे रहा था। मेरी तरफ शरारत-भरी नजरों से देखकर बोली — बेगम साहबा, मैं तुम्हारी बदजबानियों का ऐसा सबक देना चाहती हूँ जो तुम्हें सारी उम्र याद रहे। और मेरे गुरू ने बतलाया है कि कमची से ज्यादा देर तक ठहरनेवाला और कोई सबक नहीं होता।

यह कहकर उस जालिम ने मेरी पीठ पर एक कमची जोर से मारी। मैं तिलमिल गयी, मालूम हुआ कि किसी ने पीठ पर आग की चिनगारी रख दी। मुझसे ज्वलन हो सका। माँ-बाप ने कभी फूल की छडी से भी न मारा था। जोर से चीखे मार-मारकर रोने लगी। स्वाभिमान, लज्जा, सब लुप्त हो गयी। कमची की डरावनी और रौशन असलियत के सामने और सब भावनाएँ शायब हो गयी। उन हिन्दू देवियों के दिल शायद लोहे के होते होंगे जो अपनी आन पर आग में कूद पड़ती थीं। मेरे दिल पर तो इस वक़्त यही खयाल छाया हुआ था कि इस मुसीबत से क्योंकि छुटकारा हो। सईद तस्वीर की तरह खामोश खड़ा था। मैं उसकी तरफ फ़रियाद की आँखों से देखकर बड़े विनती के स्वर में बोली — सईद, खुदा के लिए मुझे इस जालिम से बचाओ, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम मुझे ज़हर दे दो, खजर से गर्दन काट लो लेकिन यह मुसीबत सहने की मुझमें ताब नहीं। उन दिलजोड़ियों को याद करो, मेरी मुहब्बत को याद करो, उसी के सदक़े इस वक़्त मुझे इस अजाब से बचाओ, खुदा तुम्हें इसका इनाम देगा।

सईद इन बातों से कुछ पिचला। हसीना की तरफ डरी हुई आँखों से देखकर बोला — ज़रीना, मेरे कहने से अब जाने दो। मेरी खातिर से इन पर रहम करो।

ज़रीना तेवर बदलकर बोली — तुम्हारी खातिर से सब कुछ कर सकती हूँ, गालियाँ नहीं बर्दाश्त कर सकती।

सईद — क्या अभी तुम्हारे खयाल में गालियों की काफ़ी सजा नहीं हुई?

ज़रीना — तब तो आपने मेरी इज्जत की खूब कद्र की! मैंने रानियों से चिलमचियाँ उठवायी हैं, यह बेगम साहबा है किस खयाल में? मैं इसे अगर कुन्द छुरी से काटूँ तब भी इसकी बदजबानियों की काफ़ी सजा न होगी।

सईद — मुझसे अब यह जुल्म नहीं देखा जाता।

ज़रीना — आखें बन्द कर लो।

सईद — जरीना, गुस्सा न दिलाओ, मैं कहता हूँ, अब इन्हें माफ़ करो।

जरीना ने सईद को ऐसी हिकारतभरी आँखों से देखा गोया वह उसका गुलाम है। खुदा जाने उस पर उसने क्या मन्तर मार दिया था कि उसमे खानदानी गैरत और बड़ाई और इन्सानियत का जरा भी एहसास बाक़ी न रहा था। वह शायद उसे गुस्से जैसे मर्दाना ज़ब्बे के काबिल ही न समझती थी। हुलिया पहचाननेवाले कितनी गलती करते हैं क्योंकि दिखायी कुछ पड़ता है, अन्दर कुछ और होता है! बाहर के ऐसे सुन्दर रूप के परदे में इतनी बेरहमी, इतनी निष्ठुरता! कोई शक नहीं, रूप हुलिया पहचानने की विद्या का दुश्मन है। बोली — अच्छा तो अब आपको मुझ पर गुस्सा आने लगा। क्यों न हो, आखिर निकाह तो आपने बेगम ही से किया है। मैं तो हया-फरोश कुतिया ही ठहरी!

सईद — तुम ताने देती हो और मुझसे यह खून नहीं देखा जाता।

जरीना — तो यह कमची हाथ में लो, और इसे गिनकर सौ लगाओ। गुस्सा उतर जायगा, इसका यही इलाज है।

सईद — फिर वही मज़ाक़।

जरीना — नहीं, मैं मज़ाक़ नहीं करती।

सईद ने कमची लेने को हाथ बढाया मगर मालूम नहीं जरीना को क्या शुबहा पैदा हुआ, उसने समझा शायद यह कमची को तोड़कर फेंक देगे। कमची हटा ली और बोली — अच्छा मुझसे यह दगा! तो लो अब मैं ही हाथो की सफाई दिखाती हूँ। यह कहकर उस बेदर्द ने मुझे बेतहाशा कमचियां मारना शुरू कीं। मैं दर्द से ऐंठ-ऐंठकर चीख रही थी। उसके पैरों पड़ती थी, मिन्नते करती थी, अपने किये पर शर्मिन्दा थी, दुआएँ देती थी, पीर और पैग़म्बर का वास्ता देती थी, पर उस क्रातिल को जरा भी रहम न आता था। सईद काठ के पुतले की तरह दर्दोंसितम का यह नज़्जारा आँखों से देख रहा था और उसको जोश न आता था। शायद मेरा बड़े से बड़ा दुश्मन भी मेरे रोने-धोने पर तरस खाता। मेरी पीठ छिलकर लहू-लुहान हो गयी, जखम पड़ते थे, हरेक चोट आग के शोले की तरह बदन पर लगती थी। मालूम नहीं उसने मुझे कितने दुरें लगाये यहाँ तक कि कमची को मुझ पर रहम आ गया, वह फटकर टूट गयी। लकड़ी का कलेजा फट गया मगर इन्सान का दिल न पिघला।

४

मुझे इस तरह ज़लील और तबाह करके तीनों खबीस रूहें वहाँ से रखसत हो

गयी। सईद के नौकर ने चलते वक़्त मेरी रस्सियाँ खोल दी। मैं कहाँ जाती ? उस घर में क्योंकर कदम रखती ?

मेरा सारा जिस्म नासूर हो रहा था लेकिन दिल के फफोले उससे कहीं ज़्यादा जानलेवा थे। सारा दिल फफोलो से भर उठा था। अच्छी भावनाओ के लिए जगह भी बाक़ी न रही थी। उस वक़्त मैं किसी अघे को कुएँ में गिरते देखती तो मुझे हँसी आती, किसी यतीम का दर्दनाक रोना सुनती तो उसको मुँह चिढाती। दिल की हालत में एक ज़बर्दस्त इन्कलाब हो गया था। मुझे गुस्सा न था, शम न था, मौत की आरजू न थी, यहाँ तक कि बदला लेने की भावना भी न थी। उस इन्तहाई जिल्लत ने बदला लेने की इच्छा को भी खत्म कर दिया था। हालाँकि मैं चाहती तो कानूनन् सईद को शिकजे में ला सकती थी, उसे दाने-दाने के लिए तरसा सकती थी लेकिन यह बेइज्जती, यह बेआबरूई, यह पामाली बदले के खयाल के दायरे से बाहर थी। बस सिर्फ़ एक चेतना बाकी थी और वह अपमान की चेतना थी। मैं हमेशा के लिए जलील हो गयी। क्या यह दाग़ किसी तरह मिट सकता था ? हरगिज नहीं। हाँ वह छिपाया जा सकता था और उसकी एक ही सूरत थी कि जिल्लत के काले गड्डे में गिर पड़ू ताकि सारेकपडो की सियाही इस सियाह दाग को छिपा दे। क्या इस घर से बियाबान अच्छा नहीं, जिसकी दीवारे टूटकर ढेर हो गयी हो ? इस किरती से क्या पानी की सतह अच्छी नहीं जिसके पेदे में एक बड़ा छेद हो गया हो ? इस हालत में यही दलील मुझ पर छा गयी। मैंने अपनी तबाही को और भी मुकम्मल, अपनी जिल्लत को और भी गहरा, अपने काले चेहरे को और भी काला करने का पक्का इरादा कर लिया। मैं अनजान में ही सईद से नैतिक रूप से बदला लेने पर आमादा हो गयी। रात भर मैं वहीं पडी कभी दर्द से कराहती और कभी इन्ही खयालात में उलझती रही। यह घातक इरादा हर क्षण मजबूत से और भी मजबूत होता जाता था। घर में किसी ने मेरी खबर न ली। पौ फटते ही मैं बागीचे से बाहर निकल आयी, मालूम नहीं मेरी लाज-शर्म कहाँ गायब हो गयी थी। जो शरूस समुन्दर में शोते खा चुका हो उसे ताल-तल्लैयो का क्या डर ? मैं जो दरौदीवार से शर्माती थी, इस वक़्त शहर की गलियों में बेधड़क चली जा रही थी — और कहाँ ? वही जहाँ जिल्लत की कद्र है, जहाँ किसी पर कोई हँसने वाला नहीं, जहाँ बदनामी का बाजार सजा हुआ है, जहाँ हया बिकती है और शर्म लुटती है !

इसके तीसरे दिन रूप की मण्डी के एक अच्छे हिस्से में एक ऊँचे कोठे पर बैठी

हुई मैं उस मण्डी की सैर कर रही थी। शाम का वक्त था, नीचे सड़क पर आदमियों की ऐसी भीड़ थी कि कंधे से कंधा छिलता था। आज सावन का मेला था, लोग साफ-सुथरे कपड़े पहने कतार की कतार दरिया की तरफ जा रहे थे। हमारे बाजार की बेशकीमत जिन्स भी आज नदी के किनारे सजी हुई थी। कहीं हसीनों के झूले थे, कहीं सावन के गीत, लेकिन मुझे इस बाजार की सैर दरिया के किनारे से ज्यादा पुरलुत्फ मालूम होती थी। ऐसा मालूम होता था कि शहर की और सब सड़के बन्द हो गयी हैं, सिर्फ यही तग गली खुली हुई है और सब की निगाहें कोठों ही की तरफ लगी थी, गोया वह जमीन पर नहीं चल रहे हैं, हवा में उड़ना चाहते हैं। हाँ, पढे-लिखे लोगों को मैंने इतना बेघडक नहीं पाया। वह भी धूरते थे मगर कनखियों से। अघेड़ उम्र के लोग सबसे ज्यादा बेघडक मालूम होते थे। शायद उनकी मशा जवानी के जोश को जाहिर करना था। बाजार क्या था एक लम्बा-चौड़ा थियेटर था, लोग हँसी-दिल्लगी करते थे, लुत्फ उठाने के लिए नहीं, हसीनों को सुनाने के लिए। मुँह दूसरी तरफ था, निगाह किसी दूसरी तरफ। बस, भाँडों और नक्कालों की मजलिस थी।

यकायक सईद की फिटन नजर आयी। मैं उस पर कई बार सैर कर चुकी थी। सईद अच्छे कपड़े पहने अकड़ा हुआ बैठा था। ऐसा सजीला, बाँका जवान सारे शहर में न था, चेहरे-मोहरे से मर्दानापन बरसता था। उसकी आँख एक बार मेरे कोठे की तरफ उठी और नीचे झुक गयी। उसके चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गयी जैसे किसी जहरीले साँप ने काट खाया हो। उसने कोचवान से कुछ कहा, दम के दम में फिटन हवा हो गयी। इस वक्त उसे देखकर मुझे जो द्वेषपूर्ण प्रसन्नता हुई, उसके सामने उस जानलेवा दर्द की कोई हकीकत न थी। मैंने जलील होकर उसे जलील कर दिया। यह कटार कमचियों से कहीं ज्यादा तेज थी। उसकी हिम्मत न थी कि अब मुझसे आँख मिला सके। नहीं, मैंने उसे हरा दिया, उसे उम्र भर के लिए क्रौंद में डाल दिया। इस कालकोठरी से अब उसका निकलना शैर-मुमकिन था क्योंकि उसे अपने खानदान के बड़प्पन का घमण्ड था।

दूसरे दिन भोर में खबर मिली कि किसी कातिल ने भिर्जा सईद का काम तमाम कर दिया। उसकी लाश उसी बागीचे के गोल कमरे में मिली। सीने में गोली लग गयी थी। नौ बजे दूसरी खबर सुनायी दी, जरीना को भी किसी ने रात के वक्त कल्ल कर डाला था। उसका सर तन से जुदा कर दिया गया था। बाद को जाँच-पडताल से मालूम हुआ कि यह दोनो वारदातें सईद के ही हाथों हुईं। उसने पहले जरीना को

उसके मकान पर कत्ल किया और तब अपने घर आकर अपने सीने में गोली मारी। इस मर्दाना गैरतमन्दी ने सईद की मुहब्बत मेरे दिल में ताज्जा कर दी।

शाम के वक्त मैं अपने मकान पर पहुँच गयी। अभी मुझे यहाँ से गये हुए सिर्फ चार दिन गुजरे थे मगर ऐसा मालूम होता था कि वर्षों के बाद आयी हूँ। दरोदीवार पर हसरत छायी हुई थी। मैंने घर में पाँव रक्खा तो बरबस सईद की मुस्कराती हुई सूरत आँखों के सामने आकर खड़ी हो गयी — वही मर्दाना हुस्न, वही बाँकपन, वही मनुहार की आँखें। बेअख्तियार मेरी आँखें भर आयीं और दिल से एक ठण्डी आह निकल आयी। गम इसका न था कि सईद ने क्यों जान दे दी। नहीं, उसकी वह मुजरिमाना बेहिंसी और रूप के पीछे भागना इन दोनों बातों को मैं मरते दम तक माफ़ न करूँगी। गम यह था कि यह पागलपन उसके सर में क्यों समाया ? इस वक्त दिल की जो कैफ़ियत है उससे मैं समझती हूँ कि कुछ दिनों में सईद की बेवफाई और बेरहमी का घाव भर जायगा, अपनी जिल्लत की याद भी शायद मिट जाय, मगर उसकी चन्द्रोजा मुहब्बत का नक्श बाकी रहेगा और अब यही मेरी जिन्दगी का सहारा है।

— उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

होली की छुट्टी

बर्नार्कियुलर फ़ाइनल पास करने के बाद मुझे एक प्राइमरी स्कूल में जगह मिली, जो मेरे घर से ग्यारह मील पर था। हमारे हेडमास्टर साहब को छुट्टियों में भी लड़कों को पढ़ाने की सनक थी। रात को लड़के खाना खाकर स्कूल में आ जाते और हेडमास्टर साहब चारपाई पर लेटकर अपने खरटों से उन्हें पढ़ाया करते। जब लड़कों में धौल-धप्पा शुरू हो जाता और शोर-गुल मचने लगता तब यकायक वह खरगोश की नींद से चौक पड़ते और लड़कों को दो-चार तमाचे लगाकर फिर अपने सपनों के मजे लेने लगते। ग्यारह-बारह बजे रात तक यही ड्रामा होता रहता, यहाँ तक कि लड़के नींद से बेकरार होकर वही टाट पर सो जाते। अप्रैल में सालाना इस्तहान होनेवाला था, इसलिए जनवरी ही से हाथ-तोबा मची हुई थी। नाइट स्कूलों पर इतनी रियायत थी कि रात की क्लासों में उन्हें न तलब किया जाता था, मगर छुट्टियाँ बिलकुल न मिलती थीं। सोमवती अमावस आयी और निकल गयी, बसन्त आया और चला गया, शिवरात्रि आयी और गुजर गयी, और इतवारों का तो जिक्र ही क्या है। एक दिन के लिए कौन इतना बड़ा सफर करता, इसलिए कई महीनों से मुझे घर जाने का मौका न मिला था। मगर अबकी मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि होली पर जरूर घर जाऊँगा, चाहे नौकरी से हाथ ही क्यों न धोने पड़ें। मैंने एक हफ्ते पहले ही से हेडमास्टर साहब को अल्टी-मेटम दे दिया कि २० मार्च को होली की छुट्टी शुरू होगी और बन्दा १९ की शाम को रखसत हो जायगा। हेडमास्टर साहब ने मुझे समझाया कि अभी लड़के हो, तुम्हें क्या मालूम नौकरी कितनी मुश्किलों से मिलती है और कितनी मुश्किलों से निभती है, नौकरी पाना उतना मुश्किल नहीं जितना उसको निभाना। अप्रैल में इस्तहान होनेवाला है, तीन-चार दिन स्कूल बन्द रहा तो बताओ कितने लड़के पास होंगे? साल भर की सारी मेहनत पर पानी फिर जायगा कि नहीं? मेरा कहना मानो, इस छुट्टी में न जाओ, इस्तहान के बाद जो छुट्टी पड़े उसमें चले जाना। ईस्टर की चार दिन की छुट्टी होगी, मैं एक दिन के लिए भी न रोकूँगा।

मैं अपने मोर्चे पर कायम रहा, समझाने-बुझाने, डराने-धमकाने और जवाब

तलब किये जाने के हथियारों का मुझ पर असर न हुआ। १९ को ज्यों ही स्कूल बन्द हुआ, मैंने हेडमास्टर साहब को सलाम भी न किया और चुपके से अपने डेरे पर चला आया। उन्हें सलाम करने जाता तो वह एक न एक काम निकालकर मुझे रोक लेते — रजिस्टर में फीस की मीजान लगाते जाओ, औसत हाजिरी निकालते जाओ, लड़कों की कापियाँ जमा करके उन पर सशोधन और तारीख सब पूरी कर दो। गोया यह मेरा आखिरी सफ़र है और मुझे जिन्दगी के सारे काम अभी खतम कर देने चाहिए।

मकान पर आकर मैंने चटपट अपनी किताबों की पोटली उठायी, अपना हलका लिहाफ़ कंधे पर रखा और स्टेशन के लिए चल पड़ा। गाड़ी ५ बजकर ५ मिनट पर जाती थी। स्कूल की घड़ी हाजिरी के वक़्त हमेशा आध घण्टा तेज और छुट्टी के वक़्त आधा घण्टा सुस्त रहती थी। चार बजे स्कूल बन्द हुआ था। मेरे खयाल में स्टेशन पहुँचने के लिए काफी वक़्त था। फिर भी मुसाफ़िरों को गाड़ी की तरफ़ से आगुम तौर पर जो अन्देशा लगा रहता है, और जो घड़ी हाथ में होने पर भी और गाड़ी का वक़्त ठीक मालूम होने पर भी दूर से किसी गाड़ी की गडगड़ाहट या सीटी सुनकर कदमों को तेज और दिल को परीशान कर दिया करता है, वह मुझे भी लगा हुआ था। किताबों की पोटली भारी थी, उस पर कंधे पर लिहाफ़, बार-बार हाथ बदलता और लपका चला जाता था। यहाँ तक कि स्टेशन कोई दो फ़र्लांग से नजर आया। सिगनल डाउन था। मेरी हिम्मत भी उस सिगनल की तरह डाउन हो गयी, उम्र के तक्राजे से एक सौ कदम दौड़ा ज़रूर मगर यह निराशा की हिम्मत थी। मेरे देखते-देखते गाड़ी आयी, एक मिनट ठहरी और रवाना हो गयी। स्कूल की घड़ी यकीनन आज और दिनों से भी ज्यादा सुस्त थी।

अब स्टेशन पर जाना बेकार था। दूसरी गाड़ी ग्यारह बजे रात को आवेगी, मेरे घरवाले स्टेशन पर कोई बारह बजे पहुँचेगी और वहाँ से मकान पर जाते-जाते एक बज जायगा। इस सन्नाटे में रास्ता चलना भी एक मोर्चा था जिसे जीतने की मुझमें हिम्मत न थी। जी में तो आया कि चलकर हेडमास्टर को आड़े हाथों लूँ मगर जब्त किया और पैदल चलने के लिए तैयार हो गया। कुल बारह मील ही तो है, अगर दो मिल फ़ी घटा भी चलूँ तो छः घण्टे में घर पहुँच सकता हूँ। अभी पाँच बजे है, जरा क़दम बढ़ाता जाऊँ तो दस बजे यकीनन पहुँच जाऊँगा। अम्माँ और मुन्नू मेरा इन्तज़ार कर रहे होंगे, पहुँचते ही गरम-गरम खाना मिलेगा। कोल्हाड़े में गुड पक रहा होगा, वहाँ से गरम-गरम रस पीने को आ जायगा और

जब लोग सुनेगे कि मैं इतनी दूर से पैदल चला आया हूँ तो उन्हें कितना अचरज होगा। मैंने फ़ौरन गंगा की तरफ पैर बढ़ाया। यह कस्बा नदी के किनारे था और मेरे गाँव की सड़क नदी के उस पार से थी। मुझे इस रास्ते से जाने का कभी सयोग न हुआ था, मगर इतना सुना था कि कच्ची सड़क सीधी चली जाती है, परीशानी की कोई बात न थी, दस मिनट में नाव उस पार पहुँच जायगी और बस फ़रटि भरता हुआ चल दूँगा। बारह मील कहने को तो होते हैं, है तो कुल छः कोस!

मगर घाट पर पहुँचा तो नाव मे आधे मुसाफ़िर भी न बैठे थे। मैं कूदकर जा बैठा। खेवे के पैसे भी निकालकर दे दिये लेकिन नाव है कि वही अचल ठहरी हुई है। मुसाफ़िरो की सख्या काफ़ी नहीं है, कैसे खुले। लोग तहसील और कचहरी से आते जाते हैं और बैठते जाते हैं और मैं हूँ कि अन्दर ही अन्दर भुना जाता हूँ। सूरज नीचे दौड़ा चला जा रहा है, गोया मुझसे बाजी लगाये हुए है। अभी सफेद था, फिर पीला होना शुरू हुआ और देखते-देखते लाल हो गया। नदी के उस पार क्षितिज पर लटका हुआ, जैसे कोई डोल कुएँ पर लटक रहा है। हवा में कुछ खूनकी भी आ गयी और भूख भी मालूम होने लगी। मैंने आज घर जाने की खुशी और हडबड़ी मे रोटियाँ न पकायी थीं, सोचा था कि शाम को तो घर पहुँच जाऊँगा, लाओ एक पैसे के चने लेकर खा लूँ। उन दोनों ने इतनी देर तक तो साथ दिया, अब पेट की पेचीदगियों में जाकर न जाने कहाँ गुम हो गये। मगर क्या ग्रम है, रास्ते मे क्या दुकानें न होंगी, दो-चार पैसे की मिठाइयाँ लेकर खा लूँगा।

जब नाव उस किनारे पहुँची तो सूरज की सिर्फ आखिरी साँस बाक़ी थी, हालाँकि नदी का पाट बिलकुल पेदे में चिमटकर रह गया था।

मैंने पोटली उठायी और तेजी से चला। दोनों तरफ़ चने के खेत थे जिनके ऊदे फूलों पर ओस का हलका-सा पर्दा पड़ चला था। बेअख्तियार एक खेत में घुसकर बूट उखाड़ लिये और टूंगता हुआ भागा।

२

सामने बारह मील की मजिल है, कच्चा सुनसान रास्ता, शाम हो गयी है, मुझे पहली बार अपनी ग़लती मालूम हुई। लेकिन बचपन के जोश ने कहा कि क्या बात है, एक-दो मील तो दौड़ ही सकते हैं। बारह को मन मे १७६० से गुणा किया, बीस हजार गज ही तो होते हैं। बारह मील के मुक्काबिले मे बीस हजार गज कुछ हलके और आसान मालूम हुए। और जब दो-तीन मील रह जायगा

तब तो एक तरह से अपने गाँव ही में हूँगा, उसका क्या शुमार। हिम्मत बँध गयी। इक्के-दुक्के मुसाफिर भी पीछे चले आ रहे थे। और भी इत्मीनान हुआ।

अँधेरा हो गया है। मैं लपका जा रहा हूँ। सड़क के किनारे दूर से एक झोंपड़ी नजर आती है। एक कुप्पी जल रही है। जरूर किसी बनिये की दुकान होगी। और कुछ न होगा तो गुड़ और चने तो मिल ही जायँगे। कदम और तेज़ करता हूँ। झोपड़ी आती है। उसके सामने एक क्षण के लिए खड़ा हो जाता हूँ। चार-पाँच आदमी उकड़ूँ बैठे हुए हैं, बीच में एक बोतल है, हर एक के सामने एक-एक कुल्हड़। दीवार से मिली हुई अँचो गद्दी है, उस पर साहजी बैठे हुए हैं, उनके सामने कई बोतले रखी हुई हैं। ज़रा और पीछे हटकर एक आदमी कडाही में सूखे मटर भून रहा है। उसकी सोधी खुशबू मेरे शरीर में बिजली की तरह दौड़ जाती है। बेचैन होकर जेब में हाथ डालता हूँ और एक पैसा निकालकर उसकी तरफ चलता हूँ लेकिन पाँव आप ही आप रुक जाते हैं — यह कलवरिया है।

खोचेवाला पूछता है — क्या लोगे ?

मैं कहता हूँ — कुछ नहीं।

और आगे बढ़ जाता हूँ। दुकान भी मिली तो शराब की, गोया दुनिया में इन्सान के लिए शराब ही सबसे जरूरी चीज़ है। यह सब आदमी धोबी और चमार होंगे, दूसरा कौन शराब पीता है, देहात में। मगर वह मटर का आकर्षक सोधापन मेरा पीछा कर रहा है और मैं भागा जा रहा हूँ।

किताबो की पोटली जी का जजाल हो गयी है, ऐसी इच्छा होती है कि इसे यही सड़क पर पटक दूँ। उसका वजन मुश्किल से पाँच सेर होगा, मगर इस वज़त वह मुझे मन भर से ज्यादा मालूम हो रही है। शरीर में कमजोरी महसूस हो रही है। पूरनमासी का चाँद पेड़ों के ऊपर जा बैठा है और पत्तियों के बीच से जमीन की तरफ झाँक रहा है। मैं बिलकुल अकेला चला जा रहा हूँ मगर दर्द बिलकुल नहीं है, भूख ने सारी चेतना को दबा रखा है और खुद उन पर हावी हो गयी है।

आहा हा, यह गुड़ की खुशबू कहाँ से आयी! कहीं ताज़ा गुड़ पक रहा है। कोई गाँव करीब ही होगा। हाँ, वह आमो के झुरमुट में रोशनी नजर आ रही है। लेकिन वहाँ पैसे-दो पैसे का गुड़ कौन बेचेगा और यो मुझसे माँगना न जायगा, मालूम नहीं लोग क्या समझे। आगे बढ़ता हूँ, मगर जबान से राल टपक नहीं है। गुड़ से मुझे बड़ा प्रेम है। जब कभी किसी चीज़ की दुकान खोलने की

सोचता था तो वह हलवाई की दुकान होती थी। बिक्री हो या न हो, मिठाइयाँ तो खाने को मिलेगी। हलवाईयों को देखो, मारे मोटापे के हिल नहीं सकते। लेकिन वह बेवकूफ होते हैं, आरामतलबी के मारे तोद निकाल लेते हैं, मैं कसरत करता रहूँगा। मगर गुड की वह धीरज की परीक्षा लेनेवाली, भूख को तेज करनेवाली खुशबू बराबर आ रही है। मुझे वह घटना याद आती है, जब अम्माँ तीन महीने के लिए अपने मैके या मेरी ननिहाल गयी थी और मैने तीन महीने में एक मन गुड का सफ़ाया कर दिया था। यही गुड के दिन थे। नाना बीमार थे, अम्माँ को बुला भेजा था। मेरा इम्तहान पास था इसलिए मैं उनके साथ न जा सका, मुन्नू को लेती गयी। जाते वक़्त उन्होंने एक मन गुड़ लेकर एक मटके में रखा और उसके मुँह पर एक सकोरा रखकर मिट्टी से बन्द कर दिया। मुझे सख़्त ताकीद कर दी कि मटका न खोलना। मेरे लिए थोड़ा-सा गुड एक हॉडी में रख दिया था। वह हॉडी मैने एक हफ़्ते में सफ़ाचट कर दी। सुबह को दूध के साथ गुड, दोपहर को रोटियों के साथ गुड, तीसरे पहर दानो के साथ गुड, रात को फिर दूध के साथ गुड। यहाँ तक जायज खर्च था जिस पर अम्माँ को भी कोई एतैराज न हो सकता। मगर स्कूल से बार-बार पानी पीने के वहाने घर में आता और दो-एक पिण्डियाँ निकालकर खा लेता। उसकी बजट में कहाँ गुंजाइश थी। और मुझे गुड का कुछ ऐसा चस्का पड़ गया कि हर वक़्त वही नशा सवार रहता। मेरा घर में आना गुड के सिर शामत आना था। एक हफ़्ते में हॉडी ने जवाब दे दिया। मगर मटका खोलने की सख़्त मनाही थी और अम्माँ के घर आने में अभी पौने तीन महीने बाकी थे। एक दिन तो मैने बड़ी मुश्किल से जैसे-जैसे सब्र किया लेकिन दूसरे दिन एक आह के साथ सब्र जाता रहा और मटके की एक मीठी चितवन के साथ होश रखसत हो गया। मैने महापाप की भावना के साथ मटके को खोला और हॉडी भर गुड निकालकर उसी तरह मटके को बन्द कर दिया और सकल्प कर लिया कि इस हॉडी को तीन महीने चलाऊँगा। चले या न चले, मैं चलाये जाऊँगा। मटके को वह सात मजिल समझूँगा जिसे रस्तम भी न खोल सका था। मैने मटके की पिण्डियों को कुछ इस तरह क़ैची लगाकर रखा कि जैसे बाज़र दुकानदार दियासलाई की डिब्बियाँ भर देते हैं। एक हॉडी गुड़ खाली हो जाने पर भी मटका मुँहोमुँह भरा था। अम्माँ को पता ही न चलेगा, सवाल-जवाब की नौबत कैसे आयेगी। मगर दिल और ज़बान में वह खीच-तान गुरू हुई कि क्या कहूँ, और हर बार जीत ज़बान ही के हाथ रहती। यह दो अंगुल की

जीभ दिल जैसे शहजोर पहलवान को नचा रही थी, जैसे मदारी बन्दर को नचाये — उसको, जो आकाश में उड़ता है और सातवे आसमान के मसूबे बाँधता है और अपने जोम में फरऊन को भी कुछ नहीं समझता। बार-बार इरादा करता, दिन भर में पाँच पिंडियों से ज्यादा न खाऊँ, लेकिन यह इरादा शराबियों की तोबा की तरह घटे-दो-घटे से ज्यादा न टिकता। अपने को कोसता, धिक्कारता — गुड़ तो खा रहे हो मगर बरसात में सारा शरीर सड़ जायगा, गधक का मलहम लगाये घूमोगे, कोई तुम्हारे पास बैठना भी न पसन्द करेगा ! कसमें खाता, विद्या की, माँ की, स्वर्गीय पिता की, गऊ की, ईश्वर की — मगर उनका भी वही हाल होता। दूसरा हफ्ता खत्म होते-होते हाँडी भी खत्म हो गयी। उस दिन मैंने बड़े भक्ति-भाव से ईश्वर से प्रार्थना की — भगवान, यह मेरा चंचल लोभी मन मुझे परेशान कर रहा है, मुझे शक्ति दो कि उसको वश में रख सकूँ। मुझे अष्टघात की लगाम दो जो उसके मुँह में डाल दूँ ! यह अभाग मुझे अम्माँ से पिटवाने और घुड़कियाँ खिलवाने पर तुला हुआ है, तुम्हीं मेरी रक्षा करो तो बच सकता हूँ। भक्ति की विह्वलना के मारे मेरी आँखों से दो-चार बूँदे आँसुओ की भी गिरी लेकिन ईश्वर ने भी इसकी सुनवायी न की और गुड़ की बुभुक्षा मुझ पर छापी रही, यहाँ तक कि दूसरी हाँडी का मसिया पढने की नौबत आ पहुँची।

सयोग से उन्हीं दिनों तीन दिन की छुट्टी हुई और मैं अम्माँ से मिलने ननिहाल गया। अम्माँ ने पूछा — गुड़ का मटका देखा है ? चीटे तो नहीं लगे ? सीलन तो नहीं पहुँची ? मैंने मटके को देखने की भी कसम खाकर अपनी ईमानदारी का सबूत दिया। अम्माँ ने मुझे गर्व के नेत्रों से देखा और मेरे आज्ञा-पालन के पुरस्कार-स्वरूप मुझे एक हाँडी निकाल लेने की इजाजत दे दी, हाँ, ताकीद भी कर दी कि मटके का मुँह अच्छी तरह बन्द कर देना। अब तो वहाँ मुझे एक-एक दिन एक-एक युग मालूम होने लगा। चौथे दिन घर आते ही मैंने पहला काम जो किया वह मटका खोलकर हाँडी भर गुड़ निकालना था। एकबारगी पाँच पिंडियाँ उड़ा गया। फिर वही गुड़बाजी शुरू हुई। अब क्या गम है, अम्माँ की इजाजत मिल गयी थी। सैयाँ भये कोतवाल, और आठ दिन में हाँडी गायब ! आखिर मैंने अपने दिल की कमजोरी से मजबूर होकर मटके की कोठरी के दरवाजे पर ताला डाल दिया और उसकी कुजी दीवार की एक मोटी सधि में डाल दी। अब देखें तुम कैसे गुड़ खाते हो। इस सधि में से कुजी निकालने का मतलब यह था कि तीन हाथ दीवार खोद डाली जाय और यह हिम्मत मुझमें न थी। मगर तीन दिन में

ही मेरे धीरज का प्याला छलक उठा और इन तीन दिनों में भी दिल की जो हालत थी वह बयान से बाहर है। शीरीं, यानी मीठे गुड, की कोठरी की तरफ़ से बार-बार गुज़रता और अधीर नेत्रों से देखता और हाथ मलकर रह जाता। कई बार ताले को खटखटाया, खींचा, झटके दिये, मगर ज़ालिम ज़रा भी न हुमसा। कई बार जाकर उस सधि की जाँच-पड़ताल की, उसमें झँककर देखा, एक लकड़ी से उसकी गहराई का अन्दाज़ा लगाने की कोशिश की मगर उसकी तह न मिली। तबीयत खोयी हुई-सी रहती, न खाने-पीने में कुछ मज़ा था, न खेलने-कूदने में। वासना बार-बार युक्तियों के ज़ोर से दिल को क्रायल करने की कोशिश करती। आखिर गुड़ और किस मर्ज की दवा है! मैं उसे फेक तो देता नहीं, खाता ही तो हूँ, क्या आज खाया और क्या एक महीने बाद खाया, इसमें क्या फर्क है! अम्माँ ने मनाही की है बेशक, लेकिन उन्हें मुझे एक उचित काम से अलग रखने का क्या हक है? अगर वह आज कहे खेलने मत जाओ या पेड़ पर मत चढ़ो या तालाब में तैरने मत जाओ, या चिड़ियों के लिए कम्पा मत लगाओ, तितलियाँ मत पकड़ो, तो क्या मैं माने लेता हूँ? आखिर मेरे भी कुछ अधिकार हैं या नहीं! ती फिर इस एक मामले में क्यों अम्माँ की मनाही पर अपनी इच्छाओं का बलिदान कर दूँ? आखिर चौथे दिन वासना की जीत हुई। मैंने तड़के उठकर एक कुदाल लेकर दीवार खोदना शुरू किया। सधि थी ही, खोदने में ज़्यादा देर न लगी, आध घण्टे के घनघोर परिश्रम के बाद दीवार से कोई गज भर लम्बा और तीन इंच मोटा चप्पड़ टूटकर नीचे गिर पड़ा और सधि की तह में वह सफलता की कुंजी पड़ी हुई थी, जैसे समुन्दर की तह में मोती की सीप पड़ी हो! मैंने झटपट उसे निकाला और फ़ौरन दरवाज़ा खोला, मटके से गुड़ निकालकर हॉडी में भरा और दरवाज़ा बन्द कर दिया। मटके में इस लूट-पाट से स्पष्ट कमी पैदा हो गयी थी। हज़ार तरकीबें आजमाने पर भी उसका गढ़ा न भरा। मगर अबकी बार मैंने इस चटोरेपन का अम्माँ की वापसी तक खात्मा कर देने के लिए कुंजी को कुएँ में डाल दिया। किस्सा लम्बा है, मैंने कैसे ताला तोड़ा, कैसे गुड़ निकाला और मटका खाली हो जाने पर कैसे उसे फोड़ा और उसके टुकड़े रात को कुएँ में फेके और अम्माँ आयीं तो मैंने कैसे रो-रोकर उनसे मटके के चोरी जाने की कहानी कही, यह बयान करने लगा तो यह घटना जो मैं आज लिखने बैठा हूँ, अधूरी रह जायगी।

चुनाँचे इस वक़्त गुड की उस मीठी प्यारी खुशबू ने मुझे बेसुध बना दिया मगर मैं सब्र करके आगे बढ़ा।

ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, शरीर थकान से चूर होता जाता था, यहाँ तक कि पाँव काँपने लगे। कच्ची सड़क पर गाड़ियों के पहियों की लीक पड़ गयी थी। जब कभी लीक में पाँव चला जाता तो मालूम होता किसी गहरे गढ़े में गिर पड़ा हूँ। बार-बार जी में आता, यहीं सड़क के किनारे लेट जाऊँ। किताबों की छोटी सी पोटली मन भर की लगती थी। अपने को कोसता था कि किताबे लेकर क्यों चला। दूसरी ज़बान का इन्तहान देने की तैयारी कर रहा था मगर छुट्टियों में एक दिन भी तो किताब खोलने की नौबत न आयगी, खामखाह यह बोझा उठाये चला आता हूँ। ऐसा जी झुँझलाता था कि इस मूर्खता के बोझ को वहीं पटक दूँ। आखिर टाँगों ने चलने से इनकार कर दिया। एक बार मैं गिर पड़ा और सम्हलकर उठा तो पाँव थरथरा रहे थे। अब बगैर कुछ खाये पैर उठाना दूभर था, मगर यहाँ क्या खाऊँ। बार-बार रोने को जी चाहता था। संयोग से एक ईख का खेत नज़र आया; अब मैं अपने को न रोक सका। चाहता था कि खेत में घुसकर चार-पाँच ईख तोड़ लूँ और मजे से रस चूसता हुआ चलूँ। रास्ता भी कट जायगा और पेट में कुछ पड़ भी जायगा। मगर मेड़ पर पाँव रखा ही था कि काँटों में उलझ गया। किसान ने शायद मेड़ पर काँट बिखेर दिये थे। शायद बेर की झाड़ी थी। धोती-कुर्ता सब काँटों में फँसा हुआ, पीछे हटा तो काँटों की झाड़ी साथ-साथ चली, कपड़े छुड़ाने लगा तो हाथ में काँटे चुभने लगे। जोर से खीचा तो धोती फट गयी। भूख तो गायब हो गयी, फ़िक्र हुई कि इस नयी मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो। काँटों को एक जगह से अलग करता तो दूसरी जगह चिमट जाते, झुकता तो शरीर में चुभते, किसी को पुकारूँ तो चोरी खुली जाती है, अजीब मुसीबत में पड़ा हुआ था। उस वक़्त मुझे अपनी हालत पर रोना आ गया। कोई रेगिस्तानों की खाक छाननेवाला आशिक भी इस तरह काँटों में न फँसा होगा! बड़ी मुश्किल से आघ घण्टे में गला छूटा, मगर धोती और कुर्ते के माथे गयी, हाथ और पाँव छलनी हो गये वह घाते में। अब एक क़दम आगे रखना मुहाल था। मालूम नहीं कितना रास्ता तय हुआ, कितना बाकी है, न कोई आदमी न आदमजाद, किससे पूछूँ। अपनी हालत पर रोता हुआ जा रहा था। एक बड़ा गाँव नज़र आया। बड़ी खुशी हुई। कोई न कोई दुकान मिल ही जायगी। कुछ खा लूँगा और किसी के सायबान में पड़ रहूँगा, सुबह देखी जायगी।

मगर देहातों में लोग सरे-शाम सोने के आदी होते हैं। एक आदमी कुएँ पर पानी भर रहा था। उससे पूछा तो उसने बहुत ही निराशाजनक उत्तर

दिया — अब यहाँ कुछ न मिलेगा। बनिये नमक-तेल रखते हैं। हलवाई की दुकान एक भी नहीं। कोई शहर थोड़े ही है, इतनी रात तक दुकान खोले कौन बैठा रहे!

मैंने उससे बड़े विनती के स्वर में कहा — कहीं सोने को जगह मिल जायगी? उसने पूछा — कौन हो तुम? तुम्हारी जान-पहचान का यहाँ कोई है? 'जान-पहचान का कोई होता तो तुमसे क्यों पूछता?'

'तो भाई, अनजान आदमी को यहाँ नहीं ठहरने देगे। इसी तरह कल एक मुसाफिर आकर ठहरा था, रात को एक घर में से घुस गया, सुबह को मुसाफिर का पता न था।'

'तो क्या तुम समझते हो, मैं चोर हूँ।'

'किसी के माथे पर तो लिखा नहीं होता, अन्दर का हाल कौन जाने!'

'नहीं ठहराना चाहते न सही, मगर चोर तो न बनाओ। मैं जानता यह इतना मनहूस गाँव है तो इधर आता ही क्यों?'

मैंने ज्यादा खुशामद न की, जी जल गया। सड़क पर आकर फिर आगे चल पड़ा। इस वक्त मेरे होश ठिकाने न थे। कुछ खबर नहीं किस रास्ते से गाँव में आया था और किधर चला जा रहा था। अब मुझे अपने घर पहुँचने की उम्मीद न थी। रात यों ही भटकते हुए गुजरेगी, फिर इसका क्या गम कि कहाँ जा रहा हूँ। मालूम नहीं कितनी देर तक मेरे दिमाग की यह हालत रही। अचानक एक खेत में आग जलती हुई दिखायी पड़ी कि जैसे आशा का दीपक हो। जरूर वहाँ कोई आदमी होगा। शायद रात काटने को जगह मिल जाय। कदम तेज किये और करीब पहुँचा कि यकायक एक बड़ा-सा कुत्ता भूँकता हुआ मेरी तरफ दौड़ा। इतनी डरावनी आवाज थी कि मैं काँप उठा। एक पल में वह मेरे सामने आ गया और मेरी तरफ लपक-लपककर भूँकने लगा। मेरे हाथों में किताबों की पोटली के सिवा और क्या था, न कोई लकड़ी थी न पत्थर, कैसे भगाऊँ, कहीं बदमाश मेरी टाँग पकड़ ले तो क्या करूँ! अंग्रेजी नस्ल का शिकारी कुत्ता मालूम होता था। मैं जितना ही घट-घट करता था उतना ही वह गरजता था। मैं खामोश खड़ा हो गया और पोटली ज़मीन पर रखकर पाँव से जूते निकाल लिये, अपनी हिफाजत के लिए कोई हथियार तो हाथ में हो! उसकी तरफ गौर से देख रहा था कि खतरनाक हद तक मेरे करीब आये तो उसके सिर पर इतने जोर से नालदार जूता मार दूँ कि याद ही तो करे लेकिन शायद उसने मेरी नियत ताड़ ली और इस तरह

मेरी तरफ झपटा कि मैं काँप गया और जूते हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पड़े। और उसी वक़्त मैंने डरी हुई आवाज़ में पुकारा — अरे खेत में कोई है, देखो यह कुत्ता मुझे काट रहा है। ओ महतो, देखो तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।

जवाब मिला, कौन है ?

‘मैं हूँ राहगीर, तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।’

‘नहीं, काटेगा नहीं, डरो मत। कहाँ जाना है?’

‘महमूदनगर।’

‘महमूदनगर का रास्ता तो तुम पीछे छोड़ आये, आगे तो नदी है।’

मेरा कलेजा बैठ गया, रुआँसा होकर बोला — महमूदनगर का रास्ता कितनी दूर छूट गया है ?

‘यही कोई तीन मील।’

और एक लहीम-शहीम आदमी हाथ में लालटेन लिये हुए आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। सर पर हेट था, एक मोटा फौजी ओवरकोट पहने हुए, नीचे निकर, पाँव में फुलबूट, बड़ा लबा-तडगा, बड़ी बड़ी मूँछे, गोरा रंग, साकार पुरुष-सौन्दर्य। बोला — तुम तो कोई स्कूल के लड़के मालूम होते हो।

‘लडका तो नहीं हूँ, लडकों का मुर्दारिस हूँ, घर जा रहा हूँ। आज से तीन दिन छुट्टी है।’

‘तो रेल से क्यों नहीं गये?’

‘रेल छूट गयी और दूसरी एक बजे छूटती है।’

‘वह अभी तुम्हें मिल जायगी। बारह का अमल है। चलो मैं स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ।’

‘कौन-से स्टेशन का?’

‘भगवन्तपुर का।’

‘भगवन्तपुर ही से तो मैं चला हूँ। वह बहुत पीछे छूट गया होगा।’

‘बिलकुल नहीं, तुम भगवन्तपुर स्टेशन से एक मील के अन्दर खड़े हो। चलो मैं तुम्हें स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ। अभी गाड़ी मिल जायगी। लेकिन रहना चाहो तो मेरे झोपड़े में लेट जाओ। कल चले जाना।’

अपने ऊपर गुस्सा आया कि सर पीट लूँ। पाँच बजे से तेली के बैल की तरह धूम रहा हूँ और अभी भगवन्तपुर से कुल एक मील आया हूँ। रास्ता भूल गया।

यह घटना भी याद रहेगी कि चला छः घण्टे और तय किया एक मील। घर पहुँचने की घुन जैसे और भी दहक उठी।

बोला — नहीं, कल तो होली है। मुझे रात को पहुँच जाना चाहिए।

‘मगर रास्ता पहाड़ी है, ऐसा न हो कोई जानवर मिल जाय। अच्छा चलो, मैं तुम्हें पहुँचाये देता हूँ, मगर तुमने बड़ी शलती की, अनजान रास्ते में रात को पैदल चलना कितना खतरनाक है। अच्छा चलो मैं पहुँचाये देता हूँ। खैर यहीं खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ।’

कुत्ता दुम हिलाने लगा और मुझसे दोस्ती करने का इच्छुक जान पडा। दुम हिलाता हुआ, सिर झुकाये क्षमा-याचना के रूप में मेरे सामने आकर खड़ा हुआ। मैंने भी बड़ी उदारता से उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। क्षण भर में वह आदमी बन्दूक कंधे पर रखे आ गया और बोला— चलो, मगर अब ऐसी नादानी न करना, खैरियत हुई कि मैं तुम्हें मिल गया। नदी पर पहुँच जाते तो जरूर किसी जानवर से मुठभेड हो जाती।

मैंने पूछा — आप तो कोई अंग्रेज मालूम होते हैं, मगर आपकी बोली बिलकुल हमारे जैसी है ?

उसने हँसकर कहा — हाँ, मेरा बाप अंग्रेज था, फ़ौजी अफ़सर। मेरी उम्र यहीं गुजरी है। मेरी माँ उसका खाना पकाती थी। मैं भी फ़ौज में रह चुका हूँ। योरोप की लड़ाई में गया था, अब पेंशन पाता हूँ। लड़ाई में मैंने जो दृश्य अपने आँखों से देखे और जिन हालात में मुझे जिन्दगी बसर करनी पड़ी और मुझे अपनी इन्सानियत का जितना खून करना पड़ा उनसे इस पेशे से मुझे नफ़रत हो गयी और मैं पेंशन लेकर यहाँ चला आया। मेरे पापा ने यहीं एक छोटा-सा घर बना लिया था। मैं यहीं रहता हूँ और आस-पास के खेतों की रखवाली करता हूँ। यह गंगा की घाटी है। चारों तरफ पहाड़ियाँ हैं। जगली जानवर बहुत लगते हैं। सुअर, नीलगाय, हिरन सारी खेती बर्बाद कर देते हैं। मेरा काम है, जानवरों से खेती की हिफ़ाजत करना। किसानों से मुझे हल पीछे एक मन गल्ला मिल जाता है। वह मेरे गुज़र-बसर के लिए काफ़ी होता है। मेरी बुद्धियाँ माँ अभी जिन्दा है। जिस तरह पापा का खाना पकाती थी, उसी तरह अब मेरा खाना पकाती है। कभी-कभी मेरे पास आया करो, मैं तुम्हें कसरत करना सिखा दूँगा, साल भर में पहलवान हो जाओगे।

मैंने पूछा — आप अभी तक कसरत करते हैं ?

वह बोला — 'हाँ, दो घण्टे रोज़ाना कसरत करता हूँ। मुग़दर और लेज़िम का मुझे बहुत शौक है। मेरा पचासवाँ साल है, मगर एक साँस में पाँच मील दौड़ सकता हूँ। कसरत न करूँ तो इस जगल में रहूँ कैसे। मैंने ख़ूब कुश्तियाँ लड़ी हैं। अपनी रेज़ीमेण्ट में ख़ूब मजबूत आदमी था। मगर अब इस फौजी जिन्दगी की हालतों पर गौर करता हूँ तो शर्म और अफ़सोस से मेरा सर झुक जाता है। कितने ही बेगुनाह मेरी राइफ़ल के शिकार हुए। मेरा उन्होंने क्या नुक़सान किया था? मेरी उनसे कौन-सी अदावत थी? मुझे तो जर्मन और आस्ट्रियन सिपाही भी वैसे ही सच्चे, वैसे ही बहादुर, वैसे ही खुशामिज़ाज, वैसे ही हमदर्द मालूम हुए जैसे फ़्रांस या इंग्लैण्ड के। हमारी उनसे ख़ूब दोस्ती हो गयी थी, साथ खेलते थे, साथ बैठते थे, यह खयाल ही न आता था कि यह लोग हमारे अपने नहीं हैं। मगर फिर भी हम एक दूसरे के खून के प्यासे थे। किसलिए? इसीलिए कि बड़े-बड़े अंग्रेज़ सौदागरों को खतरा था कि कहीं जर्मनी उनका रोज़गार न छीन ले। यह सौदागरों का राज है। हमारी फ़ौजें उन्हीं के इशारों पर नाचनेवाली कठपुतलियाँ हैं। जान हम गरीबों की गयी, जेबें गर्म हुईं मोटे-मोटे सौदागरों की। उस वक़्त हमारी ऐसी खातिर होती थी, ऐसी पीठ ठोंकी जाती थी, गोया हम सल्तनत के दामाद हैं। हमारे ऊपर फूलों की बारिश होती थी, हमें गर्डन पार्टियाँ दी जाती थीं, हमारी बहादुरी की कहानियाँ रोज़ाना अख़बारों में तस्वीरों के साथ छपती थीं। नाजूकबदन लेडियाँ और शहज़ादियाँ हमारे लिए कपड़े सीती थीं, तरह-तरह के मुरब्बे और अचार बना-बनाकर भेजती थीं। लेकिन जब सुलह हो गयी तो उन्हीं जाँबाजियों को कोई टके को भी न पूछता था। कितनों ही के अंग-भंग हो गये थे, कोई लूला हो गया था, कोई लँगड़ा, कोई अघा। उन्हें एक टुकड़ा रोटी भी देनेवाला कोई न था। मैंने कितनों ही को सड़क पर भीख माँगते देखा। तब से मुझे इस पेशे से नफरत हो गयी। मैंने यहाँ आकर यह काम अपने जिम्मे ले लिया और खुश हूँ। सिपहगिरी इसलिए है कि उससे गरीबों की जान-माल की हिफ़ाज़त हो, इसलिए नहीं कि करोड़पतियों की बेशुमार दौलत और बढ़े। यहाँ मेरी जान हमेशा खतरे में रहती है। कई बार मरते-मरते बचा हूँ लेकिन इस काम में मर भी जाऊँ तो मुझे अफ़सोस न होगा, क्योंकि मुझे यह तस्कीन होगा कि मेरी जिन्दगी गरीबों के काम आयी। और यह बेचारे किसान मेरी कितनी खातिर करते हैं कि तुमसे क्या कहूँ। अगर मैं बीमार पड़ जाऊँ और उन्हें मालूम हो जाय कि मैं उनके शरीर के ताज़े खून से अच्छा हो जाऊँगा तो बिना

झिझके अपना खून दे देगे। पहले मैं बहुत शराब पीता था। मेरी बिरादरी को तो तुम जानते होगे। हममें बहुत ज्यादा लोग ऐसे हैं, जिनको खाना मयस्सर हो या न हो मगर शराब जरूर चाहिए। मैं भी एक बोतल शराब रोज पी जाता था। बाप ने काफी पैसे छोड़े थे। अगर किरायात से रहना जानता तो जिन्दगी भर आराम से पडा रहता। मगर शराब ने सत्यानाश कर दिया। उन दिनों मैं बड़े ठाठ से रहता था। कालर-टाई लगाये, छैला बना हुआ, नौजवान छोकरियो से आँखे लड़ाया करता था। घुडदौड में जुआ खेलना, शराब पीना, क्लब में ताश खेलना और औरतो से दिल बहलाना, यही मेरी जिन्दगी थी। तीन-चार साल में मैंने पच्चीस-तीस हजार रुपये उडा दिये। कौड़ी कफन को न रखी। जब पैसे खतम हो गये तो रोजी की फिक्र हुई। फौज में भर्ती हो गया। मगर खुदा का शुक है कि वहाँ से कुछ सीखकर लौटा। यह सच्चाई मुझ पर खुल गयी कि बहादुर का काम जान लेना नहीं, बल्कि जान की हिफाजत करना है।

‘धरोप से आकर एक दिन मैं शिकार खेलने लगा और इधर आ गया। देखा, कई किसान अपने खेतों के किनारे उदास खडे हैं। मैंने पूछा क्या बात है? तुम लोग क्यों इस तरह उदास खडे हो? एक आदमी ने कहा — क्या करे साहब, जिन्दगी से तग है। न मौत आती है न पैदावार होती है। सारे जानवर आकर खेत चर जाते हैं। किसके घर से लगान चुकाये, क्या महाजन को दें, क्या अमलों को दे और क्या खुद खायें? कल इन्ही खेतों को देखकर दिल की कली खिल जाती थी, आज इन्हे देखकर आँखों में आँसू आ जाते हैं। जानवरों ने सफाया कर दिया।

‘मालूम नहीं उस वक्त मेरे दिल पर किस देवता या पैगम्बर का साया था कि मुझे उन पर रहम आ गया। मैंने कहा — आज से मैं तुम्हारे खेतों की रखवाली करूँगा। क्या मजाल कि कोई जानवर फटक सके। एक दाना जो जाय तो जुर्माना दूँ। बस उस दिन से आज तक मेरा यही काम है। आज दस साल हो गये, मैंने कभी नाशा नहीं किया। अपना गुजर भी होता है और एहसान मुफ्त मिलता है और सबसे बड़ी बात यह है कि इस काम से दिल को खुशी होती है।’

नदी आ गयी। मैंने देखा वही घाट है जहाँ शाम को किस्ती पर बैठा था। उस चाँदनी में नदी जड़ाऊ गहनों से लदी हुई जैसे कोई सुनहरा सपना देख रही हो।

मैंने पूछा — आपका नाम क्या है? कभी-कभी आपके दर्शन के लिए आया करूँगा।

उसने लालटेन उठाकर मेरा चेहरा देखा और बोला — मेरा नाम जैक्सन है। बिल जैक्सन। जरूर आना। स्टेशन के पास जिससे मेरा नाम पूछोगे, मेरा पता बतला देगा।

यह कहकर वह पीछे की तरफ मुड़ा, मगर यकायक लौट पड़ा और बोला — मगर तुम्हे यहाँ सारी रात बैठना पड़ेगा और तुम्हारी अम्माँ घबरा रही होंगी। तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ तो मैं तुम्हे उस पार पहुँचा दूँ। आजकल पानी बहुत कम है, मैं तो अक्सर तैर आता हूँ।

मैंने एहसान से दबकर कहा — आपने यही क्या कम इनायत की है कि मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया, वर्ना शायद घर पहुँचना नसीब न होता। मैं यहाँ बैठा रहूँगा और सुबह को किस्ती से पार उतर जाऊँगा।

‘वाह, और तुम्हारी अम्माँ रोती होगी कि मेरे लाड़ले पर जाने क्या गुजरी?’

यह कहकर मिस्टर जैक्सन ने मुझे झट उठाकर कंधे पर बिठा लिया और इस तरह बेघड़क पानी में धुसे कि जैसे सूखी जमीन है। मैं दोनों हाथों से उनकी गर्दन पकड़े हूँ और कुछ हँस भी रहा हूँ; फिर भी सीना घडक रहा है और रगों में सनसनी-सी मालूम हो रही है। मगर जैक्सन साहब इत्मीनान से चले जा रहे हैं। पानी घुटने तक आया, फिर कमर तक पहुँचा, ओफ्फोह सीने तक पहुँच गया। अब साहब को एक-एक कदम मुश्किल हो रहा है। मेरी जान निकल रही है। लहरे उनके गले लिपट रही हैं। मेरे पाँव भी चूमने लगी। मेरा जी चाहता है उनसे कहीं भगवान के लिए वापस चलिए, मगर जबान नहीं खुलती। चेतना ने जैसे इस सकट का सामना करने के लिए सब दरवाजे बन्द कर लिये। डरता हूँ कहीं जैक्सन साहब फिसले तो अपना काम तमाम है। यह तो तैराक है, निकल जायेंगे, मैं लहरों की खूराक बन जाऊँगा। अफ़सोस आता है अपनी बेवकूफी पर कि तैरना क्यों न सीख लिया? यकायक जैक्सन ने मुझे दोनों हाथों से कंधे के ऊपर उठा लिया। हम बीच धार में पहुँच गये थे। बहाव में इतनी तेज़ी थी कि एक-एक कदम आगे रखने में एक-एक मिनट लग जाता था। दिन को इस नदी में कितनी ही बार आ चुका था लेकिन रात को और इस मझधार में वह बहती हुई मौत मालूम होती थी। दस-बारह कदम तक मैं जैक्सन के दोनों हाथों पर टँगा रहा। फिर पानी उतरने लगा। मैं देख न सका, मगर शायद पानी जैक्सन के सर के ऊपर तक आ गया था। इसीलिए उन्होंने मुझे हाथों पर बिठा लिया था।

जब उनकी गर्दन बाहर निकल आयी तो जोर से हँसकर बोले — लो अब पहुँच गये ।

मैंने कहा — आपको आज मेरी वजह से बड़ी तकलीफ़ हुई ।

जैक्सन ने मुझे हाथों से उतारकर फिर कंधे पर बिठाते हुए कहा — और मुझे आज जितनी खुशी हुई उतनी आज तक कभी न हुई थी, जर्मन कप्तान को क़त्ल करके भी । अपनी माँ से कहना मुझे दुआ दें ।

घाट पर पहुँचकर मैं साहब से रखसत हुआ, उसकी सज्जनता, नि स्वार्थ सेवा, और अदम्य साहस का न मिटनेवाला असर दिल पर लिये हुए । मेरे जी में आया, काश मैं भी इसी तरह लोगों के काम आ सकता ।

तीन बजे रात को जब मैं घर पहुँचा तो होली मे आग लग रही थी । मै स्टेशन से दो मील सरपट दौड़ता हुआ गया । मालूम नहीं भूखे शरीर में इतनी ताकत कहाँ से आ गयी थी ।

अम्माँ मेरी आवाज सुनते ही आँगन में निकल आयीं और मुझे छाती से लगा लिया और बोली — इतनी रात कहाँ कर दी, मैं तो साँझ से तुम्हारी राह देख रही थी, चलो खाना खा लो, कुछ खाया-पिया है कि नहीं ?

वह अब स्वर्ग में है । लेकिन उनका वह मुहब्बत-भरा चेहरा मेरी आँखों के सामने है और वह प्यारभरी आवाज़ कानों में गूँज रही है ।

मिस्टर जैक्सन से कई बार मिल चुका हूँ । उसकी सज्जनता ने मुझे उसका भक्त बना दिया है । मै उसे इन्सान नहीं फ़रिश्ता समझता हूँ ।

—‘जादे राह’ से

नादान दोस्त

केशव के घर में कार्निंस के ऊपर एक चिड़िया ने अण्डे दिये थे। केशव और उसकी बहन श्यामा दोनों बड़े ध्यान से चिड़िया को वहाँ आते-जाते देखा करते। सबेरे दोनों आँखें मलते कार्निंस के सामने पहुँच जाते और चिड़ा या चिड़िया दोनों को वहाँ बैठा पाते। उनको देखने में दोनों बच्चों को न मालूम क्या मज्जा मिलता, दूध और जलेबी की सुघ भी न रहती थी। दोनों के दिल में तरह-तरह के सवाल उठते। अण्डे कितने बड़े होंगे? किस रंग के होंगे? कितने होंगे? क्या खाते होंगे? उनमें बच्चे किस तरह निकल आयेगे? बच्चों के पर कैसे निकलेंगे? घोंसला कैसा है? लेकिन इन बातों का जवाब देनेवाला कोई नहीं। न अम्माँ को घर के काम-धंधों से फुसँत थी न बाबू जी को पढ़ने-लिखने से। दोनों बच्चे आपस ही में सवाल-जवाब करके अपने दिल को तसल्ली दे लिया करते थे।

श्यामा कहती — क्यों भइया, बच्चे निकलकर फुर से उड़ जायेंगे?

केशव विद्वानों जैसे गर्व से कहता — नहीं री पगली, पहले पर निकलेंगे। बगैर परों के बेचारे कैसे उड़ेंगे?

श्यामा — बच्चों को क्या खिलायेंगी बेचारी?

केशव इस पेचीदा सवाल का जवाब कुछ न दे सकता था।

इस तरह तीन-चार दिन गुजर गये। दोनों बच्चों की जिज्ञासा दिन-दिन बढ़ती जाती थी। अण्डों को देखने के लिए वे अधीर हो उठते थे। उन्होंने अनुमान लगाया कि अब ज़रूर बच्चे निकल आये होंगे। बच्चों के चारे का सवाल अब उनके सामने आ खड़ा हुआ। चिड़िया बेचारी इतना दाना कहाँ पायेगी कि सारे बच्चों का पेट भरे। शरीर बच्चे भूख के मारे चूँ-चूँ करके मर जायेंगे।

इस मुसीबत का अन्दाज़ा करके दोनों घबरा उठे। दोनों ने फ़ैसला किया कि कार्निंस पर थोड़ा-सा दाना रख दिया जाय। श्यामा खुश होकर बोली — तब तो चिड़ियों को चारे के लिए कहीं उड़कर न जाना पड़ेगा न?

केशव — नहीं, तब क्यों जायेंगी?

श्यामा — क्यों भइया, बच्चों को धूप न लगती होगी?

केशव का ध्यान इस तकलीफ की तरफ न गया था। बोला—जरूर तकलीफ हो रही होगी। बेचारे प्यास के मारे तड़पते होंगे। ऊपर छाया भी तो कोई नहीं।

आखिर यही फैसला हुआ कि घोंसले के ऊपर कपड़े की छत बना देनी चाहिए। पानी की प्याली और थोड़े से चावल रख देने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हो गया।

दोनों बच्चे बड़े चाव से काम करने लगे। श्यामा माँ की आँख बचाकर मटके से चावल निकाल लायी। केशव ने पत्थर की प्याली का तेल चुपके से जमीन पर गिरा दिया और उसे खूब साफ करके उसमें पानी भरा।

अब चाँदनी के लिए कपड़ा कहाँ से आये? फिर ऊपर बगैर छड़ियों के कपड़ा ठहरेगा कैसे और छड़ियाँ खड़ी होंगी कैसे?

केशव बड़ी देर तक इसी उधेड़-बुन में रहा। आखिरकार उसने यह मुश्किल भी हल कर दी। श्यामा से बोला—जाकर कूड़ा फेकनेवाली टोकरी उठा लाओ। अम्माँ जी को मत दिखाना।

श्यामा—वह तो बीच से फटी हुई है। उसमें से घूप न जायगी?

केशव ने झुंझलाकर कहा—तू टोकरी तो ला, मैं उसका सूराख बन्द करने की कोई हिकमत निकालूँगा।

श्यामा दौड़कर टोकरी उठा लायी। केशव ने उसके सूराख में थोड़ा-सा कागज ठूस दिया और तब टोकरी को एक टहनी से टिकाकर बोला—देख, ऐसे ही घोंसले पर उसकी आड कर दूँगा। तब कैसे घूप जायगी?

श्यामा ने दिल में सोचा, भइया कितने चालाक है!

२

गर्मी के दिन थे। बाबू जी दफ़्तर गये हुए थे। अम्माँ दोनों बच्चों को कमरे में सुलाकर खुद सो गयी थी। लेकिन बच्चों की आँखों में आज नींद कहाँ? अम्माँ जी को बहलाने के लिए दोनों दम रोके आँखें बन्द किये मौके का इन्तजार कर रहे थे। ज्योही मालूम हुआ कि अम्माँ जी अच्छी तरह से सो गयी, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से दरवाज़े की सिटकनी खोलकर बाहर निकल आये। अण्डों की हिफ़ाजत की तैयारियाँ होने लगीं। केशव कमरे से एक स्टूल उठा लाया, लेकिन जब उससे काम न चला तो नहाने की चौकी लाकर स्टूल के नीचे रखी और डरते-डरते स्टूल पर चढ़ा।

श्यामा दोनों हाथों से स्टूल पकड़े हुए थी। स्टूल चारों टाँगों बराबर न होने के कारण जिस तरफ ज्यादा दबाव पाता था, ज़रा-सा हिल जाता था। उस दक़्त केशव को कितनी तकलीफ उठानी पड़ती थी यह उसी का दिल जानता था। दोनों हाथों से कार्निंस पकड़ लेता और श्यामा को दबी आवाज से डाँटता — अच्छी तरह पकड़, वर्ना उतरकर बहुत मारूँगा। मगर बेचारी श्यामा का दिल तो ऊपर कार्निंस पर था। बार-बार उसका ध्यान उधर चला जाता और हाथ ढीले पड़ जाते।

केशव ने ज्यों ही कार्निंस पर हाथ रखा, दोनों चिड़ियाँ उड़ गयीं। केशव ने देखा, कार्निंस पर थोड़े तिनके बिछे हुए हैं, और उस पर तीन अण्डे पड़े हैं। जैसे घोंसले उसने पेड़ों पर देखे थे, वैसे कोई घोंसला नहीं है। श्यामा ने नीचे से पूछा— कै बच्चे हैं भइया ?

केशव — तीन अण्डे हैं, अभी बच्चे नहीं निकले।

श्यामा — जरा हमें दिखा दो भइया, कितने बड़े हैं ?

केशव — दिखा दूँगा, पहले जरा चिथड़े ले आ, नीचे बिछा दूँ। बेचारे अडे तिनकों पर पड़े हैं।

श्यामा दौड़कर अपनी पुरानी धोती फाड़कर एक टुकड़ा लायी। केशव ने झुककर कपड़ा ले लिया, उसके कई तह करके उसने एक गद्दी बनायी और उसे तिनकों पर बिछाकर तीनों अण्डे धीरे से उस पर रख दिये।

श्यामा ने फिर कहा — हमको भी दिखा दो भइया।

केशव — दिखा दूँगा, पहले जरा वह टोकरी तो दे दो, ऊपर छाया कर दूँ।

श्यामा ने टोकरी नीचे से थमा दी और बोली — अब तुम उतर आओ, मैं भी तो देखूँ।

केशव ने टोकरी को एक टहनी से टिकाकर कहा — जा, दाना और पानी की प्याली ले आ, मैं उतर आऊँ तो तुझे दिखा दूँगा।

श्यामा प्याली और चावल भी लायी। केशव ने टोकरी के नीचे दोनों चीजें रख दी और आहिस्ता से उतर आया।

श्यामा ने गिड़गिड़ाकर कहा — अब हमको भी चढ़ा दो भइया।

केशव — तू गिर पड़ेगी।

श्यामा — न गिरूँगी भइया, तुम नीचे से पकड़े रहना।

केशव — न भइया, कहीं तू गिर-गिरा पड़े तो अम्माँ जी मेरी चटनी ही कर

डालेंगी। कहें कि तूने ही चढ़ाया था। क्या करेगी देखकर? अब अंडे बड़े आराम से हैं। जब बच्चे निकलेगे, तो उनको पालेंगे।

दोनों चिड़ियाँ बार-बार कार्निंस पर आती थी और बगैर बैठे ही उड़ जाती थीं। केशव ने सोचा, हम लोगों के डर से नहीं बैठतीं। स्टूल उठाकर कमरे में रख आया, चौकी जहाँ की थी, वहाँ रख दी।

श्यामा ने आँखों में आँसू भरकर कहा — तुमने मुझे नहीं दिखाया, मैं अम्माँ जी से कह दूँगी।

केशव — अम्माँजी से कहेगी तो बहुत मारूँगा, कहे देता हूँ।

श्यामा — तो तुमने मुझे दिखाया क्यों नहीं?

केशव — और गिर पड़ती तो चार सर न हो जाते!

श्यामा — हो जाते, हो जाते। देख लेना मैं कह दूँगी।

इतने में कोठरी का दरवाजा खुला और माँ ने धूप से आँखों को बचाते हुए कहा — तुम दोनों बाहर कब निकल आये? मैंने कहा न था कि दोपहर को न निकलना? किसने किवाड़ खोला?

किवाड़ केशव ने खोला था, लेकिन श्यामा ने माँ से यह बात नहीं कही। उसे डर लगा कि भइया पिट जायँगे। केशव दिल में काँप रहा था कि कहीं श्यामा कह न दे। अण्डे न दिखाये थे, इससे अब उसको श्यामा पर विश्वास न था। श्यामा सिर्फ़ मुहल्लत के मारे चुप थी या इस क्रसूर में हिस्सेदार होने की वजह से, इसका फैसला नहीं किया जा सकता। शायद दोनों ही बातें थीं।

माँ ने दोनों को डाँट-डपटकर फिर कमरे में बन्द कर दिया और आप धीरे-धीरे उन्हें पखा झलने लगी। अभी सिर्फ़ दो बजे थे। बाहर तेज़ लू चल रही थी। अब दोनों बच्चों को नींद आ गयी थी।

३

चार बजे यकायक श्यामा की नींद खुली। किवाड़ खुले हुए थे। वह दौड़ी हुई कार्निंस के पास आयी और ऊपर की तरफ़ ताकने लगी। टोकरी का पता न था। सयोग से उसकी नज़र नीचे गयी और वह उलटे पाँव दौड़ती हुई कमरे में जाकर जोर से बोली — भइया, अण्डे तो नीचे पड़े हैं, बच्चे उड़ गये!

केशव घबराकर उठा और दौड़ा हुआ बाहर आया तो क्या देखता है कि तीनों

अण्डे नीचे टूटे पड़े हैं और उनसे कोई चूने की-सी चीज़ बाहर निकल आयी है। पानी की प्याली भी एक तरफ़ टूटी पड़ी है।

उसके चेहरे का रंग उड़ गया। सहमी हुई आँखों से ज़मीन की तरफ़ देखने लगा।

श्यामा ने पूछा — बच्चे कहाँ उड़ गये भइया ?

केशव ने करुण स्वर में कहा — अण्डे तो फूट गये।

‘और बच्चे कहाँ गये ?’

केशव — तेरे सर में। देखती नहीं है अण्डों में से उजला-उजला पानी निकल आया है। वही तो दो-चार दिन में बच्चे बन जाते।

माँ ने सोटी हाथ में लिये हुए पूछा — तुम दोनों वहाँ धूप में क्या कर रहे हो ?

श्यामा ने कहा — अम्माँ जी, चिड़िया के अण्डे टूटे पड़े हैं।

माँ ने आकर दूटे हुए अण्डों को देखा और गुस्से से बोलीं — तुम लोगों ने अण्डों को छुआ होगा।

अब तो श्यामा को भइया पर ज़रा भी तरस न आया। उसी ने शायद अण्डों को इस तरह रख दिया कि वह नीचे गिर पड़े। इसकी उसे सज़ा मिलनी चाहिए। बोली — इन्होंने अण्डों को छेड़ा था अम्माँ जी।

माँ ने केशव से पूछा — क्यों रे ?

केशव भीगी बिल्ली बना खड़ा रहा।

माँ — तू वहाँ पहुँचा कैसे ?

श्यामा — चौके पर स्टूल रखकर चढ़े अम्माँजी।

केशव — तू स्टूल थामे नहीं खड़ी थी ?

श्यामा — तुम्ही ने तो कहा था !

माँ — तू इतना बड़ा हुआ, तुझे अभी इतना भी नहीं मालूम कि छूने से चिड़ियों के अण्डे गन्दे हो जाते हैं। चिड़िया फिर उन्हें नहीं सेती।

श्यामा ने डरते-डरते पूछा — तो क्या चिड़िया ने अण्डे गिरा दिये हैं, अम्माँ जी ?

माँ — और क्या करती। केशव के सिर इसका पाप पड़ेगा। हाय, हाय, तीन जाने ले ली दुष्ट ने !

केशव रोनी सूरत बनाकर बोला — मैंने तो सिर्फ़ अण्डों को गद्दी पर रख दिया था, अम्माँ जी !

माँ को हँसी आ गयी। मगर केशव को कई दिनों तक अपनी गलती पर अफ-सोस होता रहा। अण्डो की हिफाजत करने के जोम में उसने उनका सत्यानाश कर डाला। इसे याद करके वह कभी-कभी रो पड़ता था।

दोनों चिड़ियाँ वहाँ फिर न दिखायी दी।

—‘खाके परवाना’ से

प्रतिशोध

माया अपने तिमज़िले मकान की छत पर खड़ी सड़क की ओर उद्विग्न और अधीर आँखों से ताक रही थी और सोच रही थी, वह अब तक आये क्यों नहीं ? कहाँ देर लगायी ? इसी गाड़ी से आने को लिखा था। गाड़ी तो आ गयी होगी, स्टेशन से मुसाफिर चले आ रहे हैं। इस वक़्त तो कोई दूसरी गाड़ी नहीं आती। शायद असबाब वगैरह रखने में देर हुई, यार-दोस्त स्टेशन पर बधाई देने के लिए पहुँच गये हों, उनसे फुर्सत मिलेगी तब घर की सुब आयेगी ! उनकी जगह मैं होती तो सीधे घर आती। दोस्तों से कह देती, जनाब इस वक़्त मुझे माफ़ कीजिए, फिर मिलेगा। मगर दोस्तों में तो उनकी जान बसती है !

मिस्टर व्यास लखनऊ के नौजवान मगर अत्यन्त प्रतिष्ठित बैरिस्टरो में है। तीन महीने से वह एक राजनीतिक मुकदमे की पैरवी करने के लिए सरकार की ओर से लाहौर गये हुए हैं। उन्होने माया को लिखा था — जीत हो गयी। पहली तारीख को मैं शाम की मेल से जरूर पहुँचूँगा। आज वही शाम है। माया ने आज सारा दिन तैयारियों में बिताया। सारा मकान धुलवाया। कमरों के सजावट के सामान साफ़ कराये, मोटर धुलवायी। यह तीन महीने उसने तपस्या के काटे थे। मगर अब तक मिस्टर व्यास नहीं आये।

उसकी छोटी बच्ची तिलोत्तमा आकर उसके पैरों से चिमट गयी और बोली — अम्माँ, बाबू जी कब आयेंगे ?

माया ने उसे गोद में उठा लिया और चूमकर बोली — आते ही होंगे बेटी, गाड़ी तो कब की आ गयी।

तिलोत्तमा — मेरे लिए अच्छी-अच्छी गुड़ियाँ लाते होंगे।

माया ने कुछ जवाब न दिया। इतज़ार अब गुस्से में बदलता जाता था। वह सोच रही थी, जिस तरह मुझे हज़रत परेशान कर रहे हैं, उसी तरह मैं भी उनको परेशान करूँगी। घण्टे भर तक बोलूँगी ही नहीं। आकर स्टेशन पर बैठे हुए है ! जलाने में उन्हें मज़ा आता है। यह उनकी पुरानी आदत है। दिल को

क्या कहूँ। नहीं, जी तो यही चाहता है कि जैसे वह मुझसे बेरुखी दिखलाते हैं, उसी तरह मैं भी उनकी बात न पूछूँ!

यकायक एक नौकर ने ऊपर आकर कहा — बहू जी, लाहौर से यह तार आया है।

माया अन्दर ही अन्दर जल उठी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि जैसे बड़े जोर की हुरारत हो गयी हो। बरबस खयाल आया — सिवाय इसके और क्या लिखा होगा कि इस गाड़ी से न आ सकूँगा। तार दे देना कौन मुश्किल है। मैं भी क्यों न तार दे दूँ कि मैं एक महीने के लिए मँके जा रही हूँ। नौकर से कहा — तार ले जाकर कमरे में मेज़ पर रख दो। मगर फिर कुछ सोचकर उसने लिफ़ाफ़ा ले लिया और खोला ही था कि कागज़ हाथ से छूटकर गिर पड़ा। लिखा था — मिस्टर व्यास को आज दस बजे रात किसी बदमाश ने क़त्ल कर दिया।

२

कई महीने बीत गये। मगर खूनी का अब तक पता नहीं चला। खुफ़िया पुलिस के अनुभवी लोग उसका सुराग़ लगाने की फ़िक्र में परेशान है। खूनी को गिरफ्तार करा देनेवाले को बीस हज़ार रुपये इनाम दिये जाने का ऐलान कर दिया गया है। मगर कोई नतीजा नहीं।

जिस होटल में मिस्टर व्यास ठहरे थे, उसी में एक महीने से माया ठहरी हुई है। उस कमरे से उसे प्यार-सा हो गया है। उसकी सूरत इतनी बदल गयी है कि अब उसे पहचानना मुश्किल है। मगर उसके चेहरे पर बेकसी या दर्द का पीलापन नहीं क्रोध की गर्मी दिखायी पड़ती है। उसकी नशीली आँखों में अब खून की प्यास है और प्रतिशोध की लपट। उसके शरीर का एक-एक कण प्रतिशोध की आग से जला जा रहा है। अब यही उसके जीवन का ध्येय, यही उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा है। उसके प्रेम की सारी निधि अब यही प्रतिशोध का आवेग है। जिस पापी ने उसके जीवन का सर्वनाश कर दिया उसे अपने सामने तड़पते देखकर ही उसकी आँखें ठण्डी होंगी। खुफ़िया पुलिस भय और लोभ, जाँच और पड़ताल से काम ले रही है, मगर माया ने अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए एक दूसरा ही रास्ता अपनाया है। मिस्टर व्यास को प्रेत-विद्या से लगाव था। उनकी सगति में माया ने भी कुछ आरम्भिक अभ्यास किया था। उस वक़्त उसके लिए यह एक मनोरंजन था। मगर अब यही उसके जीवन का सम्बल था। वह रोज़ाना तिलो-

त्तमा पर अमल करती और रोज-ब-रोज अभ्यास बढ़ाती जाती थी। वह उस दिन का इन्तज़ार कर रही थी जब वह अपने पति की आत्मा को बुलाकर उससे खूनी का सुराग लगा सकेगी। वह बड़ी लगन से, बड़ी एकाग्रचित्तता से अपने काम में व्यस्त थी। रात के दस बज गये थे। माया ने कमरे को अँवरा कर दिया था और तिलोत्तमा पर अभ्यास कर रही थी। यकायक उसे ऐसा मालूम हुआ कि कमरे में कोई दिव्य व्यक्तित्व आया। बुझते हुए दीपक की अन्तिम झलक की तरह एक रोशनी नज़र आयी।

माया ने पूछा — आप कौन हैं ?

तिलोत्तमा ने हँसकर कहा — तुम मुझे नहीं पहचानती ? मैं ही तुम्हारा मनमोहन हूँ जो दुनिया में मिस्टर व्यास के नाम से मशहूर था।

‘आप खूब आये। मैं आपसे खूनी का नाम पूछना चाहती हूँ।’

‘उसका नाम है, ईश्वरदास।’

‘कहाँ रहता है?’

‘शाहजहाँपुर।’

माया ने मुहल्ले का नाम, मकान का नम्बर, सूरत-शकल, सब कुछ खूब विस्तार के साथ पूछा और एक कागज़ पर नोट कर लिया। तिलोत्तमा ज़रा देर में उठ बैठी। जब कमरे में फिर रोशनी हुई तो माया का मुरझाया हुआ पीला चेहरा विजय की प्रसन्नता से चमक रहा था। उसके शरीर में एक नया जोश लहरे मार रहा था कि जैसे प्यास से मरते हुए मुसाफ़िर को पानी मिल गया हो।

उसी रात को माया ने लाहौर से शाहजहाँपुर जाने का इरादा किया।

३

रात का वज़त, पजाब मेल बड़ी तेज़ी से अँवरे को चीरती हुई चली जा रही थी। माया एक सेकेण्ड क्लास के कमरे में बैठी सोच रही थी कि शाहजहाँपुर में वह कहाँ ठहरेगी, कैसे ईश्वरदास का मकान तलाश करेगी और कैसे उससे खून का बदला लेगी। उसके बगल में तिलोत्तमा बेखबर सो रही थी। सामने ऊपर के बर्थ पर एक आदमी नींद में शाफ़िल पड़ा हुआ था।

यकायक गाड़ी का कमरा खुला और दो आदमी कोट-पतलून पहने कमरे में दाख़िल हुए। दोनों अप्रेज़ थे। एक माया की तरफ बैठा और दूसरा दूसरी तरफ़। माया सिमटकर बैठ गयी। इन आदमियों का यो बैठना उसे बहुत बुरा मालूम

हुआ। वह कहना चाहती थी आप लोग दूसरी तरफ बैठे, पर वही औरत जो खून का बदला लेने जा रही थी, सामने यह खतरा देखकर काँप उठी। वह दोनों शैतान उसे सिमटते देखकर और भी करीब आ गये। माया अब वहाँ न बैठी रह सकी। वह उठकर दूसरे बर्थ पर जाना चाहती थी कि उनमें से एक ने उसका हाथ पकड़ लिया। माया ने जोर से हाथ छुड़ाने की कोशिश करके कहा — तुम्हारी शामत तो नहीं आयी है, छोड़ दो मेरा हाथ, सुअर ?

इस पर दूसरे आदमी ने उठकर माया को सीने से लिपटा लिया और लड़-खड़ाती हुई जबान से बोला — वेल, हम तुमको बहुत-सा रुपया देगा।

माया ने उसे सारी ताकत से ढकेलने की कोशिश करके कहा — हट जा हरामजादे, वरना अभी तेरा सर तोड़ दूँगी।

दूसरा आदमी भी उठ खड़ा हुआ और दोनों मिलकर माया को बर्थ पर लिटाने की कोशिश करने लगे। यकायक यह खटपट सुनकर ऊपर के बर्थ पर सोया हुआ आदमी चौका और उन बदमाशों की हरकत देखकर ऊपर से कूद पड़ा। दोनों गोरे उसे देखकर माया को छोड़ उसकी तरफ झपटे और उसे घूँसे मारने लगे। दोनों उस पर ताबड़तोड़ हमले कर रहे थे और वह हाथों से अपने को बचा रहा था। उसे वार करने का कोई मौका न मिलता था। यकायक उसने उचककर अपने बिस्तरे में से एक छुरा निकाल लिया और आस्तीने समेटकर बोला— तुम दोनों अगर अभी बाहर न चले गये तो मैं एक को भी जीता न छोड़ूँगा।

दोनों गोरे छुरा देखकर डरे मगर वह भी निहत्थे न थे। एक ने जब से रिवाल्वर निकाल लिया और उसकी नली उस आदमी की तरफ करके बोला — निकल जाओ, रैस्कल !

माया थरथर काँप रही थी कि न जाने क्या आफत आनेवाली है। मगर खतरा हमारी छिपी हुई हिम्मतों की कुजी है। खतरे में पड़कर हम भय की सीमाओं से आगे बढ़ जाते हैं और वह कुछ कर गुजरते हैं जिस पर हमें खुद हैरत होती है। वही माया जो अब तक थरथर काँप रही थी, बिल्ली की तरह कूदकर उस गोरे की तरफ लपकी और उसके हाथ से रिवाल्वर खींचकर गाड़ी के नीचे फेंक दिया। गोरे ने खिसियाकर माया को दाँत काटना चाहा मगर माया ने जल्दी से हाथ खींच लिया और खतरे की ज़मीर के पास जाकर उसे जोर से खींचा। दूसरा गोरा अब तक किनारे खड़ा था। उसके पास कोई हथियार न था इसलिए वह छुरी के सामने न आना चाहता था। जब उसने देखा कि माया ने जमीर खींच ली तो भीतर कड़

दरवाजा खोलकर भागा। उसका साथी भी उसके पीछे-पीछे भागा। चलते-चलते छुरीवाले आदमी ने उसे इतने जोर से धक्का दिया कि वह मुँह के बल गिर पड़ा। फिर तो उसने इतनी ठोकरे, इतनी लाते और इतने धुँसे जमाये कि उसके मुँह से खून निकल पड़ा। इतने में गाडी रुक गयी और गार्ड लालटेन लिये आता दिखायी दिया।

४

मगर वह दोनों शैतान गाडी को रुकते देखकर बेतहाशा नीचे कूद पड़े और उस अँधेरे में न जाने कहाँ खो गये। गार्ड ने भी ज्यादा छानबीन न की और करता भी तो उस अँधेरे में पता लगना मुश्किल था। दोनों तरफ खड़बे, शायद गाडी किसी नदी के पास थी। वहाँ दो क्या दो सौ आदमी उस वक्त बडी आसानी से छिप सकते थे। दस मिनट तक गाडी खडी रही, फिर चल पडी।

माया ने मुक्ति की साँस लेकर कहा — आप आज न होते तो ईश्वर ही जाने मेरा क्या हाल होता। आपके कही चोट तो नहीं आयी ?

उस आदमी ने छुरे को जेब में रखते हुए कहा — बिलकुल नहीं। मैं ऐसा बेसुध सोया हुआ था कि उन बदमाशों के आने की खबर ही न हुई। वर्ना मैंने उन्हें अन्दर पाँव ही न रखने दिया होता। अगले स्टेशन पर रिपोर्ट करूँगा।

माया — जी नहीं, खामखाह की बदनामी और परेशानी होगी। रिपोर्ट करने से कोई फायदा नहीं। ईश्वर ने आज मेरी आबरू रख ली। मेरा कलेजा अभी तक घड़-घड़ कर रहा है। आप कहाँ तक चलेगे ?

‘मुझे शाहजहाँपुर जाना है।’

‘वही तक तो मुझे भी जाना है। शुभ नाम क्या है? कम से कम अपने उपकारक के नाम से तो अपरिचित न रहूँ।’

‘मुझे तो ईश्वरदास कहते हैं।’

माया का कलेजा धक् से हो गया। जरूर यह वही खूनी है, इसकी शकल-सूरत भी वही है जो उसे बतलायी गयी थी। उसने डरते-डरते पूछा — आपका मकान किस मुहल्ले में है ?

‘... में रहता हूँ।’

माया का दिल बैठ गया। उसने खिड़की से सिर बाहर निकालकर एक लम्बी साँस ली। हाय ! खूनी मिला भी तो ऐसी हालत में जब वह उसके

एहसान के बोझ से दबी हुई है ! क्या उस आदमी को वह खंजर का निशाना बना सकती है, जिसने बगैर किसी परिचय के सिर्फ हमदर्दी के जोश में ऐसे गाढ़े वक्त में उसकी मदद की ? जान पर खेल गया ? वह एक अजीब उलझन में पड़ गयी। उसने उसके चेहरे की तरफ देखा, शराफत झलक रही थी। ऐसा आदमी खून कर सकता है, इसमें उसे संदेह था।

ईश्वरदास ने पूछा — आप लाहौर से आ रही है न ? शाहजहाँपुर में कहाँ जाइएगा ?

‘अभी तो कही धर्मशाला में ठहरूँगी, मकान का इन्तजाम करना है।’

ईश्वरदास ने ताज्जुब से पूछा — तो वहाँ आप किसी दोस्त या रिस्तेदार के यहाँ नहीं जा रही है ?

‘कोई न कोई मिल ही जायगा।’

‘यों आपका असली मकान कहाँ है ?’

‘असली मकान पहले लखनऊ था, अब कही नहीं है। मैं बेवा हूँ।’

५

ईश्वरदास ने शाहजहाँपुर में माया के लिए एक अच्छा मकान तय कर दिया। एक नौकर भी रख दिया। दिन में कई बार हाल-चाल पूछने के लिए आता। माया कितना ही चाहती थी कि उसके एहसान न ले, उससे घनिष्ठता न पैदा करे, मगर वह इतना नेक, इतना बामुरीवत और शरीफ़ था कि माया मजबूर हो जाती थी।

एक दिन वह कई गमले और फ़र्नीचर लेकर आया। कई खूबसूरत तसवीरें भी थीं। माया ने तयारियाँ चढ़ाकर कहा — मुझे साज-सामान की बिलकुल ज़रूरत नहीं, आप नाहक तकलीफ़ करते हैं।

ईश्वरदास ने इस तरह लज्जित होकर कि जैसे उससे कोई भूल हो गयी हो, कहा — मेरे घर में यह चीज़ें बेकार पड़ी थी, लाकर रख दी।

‘मैं इन टीम-टाम की चीज़ों की गुलाम नहीं बनना चाहती।’

ईश्वरदास ने डरते-डरते कहा — अगर आपको नागवार हो तो उठवा ले जाऊँ ?

माया ने देखा कि उसकी आँखें भर आयी हैं, मजबूर होकर बोली — अब आप ले आये हैं तो रहने दीजिए। मगर आगे से कोई ऐसी चीज़ न लाइएगा।

एक दिन माया का नौकर न आया। माया ने आठ-नौ बजे तक उसकी राह देखी। जब अब भी वह न आया तो उसने जूठे बर्तन माँजना शुरू किया। उसे

कभी अपने हाथ से चौका-बर्तन करने का संयोग न हुआ था। बार-बार अपनी हालत पर रोना आता था। एक दिन वह था कि उसके घर में नौकरों की एक पलटन थी, आज उसे अपने हाथों बर्तन माँजने पड़ रहे हैं। तिलोत्तमा दौड़-दौड़ कर बड़े जोश से काम कर रही थी। उसे कोई फ़िक्र न थी। आपने हाथों से काम करने का, अपने को उपयोगी साबित करने का ऐसा अच्छा मौका पाकर उसकी खुशी की कोई सीमा न रही। इतने में ईश्वरदास आकर खड़ा हो गया और भाया को बर्तन माँजते देखकर बोला — यह आप क्या कर रही है? रहने दीजिए, मैं अभी एक आदमी को बुलाये लाता हूँ। आपने मुझे क्यों न खबर दी, राम राम, उठ आइए वहाँ से।

माया ने लापरवाही से कहा — कोई ज़रूरत नहीं। आप तकलीफ न कीजिए। मैं अभी माँजे लेती हूँ।

‘इसकी ज़रूरत भी क्या, मैं एक मिनट में आता हूँ।’

‘नहीं, आप किसी को न लाइए, मैं इतने बर्तन बड़ी आसानी से धो लूंगी।’

‘अच्छा तो लाइए मैं भी आपकी कुछ मदद करूँ।’

यह कहकर उसने डौल उठा लिया और बाहर से पानी लेने दौड़ा। पानी लाकर उसने माँजे हुए बर्तनों को धोना शुरू किया।

माया ने उसके हाथ से बर्तन छीनने की कोशिश करके कहा — आप मुझे क्यों शर्मिन्दा करते हैं? रहने दीजिए, मैं अभी साफ किये डालती हूँ।

‘आप मुझे शर्मिन्दा करती है या मैं आपको शर्मिन्दा कर रहा हूँ? आप यहाँ मुसाफिर है, मैं यहाँ का रहनेवाला हूँ, मेरा धर्म है कि आपकी सेवा करूँ। आपने एक ज़्यादती तो यह की कि मुझे जरा भी खबर न दी, अब दूसरी ज़्यादती यह कर रही है। मैं इसे बदरिश्त नहीं कर सकता।’

ईश्वरदास ने जरा देर में सारे बर्तन साफ़ करके रख दिये। ऐसा मालूम होता था कि वह ऐसे कामों का आदी है। बर्तन धोकर उसने सारे बर्तन पानी से भर दिये और तब माथे से पसीना पोंछता हुआ बोला — बाज़ार से कोई चीज़ लानी हो तो बतला दीजिए, अभी ला दूँ।

माया — जी नहीं, माफ़ कीजिए, आप अपने घर का रास्ता लीजिए।

ईश्वरदास — तिलोत्तमा, आओ आज तुम्हें सैर करा लायें।

माया — जी नहीं, रहने दीजिए। वह इस वक़्त सैर करने नहीं जाती।

माया ने यह शब्द इतने रूखेपन से कहे कि ईश्वरदास का मुँह उतर गया।

उसने दुबारा कुछ न कहा। चुपके से चला गया। उसके जाने के बाद माया ने सोचा मैंने उसके साथ कितनी बेमुरौवती की। रेलगाड़ी की उस दुखद घटना के बाद उसके दिल में बराबर प्रतिशोध और मनुष्यता में लडाई छिडी हुई थी। अगर ईश्वरदास उस मौके पर स्वर्ग के एक दूत की तरह न आ जाता तो आज उसकी क्या हालत होती, यह खयाल करके उसके रोएँ खड़े हो जाते थे और ईश्वरदास के लिए उसके दिल की गहराइयों से कृतज्ञता के शब्द निकलते। क्या अपने ऊपर इतना बड़ा एहसान करनेवाले के खून से वह अपने हाथ रेंगेगी? लेकिन उसी के हाथो उसे यह मनहूस दिन भी तो देखना पड़ा! उसी के कारण तो उसने रेल का वह सफर किया था वना वह अकेले बिना किसी दोस्त या मददगार के सफर ही क्यों करती? उसी के कारण तो आज वह वैधव्य की विपत्तियाँ झेल रही है और सारी उम्र झेलेगी। इन बातों का खयाल करके उसकी आँखें लाल हो जाती, मुँह से एक गर्म आह निकल जाती और जी चाहता इसी वकत कटार लेकर चल पड़े और उसका काम तमाम कर दे।

६

आज माया ने अन्तिम निश्चय कर लिया। उसने ईश्वरदास की दावत की थी। यही उसकी आखिरी दावत होगी। ईश्वरदास ने उस पर एहसान जरूर किये है लेकिन दुनिया में कोई एहसान कोई नेकी उस शोक के दाग को मिटा सकती है? रात के नौ बजे ईश्वरदास आया तो माया ने अपनी वाणी में प्रेम का आवेग भरकर कहा — बैठिए, आपके लिए गर्म-गर्म पूडियाँ निकालूँ!

ईश्वरदास — क्या अभी तक आप मेरे इन्तजार में बैठी हुई है? नाहक गर्मी में परीखान हुई।

माया ने थाली परसकर उसके सामने रखते हुए कहा — मैं खाना पकाना नहीं जानती। अगर कोई चीज अच्छी न लगे तो माफ कीजिएगा।

ईश्वरदास ने खूब तारीफ कर करके एक-एक चीज खायी। ऐसी स्वादिष्ट चीजे उसने अपनी उम्र में कभी नहीं खायी थी।

‘आप तो कहती थीं मैं खाना पकाना नहीं जानती?’

‘तो क्या मैं गलत कहती थी?’

‘बिलकुल गलत। आपने खुद अपनी गलती साबित कर दी। ऐसे खस्ते मैंने जिन्दगी में कभी नहीं खाये थे।’

‘आप मुझे बनाते हैं, अच्छा साहब बना लीजिए !’

‘नहीं मैं बनाता नहीं, बिलकुल सच कहता हूँ। किस किस चीज की तारीफ़ करूँ? चाहता हूँ कि कोई ऐब निकालूँ लेकिन सूझता ही नहीं। अबकी मैं अपने दोस्तों की दावत करूँगा तो आपको एक दिन तकलीफ़ दूँगा।’

‘हाँ शौक से कीजिए, मैं हाज़िर हूँ।’

खाते-खाते दस बज गये। तिलोत्तमा सो गयी। गली में भी सन्नाटा हो गया। ईश्वरदास चलने को तैयार हुआ, तो माया बोली — क्या आप चले जायगे? क्यों न आज यही सो रहिए? मुझे कुछ डर लग रहा है। आप बाहर के कमरे में सो रहिएगा, मैं अन्दर आँगन में सो रहूँगी।

ईश्वरदास ने क्षण भर सोचकर कहा — अच्छी बात है। आपने पहले कभी न कहा कि आपको इस घर में डर लगता है वरना मैं किसी भरोसे की बुड्डी औरत को रात को सोने के लिए ठीक कर देता।

ईश्वरदास ने तो कमरे में आसन जमाया, माया अन्दर खाना खाने गयी। लेकिन आज उसके गले के नीचे एक कौर भी न उतर सका। उसका दिल जोर-जोर से धड़क रहा था। दिल पर एक डर-सा छाया हुआ था। ईश्वरदास कहीं जाग पडा तो? उसे उस वक़्त कितनी शर्मिन्दगी होगी!

माया ने कटार को खूब तेज़ कर रखा था। आज दिन भर उसने उसे हाथ में लेकर अभ्यास किया। वह इस तरह वार करेगी कि खाली ही न जाय। अगर ईश्वरदास जाग ही पडा तो भी जानलेवा घाव लगेगा।

जब आधी रात हो गयी और ईश्वरदास के खरटों की आवाज़े कानों में आने लगी तो माया कटार लेकर उठी पर उसका सारा शरीर काँप रहा था। भय और सकल्प, आकर्षण और घृणा एक साथ कभी उसे एक कदम आगे बढा देती कभी पीछे हटा देती। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारा मकान, सारा आसमान चक्कर खा रहा है। कमरे की हर एक चीज़ घूमती हुई नजर आ रही थी। मगर एक क्षण में यह बेचैनी दूर हो गयी और दिल पर डर छा गया। वह दबे पाँव ईश्वरदास के कमरे तक आयी, फिर उसके कदम वही जम गये। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। आह, मैं कितनी कमजोर हूँ। जिस आदमी ने मेरा सर्वनाश कर दिया, मेरी हरी-भरी खेती उजाड़ दी, मेरे लहलहाते हुए उपवन को वीरान कर दिया, मुझे हमेशा के लिए आग के जलते हुए कुडों में डाल दिया, उससे मैं खून का बदला भी नहीं ले सकती! वह मेरी ही बहने थी, जो तलवार और बन्दूक

लेकर मैदान में लडती थी, दहकती हुई चिता में हँसते-हँसते बैठ जाती थी। उसे उस वक़्त ऐसा मालूम हुआ कि मिस्टर व्यास सामने खड़े हैं और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा कर रहे हैं। कह रहे हैं, क्या तुम मेरे खून का बदला न लोगी? मेरी आत्मा प्रतिशोध के लिए तड़प रही है। क्या उसे हमेशा-हमेशा यों ही तडपाती रहोगी? क्या यही वफा की शर्त थी? इन विचारों ने माया की भावनाओं को भडका दिया। उसकी आँखें खून की तरह लाल हो गयीं, होंठ दाँतों के नीचे दब गये और कटार के हत्ये पर मुट्ठी बंध गयी। एक उन्माद-सा छा गया। उसने कमरे के अन्दर पैर रखा मगर ईश्वरदास की आँखें खुल गयी थीं। कमरे में लालटेन की मद्धिम रोशनी थी। माया की आहट पाकर वह चौंका और सिर उठाकर देखा तो खून सर्द हो गया — माया प्रलय की मूर्ति बनी हाथ में नंगी कटार लिये उसकी तरफ चली आ रही थी!

वह चारपाई से उठकर खड़ा हो गया और घबड़ाकर बोला — क्या है बहन? यह कटार क्यों लिये हुए हो?

माया ने कहा — यह कटार तुम्हारे खून की प्यासी है क्योंकि तुमने मेरे पति का खून किया है।

ईश्वरदास का चेहरा पीला पड़ गया। बोला — मैंने!

“हाँ तुमने, तुम्ही ने लाहौर में मेरे पति की हत्या की, जब वे एक मुकदमे की पैरवी करने गये थे। क्या तुम इससे इनकार कर सकते हो? मेरे पति की आत्मा ने खुद तुम्हारा पता बतलाया है।”

‘तो तुम मिस्टर व्यास की बीवी हो?’

‘हाँ, मैं उनकी बदनसीब बीवी हूँ और तुम मेरा सोहाग लूटनेवाले हो! गो तुमने मेरे ऊपर एहसान किये हैं लेकिन एहसानों से मेरे दिल की आग नहीं बुझ सकती। वह तुम्हारे खून ही से बुझेगी।’

ईश्वरदास ने माया की ओर याचना-भरी आँखों से देखकर कहा — अगर आपका यही फ़ैसला है तो लीजिए यह सर हाजिर है। अगर मेरे खून से आपके दिल की आग बुझ जाय तो मैं खुद उसे आपके कदमों पर गिरा दूँगा। लेकिन जिस तरह आप मेरे खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाना अपना धर्म समझती है उसी तरह मैंने भी मिस्टर व्यास को कत्ल करना अपना धर्म समझा। आपको मालूम है, वह एक राजनीतिक मुकदमे की पैरवी करने लाहौर गये थे। लेकिन मिस्टर व्यास ने जिस तरह अपनी ऊँची कानूनी लियाकत का इस्तेमाल किया, पुलिस को झूठी शहादतों के तैयार करने में जिस तरह मदद दी, जिस बेरहमी और बेदर्दी से

बेकस और ज्यादातर बेगुनाह नौजवानो को तबाह किया, उसे मैं सह न सकता था। उन दिनों अदालत में तमाशाइयों की बेइन्तहा भीड़ रहती थी। सभी अदालत से मिस्टर व्यास को कोसते हुए जाते थे। मैं तो मुकदमे की हकीकत को जानता था, इसलिए मेरी अन्तरात्मा सिर्फ कोसने और गालियाँ देने से शान्त न हो सकती थी। मैं आपसे क्या कहूँ! मिस्टर व्यास ने आँख खोलकर समझ-बूझकर झूठ को सच साबित किया और कितने ही घरानो को बेचिराग्न कर दिया। आज कितनी माँएँ अपने बेटों के लिए खून के आँसू रो रही हैं, कितनी ही औरते रँडापे की आग में जल रही है। पुलिस कितनी ही ज्यादतियाँ करे, हम परवाह नहीं करते। पुलिस से हम इसके सिवा और कोई उम्मीद भी नहीं रखते। उसमें ज्यादातर जाहिल, शोहदे, लुच्चे भरे हुए हैं। सरकार ने इस महकमे को कायम ही इसलिए किया है कि वह रिआया को तंग करे। मगर वकीलों से हम इन्साफ़ की उम्मीद रखते हैं। हम उनकी इफ़्तत करते हैं। वे उच्चकोटि के पढ़े-लिखे, सजग लोग होते हैं। जब ऐसे आदमियों को हम पुलिस के हाथों की कठपुतली बना हुआ देखते हैं तो हमारे क्रोध की सीमा नहीं रहती। मैं मिस्टर व्यास का प्रशंसक था, मगर जब मैंने उन्हें बेगुनाह मुलजिम्ओं से जबरन् जुर्म का इकबाल कराते देखा तो मुझे उनसे नफ़रत हो गयी। गरीब मुलजिम् रात-रात भर उल्टे लटकये जाते थे! सिर्फ़ इसलिए कि वह अपना जुर्म, जो उन्होंने कभी नहीं किया, इकबाल कर लें! उनकी नाक में लाल मिर्च का धुआँ डाला जाता था! मिस्टर व्यास यह सारी ज्यादतियाँ सिर्फ़ अपनी आँखो से देखते ही नहीं थे, बल्कि उन्हीं के इशारे पर वह की जाती थीं।

माया के चेहरे की कठोरता जाती रही। उसकी जगह जायज़ गुस्ते की गर्मी पैदा हुई। बोली — इसका आपके पास कोई सबूत है कि उन्हीं मुलजिम्ओं पर ऐसी सख्तियाँ कीं ?

‘यह सारी बातें आम तौर पर मशहूर थी। लाहौर का बच्चा-बच्चा जानता है। मैंने खुद आँखों से देखी, इसके सिवा मैं और क्या सबूत दे सकता हूँ। उन बेचारों का बस इतना कसूर था कि वह हिन्दुस्तान के सच्चे दोस्त थे, अपना सारा वक्त प्रजा की शिक्षा और सेवा में खर्च करते थे। खुद भूखे रहते थे, प्रजा पर पुलिस और हुक्काम की सख्तियाँ न होने देते थे, यही उनका गुनाह था और इसी गुनाह की सज़ा दिलाने में मिस्टर व्यास पुलिस के दाहिने हाथ बने हुए थे!’

माया के हाथ से खंजर गिर पड़ा। उसकी आँखों में आँसू भर आये, बोली—
मुझे न मालूम था कि वे ऐसी हरकते भी कर सकते हैं।

ईश्वरदास ने कहा — यह न समझिए कि मैं आपकी तलवार से डरकर वकील साहब पर झूठे इल्जाम लगा रहा हूँ। मैंने कभी जिन्दगी की परवाह नहीं की। मेरे लिए कौन रोनेवाला बैठा हुआ है जिसके लिए जिन्दगी की परवाह करूँ। अगर आप समझती हैं कि मैंने अनुचित हत्या की है तो आप इस तलवार को उठाकर इस जिन्दगी का खात्मा कर दीजिए, मैं ज़रा भी न झिझकूँगा। अगर आप तलवार न उठा सके तो पुलिस को खबर कर दीजिए वह बड़ी आसानी से मुझे दुनिया से रखसत कर सकती है। सबूत मिल जाना मुश्किल न होगा। मैं खुद पुलिस के सामने अपने जुर्म का इकबाल कर लेता मगर मैं इसे जुर्म नहीं समझता। अगर एक जान के जाने से सैकड़ों जाने बच जायँ तो वह खून नहीं है। मैं सिर्फ इसलिए जिन्दा रहना चाहता हूँ कि शायद किसी ऐसे ही मौके पर मेरी फिर ज़रूरत पड़े।

माया ने रोते हुए कहा — अगर तुम्हारा बयान सही है तो मैं अपना खून माफ करती हूँ। तुमने जा किया या बेजा किया इसका फैसला ईश्वर करेंगे। तुमसे मेरी प्रार्थना है कि मेरे पति के हाथों जो घर तबाह हुए हैं उनका मुझे पता बतला दो, शायद मैं उनकी कुछ सेवा कर सकूँ।

—‘प्रेमचालीसी’ से

देवी

रात भीग चुकी थी। मैं बरामदे में खड़ा था। सामने अमीनुद्दौला पार्क नींद में डूबा खड़ा था। सिर्फ एक औरत एक तकियादार बेंच पर बैठी हुई थी। पार्क के बाहर सड़क के किनारे एक फकीर खड़ा राहगीरों को दुआएँ दे रहा था— खुदा और रसूल का वास्ता राम और भगवान का वास्ता इस अंधे पर रहम करो।

सड़क पर मोटरों और सवारियों का ताँता बन्द हो चुका था। इक्के-दुक्के आदमी नजर आ जाते थे। फकीर की आवाज़ जो पहले नक्कारखाने में तूती की आवाज़ थी, अब खुले मैदानों की बुलंद पुकार हो रही थी! एकाएक वह औरत उठी और इधर-उधर चौकन्नी आँखों से देखकर फकीर के हाथ में कुछ रख दिया और फिर बहुत धीमे से कुछ कहकर एक तरफ़ चली गयी। फकीर के हाथ में कागज़ का एक टुकड़ा नजर आया जिसे वह बार-बार मल रहा था। क्या उस औरत ने यह काराज दिया है ?

यह क्या रहस्य है? उसको जानने के कुतूहल से अधीर होकर मैं नीचे आया और फकीर के पास खड़ा हो गया।

मेरी आहट पाते ही फकीर ने उस कागज़ के पुर्जे को दो उँगलियों से दबाकर मुझे दिखाया और पूछा — बाबा, देखो यह क्या चीज है ?

मैंने देखा — दस रुपये का नोट था ! बोला — दस रुपये का नोट है, कहाँ पाया ?

फकीर ने नोट को अपनी झोली में रखते हुए कहा—कोई खुदा की बंदी दे गयी है।

मैंने और कुछ न कहा। उस औरत की तरफ़ दौड़ा जो अब अँधेरे में बस एक सपना बनकर रह गयी थी।

वह कई गलियों में होती हुई एक टूटे फूटे गिरे-पड़े मकान के दरवाज़े पर रुकी, ताला खोला और अन्दर चली गयी।

रात को कुछ पूछना ठीक न समझकर मैं लौट आया।

रात भर मेरा जी उसी तरफ़ लगा रहा। एकदम तड़के मैं फिर उस गली में जा पहुँचा। मालूम हुआ वह एक अनाथ विधवा है।

मैंने दरवाजे पर जाकर पुकारा — देवी, मैं तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ।

औरत बाहर निकल आयी — गरीबी और बेकसी की जिन्दा तस्वीर।

मैंने हिचकते हुए कहा — रात आपने फकीर को

देवी ने बात काटते हुए कहा — अजी वह क्या बात थी, मुझे वह नोट पड़ा मिल गया था, मेरे किस काम का था।

मैंने उस देवी के क़दमों पर सिर झुका दिया।

— 'प्रेमचालीसी' से

खुदी

मुन्नी जिस वक्त दिलदारनगर मे आयी, उसकी उम्र पाँच साल से ज्यादा न थी। वह बिलकुल अकेली थी, माँ-बाप दोनो न मालूम मर गये या कहीं परदेस चले गये थे। मुन्नी सिर्फ इतना जानती थी कि कभी एक देवी उसे खिलाया करती थी और एक देवता उसे कंधे पर लेकर खेतों की सैर कराया करता था। पर वह इन बातों का जिक्र कुछ इस तरह करती थी कि जैसे उसने सपना देखा हो। सपना था या सच्ची घटना, इसका उसे ज्ञान न था। जब कोई पूछता तेरे माँ-बाप कहाँ गये ? तो वह बेचारी कोई जवाब देने के बजाय रोने लगती और यों ही उन सवालो को टालने के लिए एक तरफ हाथ उठाकर कहती — ऊपर। कभी आसमान की तरफ देखकर कहती — वहाँ। इस ऊपर और वहाँ से उसका क्या मतलब था यह किसी को मालूम न होता। शायद मुन्नी को यह खुद भी मालूम न था। बस एक दिन लोगों ने उसे एक पेड़ के नीचे खेलते देखा और इससे ज्यादा उसकी बाबत किसी को कुछ पता न था।

लड़की की सूरत बहुत प्यारी थी। जो उसे देखता, मोह जाता। उसे खाने-पीने की कुछ फ़िक्र न रहती थी। जो कोई बुलाकर कुछ दे देता, वही खा लेती और फिर खेलने लगती। शकल-सूरत से वह किसी अच्छे घर की लड़की मालूम होती थी। गरीब से गरीब घर मे भी उसके खाने को दो कौर और सोने को एक टाट के टुकड़े की कमी न थी। वह सबकी थी, उसका कोई न था।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। मुन्नी अब कुछ काम करने के क़ाबिल हो गयी। कोई कहता, ज़रा जाकर तालाब से यह कपड़े तो धो ला। मुन्नी बिना कुछ कहे-मुने कपड़े लेकर चली जाती। लेकिन रास्ते में कोई बुलाकर कहता, बेटा कुएँ से दो घड़े पानी तो खीच ला, तो वह कपड़े वही रखकर घड़े लेकर कुएँ की तरफ़ चल देती। कुएँ पर कोई कह देता, ज़रा खेत से जाकर थोड़ा साग तो ले आ और मुन्नी घड़े वही रखकर साग लेने चली जाती। पानी के इन्तज़ार मे बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती। कुएँ पर जाकर देखती है तो घड़े रखे हुए है। वह मुन्नी को गालियाँ देती हुई कहती, आज से इस कलमुँही

को कुछ खाने को न दूँगी। कपडे के इन्तजार में बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती और गुस्से में तालाब की तरफ जाती तो रास्ते में कपड़े पड़े हुए मिलते। तब वह भी उसे गालियाँ देकर कहती, आज से इसको कुछ खाने को न दूँगी। इस तरह मुन्नी को कभी-कभी कुछ खाने को न मिलता और तब उसे बचपन याद आता, जब वह कुछ काम न करती थी और लोग उसे बुलाकर खाना खिला देते थे। वह सोचती किसका काम न करूँ, जिसे जवाब दूँ वही नाराज़ हो जायगा। मेरा अपना कौन है, मैं तो सब की हूँ। उस गरीब को यह न मालूम था कि जो सब का होता है वह किसी का नहीं होता। वह दिन कितने अच्छे थे, जब उसे खाने-पीने की और किसी की खुशी या नाखुशी की परवाह न थी। दुर्भाग्य में भी बचपन का वह समय चैन का था।

कुछ दिन और बीते, मुन्नी जवान हो गयी। अब तक वह औरतो की थी, अब मर्दों की हो गयी। वह सारे गाँव की प्रेमिका थी पर कोई उसका प्रेमी न था। सब उससे कहते थे — मैं तुम पर मरता हूँ, तुम्हारे वियोग में तारे गिनता हूँ, तुम मेरे दिलोजान की मुराद हो, पर उसका सच्चा प्रेमी कौन है, इसकी उसे खबर न होती थी। कोई उससे यह न कहता था कि तू मेरे दुख-दर्द की शरीक हो जा। सब उससे अपने दिल का घर आबाद करना चाहते थे। सब उसकी निगाह पर, एक मद्धिम-सी मुस्कराहट पर कुर्बान होना चाहते थे; पर कोई उसकी बाँह पकड़ने-वाला, उसकी लाज रखनेवाला न था। वह सब की थी, उसकी मुहब्बत के दरवाजे सब पर खुले हुए थे; पर कोई उस पर अपना ताला न डालता था जिससे मालूम होता कि यह उसका घर है, और किसी का नहीं।

वह भोली-भाली लड़की जो एक दिन न जाने कहाँ से भटककर आ गयी थी, अब गाँव की रानी थी। जब वह अपने उन्नत वक्षों को उभारकर रूप-गर्व से गर्दन उठाये, नजाकत से लचकती हुई चलती तो मनचले नौजवान दिल थामकर रह जाते, उसके पैरो तले आँखें बिछाते। कौन था जो उसके इशारे पर अपनी जान न निसार कर देता। वह अनाथ लड़की जिसे कभी गुड़ियाँ खेलने को न मिलीं, अब दिलों से खेलती थी। किसी को मारती थी, किसी को जिलाती थी, किसी को ठुकराती थी, किसी को थपकियाँ देती थी, किसी से रूठती थी, किसी को मनाती थी। इस खेल में उसे क्रल और खून का-सा मजा मिलता था। अब पाँसा पलट गया था। पहले वह सबकी थी, कोई उसका न था; अब सब उसके थे, वह किसी की न थी। उसे जिस चीज़ की तलाश थी, वह कहीं न मिलती थी।

किसी मे वह हिम्मत न थी जो उससे कहता, आज से तू मेरी है। उस पर दिल न्यौछावर करनेवाले बहुतेरे थे, सच्चा साथी एक भी न था। असल मे उन सरफिरो को वह बहुत नीची निगाह से देखती थी। कोई उसकी मुहब्बत के क्राविल नहीं था। ऐसे पस्त-हिम्मतो को वह खिलौनो से ज्यादा महत्व न देना चाहती थी, जिनका मारना और जिलाना एक मनोरजन से अधिक कुछ नहीं।

जिस वक़्त कोई नौजवान मिठाइयो के थाल और फूलो के हार लिये उसके सामने खड़ा हो जाता तो उसका जी चाहता, मुँह नोच लूँ। उसे वह चीजे काल-कूट हलाहल जैसी लगती। उनकी जगह वह रूखी रोटियाँ चाहती थी, सच्चे प्रेम में डूबी हुई। गहनो और अशफ़ियो के ढेर उसे बिच्छू के डक जैसे लगते। उनके बदले वह सच्ची, दिल के भीतर से निकली हुई बातें चाहती थी जिनमे प्रेम की गध और सच्चाई का गीत हो। उसे रहने को महल मिलते थे, पहनने को रेशम, खाने को एक-से-एक व्यजन, पर उसे इन चीजों की आकाक्षा न थी। उसे आकाक्षा थी, फूस के झोपड़े, मोटे-झोटे गाढ़े और रूखे-सूखे खाने की। उसे प्राणघातक सिद्धियों से प्राणपोषक निषेध कहीं ज्यादा प्रिय थे, खुली हवा के मुकाबले में बंद पिंजरा कही ज्यादा चहेता !

एक दिन एक परदेसी गाँव में आ निकला। बहुत ही कमज़ोर, दीन-हीन आदमी था। एक पेड़ के नीचे सत्तू खाकर लेटा हुआ था। एकाएक मुन्नी उबर से जा निकली। मुसाफिर को देखकर बोली — कहाँ जाओगे ?

मुसाफिर ने बेसखी से जवाब दिया — जहन्नूम !

मुन्नी ने मुस्कराकर कहा — क्यों, क्या दुनिया में जगह नहीं ?

‘औरों के लिए होगी, मेरे लिए नहीं।’

‘दिल पर कोई चोट लगी है ?’

मुसाफिर ने जहरीली हँसी हँसकर कहा — बदनसीबों की तकदीर मे और क्या है ! रोना-धोना और डूब भरना, यही उनकी ज़िन्दगी का खुलासा है। पहली दो मजिले तो तय कर चुका, अब तीसरी मजिल और बाक़ी है, कोई दिन वह भी पूरी हो जायगी; ईश्वर ने चाहा तो बहुत जल्द।

यह एक चोट खाये हुए दिल के शब्द थे। जरूर उसके पहलू में दिल है। वर्ना यह दर्द कहीं से आता ? मुन्नी बहुत दिनों से दिल की तलाश कर रही थी। बोली — कहीं और वफ़ा की तलाश क्यों नहीं करते ?

मुसाफिर ने निराशा के भाव से उत्तर दिया — मेरी तकदीर मे नहीं, वनी मेरा क्या बना-बनाया घोसला उजड जाता। दौलत मेरे पास नही। रूप-रंग मेरे पास नही, फिर वफा की देवी मुझ पर क्यों मेहरबान होने लगी? पहले सम-ज्ञता था वफा दिल के बदले मिलती है, अब मालूम हुआ और चीजों की तरह वह भी सोने-चाँदी से खरीदी जा सकती है।

मुन्नी को मालूम हुआ, मेरी नजरों ने धोखा खाया था। मुसाफिर बहुत काला नहीं, सिर्फ साँवला था। उसका नाक-नकशा भी उसे आकर्षक जान पडा। बोली— नहीं, यह बात नहीं, तुम्हारा पहला खयाल ठीक था।

यह कहकर मुन्नी चली गयी। उसके हृदय के भाव उसके सयम से बाहर हो रहे थे। मुसाफिर किसी खयाल में डूब गया। वह इस सुन्दरी की बातों पर गौर कर रहा था, क्या सचमुच यहाँ वफा मिलेगी? क्या यहाँ भी तकदीर धोखा न देगी?

मुसाफिर ने रात उसी गाँव में काटी। वह दूसरे दिन भी न गया। तीसरे दिन उसने एक फूस का झोंपडा खडा किया। मुन्नी ने पूछा — यह झोंपडा किसके लिए बनाते हो?

मुसाफिर ने कहा — जिससे वफा की उम्मीद है।

‘चले तो न जाओगे?’

‘झोंपडा तो रहेगा।’

‘खाली घर में भूत रहते हैं।’

‘अपने प्यारे का भूत भी प्यारा होता है।’

दूसरे दिन मुन्नी उस झोंपडे में रहने लगी। लोगों को देखकर ताज्जुब होता था। मुन्नी उस झोंपडे में नहीं रह सकती। वह उस भोले मुसाफिर को जरूर दगा देगी, यह आम खयाल था, लेकिन मुन्नी फूली न समाती थी। वह न कभी इतनी सुन्दर दिखायी पड़ी थी, न इतनी खुश। उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था, जिसके पहलू में दिल था।

३

लेकिन मुसाफिर को दूसरे दिन यह चिन्ता हुई कि कही यहाँ भी वही अभागा दिन न देखना पडे। रूप में वफा कहाँ? उसे याद आया, पहले भी इसी तरह की बातें हुई थी, ऐसी ही क्रसमें खायी गयी थी, एक दूसरे से वादे किये गये थे।

मगर उन कच्चे धागो को टूटते कितनी देर लगी? वह धागे क्या फिर न टूट जायेंगे? उसके क्षणिक आनन्द का समय बहुत जल्द बीत गया और फिर वही निराशा उसके दिल पर छा गयी। इस मरहम से भी उसके जिगर का ज़हम न भरा। तीसरे रोज वह सारे दिन उदास और चिन्तित बैठा रहा और चौथे रोज़ लापता हो गया। उसकी यादगार सिर्फ उसकी फूस की झोपड़ी रह गयी।

मुन्नी दिन भर उसकी राह देखती रही। उसे उम्मीद थी कि वह ज़रूर आयेगे। लेकिन महीनो गुजर गये, और मुसाफिर न लौटा। कोई खत भी न आया। लेकिन मुन्नी को उम्मीद थी, वह ज़रूर आयेगे।

साल बीत गया। पेड़ों में नयी-नयी कोपले निकली, फूल खिले, फल लगे, काली घटाएँ आयी, बिजली चमकी, यहाँ तक कि जाड़ा भी बीत गया और मुसाफिर न लौटा। मगर मुन्नी को अब भी उसके आने की उम्मीद थी, वह ज़रा भी चिन्तित न थी, भयभीत न थी। वह दिन भर मजदूरी करती और शाम को झोपड़े में पड रहती। लेकिन वह झोपड़ा अब एक सुरक्षित किला था, जहाँ सिरफिरोँ के निगाह के पाँव भी लँगड़े हो जाते थे।

एक दिन वह सर पर लकड़ी का गट्ठा लिये चली आती थी। एक रसिया ने छेड़खानी की — मुन्नी, क्यों अपने सुकुमार शरीर के साथ यह अन्याय करती हो? तुम्हारी एक कृपा-दृष्टि पर इस लकड़ी के बराबर सोना न्योछावर कर सकता हूँ।

मुन्नी ने बड़ी घृणा के साथ कहा — तुम्हारा सोना तुम्हें मुबारक हो, यहाँ अपनी मेहनत का भरोसा है।

‘क्यों इतना इतराती हो, अब वह लौटकर न आयेगा।’

मुन्नी ने अपने झोपड़े की तरफ इशारा करके कहा — वह गया कहाँ जो लौटकर आयेगा? मेरा होकर वह फिर कहाँ जा सकता है? वह तो मेरे दिल में बैठा हुआ है!

इसी तरह एक दिन एक और प्रेमीजन ने कहा — तुम्हारे लिए मेरा महल हाज़िर है। इस टूटे-फूटे झोपड़े में क्या पड़ी हो।

मुन्नी ने अभिमान से कहा — इस झोपड़े पर एक लाख महल न्योछावर है। यहाँ मैंने वह चीज़ पायी है, जो और कहीं नहीं मिली थी और न मिल सकती है। यह झोपड़ा नहीं है, मेरे प्यारे का दिल है!

इस झोपड़े में मुन्नी ने सत्तर साल काटे। मरने के दिन तक उसे मुसाफिर के लौटने की उम्मीद थी, उसकी आखिरी निगाहे दरवाज़े की तरफ लगी हुई थी।

उसके खरीदारों में कुछ तो मर गये, कुछ जिन्दा है, मगर जिस दिन से वह एक की हो गयी, उसी दिन से उसके चेहरे पर वह दीप्ति दिखायी पड़ी जिसकी तरफ़ ताकते ही वासना की आँखें अन्धी हो जातीं। खुदी जब जाग जाती है तो दिल की कमज़ोरियाँ उसके पास आते डरती हैं।

—‘खाके परवाना’ से

बड़े बाबू

तीन सौ पैसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट की लगातार और अनथक दौड़-घूप के बाद आखिर मैं अपनी मजिल पर घड़ से पहुँच गया। बड़े बाबू के दर्शन हो गये। मिट्टी के गोले ने आग के गोले का चक्कर पूरा कर लिया। अब तो आप भी मेरी भूगोल की लियाकत के कायल हो गये होंगे। इसे रूपक न समझिएगा। बड़े बाबू में दोपहर के सूरज की गर्मी और रोशनी थी और मैं क्या और मेरी बिसात क्या, एक मुट्ठी खाक। बड़े बाबू मुझे देखकर मुस्कराये। हाय, वह बड़े लोगों की मुस्कराहट, मेरा अधमरा-सा शरीर काँपने लगा। जी मे आया बड़े बाबू के क्रदमों पर बिछ जाऊँ। मैं काफ़िर नहीं, गालिब का मुरीद नहीं, जन्नत के होने पर मुझे पूरा यकीन है, उतना ही पूरा जितना अपने अँधेरे घर पर। लेकिन फरिश्ते मुझे जन्नत ले जाने के लिए आते तो भी यकीनन मुझे वह ज़बर्दस्त खुशी न होती जो इस चमकती हुई मुस्कराहट से हुई। आँखों में सरसों फूल गयी। सारा दिल और दिमाग एक बागीचा बन गया। कल्पना ने मिस्र के ऊँचे-ऊँचे महल बनाने शुरू कर दिये। सामने कुर्सियों, पर्दों और खस की टट्टियों से सजा-सजाया कमरा था। दरवाजे पर उम्मीदवारों की भीड़ लगी थी और ईजानिब एक कुर्सी पर शान से बैठे हुए सबको उसका हिस्सा देनेवाले खुदा के दुनियावी फ़र्ज अदा कर रहे थे। नज़र-नियाज़ का तूफ़ान बरपा था और मैं किसी तरफ़ आँख उठाकर न देखता था कि जैसे मुझे किसी से कुछ लेना-देना नहीं।

अचानक एक शेर जैसी गरज ने मेरे बनते हुए महल में एक भूचाल-सा ला दिया — क्या काम है? हाय, ये भोलापन! इस पर सारी दुनिया के हसीनों का भोलापन और बेपर्वाही निसार है। इस ड्योढ़ी पर भाथा रगड़ते-रगड़ते तीन सौ पैसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट गुज़र गये। चौखट का पत्थर घिसकर ज़मीन से मिल गया। ईदू बिसाती की दुकान के आधे खिलौने और गोवर्द्धन हलवाई की आधी दुकान इसी ड्योढ़ी की भेंट चढ़ गयी और मुझसे आज सवाल होता है, क्या काम है!

मगर नहीं, यह मेरी ज्यादाती है। सरासर जुल्म। जो दिमाग बड़े-बड़े

मुल्की और माली और तमदुनी मसलो मे दिन-रात लगा रहता हो, जो दिमाग डाकिटों, सरकुलरो, परवानो, हुकमनामो, नक्शो वगैरह के बोझ से दबा जा रहा हो, उसके नजदीक मुझ-जैसे खाक के पुतले की हस्ती ही क्या। मच्छर अपने को चाहे हाथी समझ ले पर बैल के सींग को उसकी क्या खबर। मैने दबी जबान से कहा — हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बड़े बाबू फिर गरजे — क्या काम है ?

अबकी बार मेरे रोएँ खड़े हो गये। खुदाके फजल से लहीम-शहीम आदमी हूँ, जिन दिनों कालेज मे था, मेरे डील-डौल और मेरी बहादुरी और दिलेरी की धूम थी। हाकी टीम का कप्तान, फुटबाल टीम का नायब कप्तान और क्रिकेट का जनरल था। कितने ही गोरों के जिस्म पर अब भी मेरी बहादुरी के दाग बाकी होंगे। मुमकिन है, दो चार अब भी बैसाखियाँ लिये चलते या रंगते हो। बम्बई क्रानिकल और टाइम्स मे मेरे गेदो की धूम थी। मगर इस वक्त बाबू साहब की गरज मुनकर मेरा शरीर काँपने लगा। काँपते हुए बोला — हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बड़े बाबू ने अपना स्लीपरदार पैर मेरी तरफ बढाकर कहा — शौक से। लीजिए यह कदम हाजिर है, जितने बोसे चाहे लीजिए, बेहिसाब मामला है, मुझसे कसम ले लीजिए जो मै गिर्नूँ, जब तक आपका मुँह न थक जाय, लिये जाइए ! मेरे लिए इससे बढकर खुशानसीबी का क्या मौका होगा ? औरो को जो बात बड़े जप-तप, बड़े सयम-व्रत से मिलती है, वह मुझे बैठे-बिठाये वगैर हड़-फिटकरी लगाये हासिल हो गयी। वल्लाह, हूँ मै भी खुशानसीब। आप अपने दोस्त-अहबाब, आत्मीय-स्वजन जो हो, उन सबको लाये तो और भी अच्छा, मेरे यहाँ सबको छूट है !

हँसी के पदों मे यह जो जुल्म बड़े बाबू कर रहे थे उस पर शायद अपने दिल में उनको नाज हो। इस मनहूस तकदीर का बुरा हो, जो इस दरवाजे का भिखारी बनाये हुए है। जी मे तो आया कि हजरत के बड़े हुए पैर को खीच लूँ और आपको ज़िन्दगी भर के लिए सबक दे दूँ कि बदनसीबों से दिल्लगी करने का यह मजा है ! मगर बदनसीबी अगर दिल पर जबर न कराये, ज़िल्लत का एहसास न पैदा करे तो वह बदनसीबी क्यों कहलाये। मै भी एक जमाने मे इसी तरह लोगों को तकलीफ पहुँचाकर हँसता था। उस वक्त इन बड़े बाबुओं की मेरी निगाह मे कोई हस्ती न थी। कितने ही बड़े बाबुओं को हलाकर छोड़ दिया। कोई ऐसा प्रोफ़ेसर

न था, जिसका चेहरा मेरी सूरत देखते ही पीला न पड़ जाता हो। हजार-हजार रुपया पानेवाले प्रोफेसरों की मुझसे कोर दबती थी। ऐसे क्लर्कों को मैं समझता ही क्या था। लेकिन अब वह जमाना कहाँ। दिल में पछताया कि नाहक कदम-बोसी का लफ़्ज ज़बान पर लाया। मगर अपनी बात कहना ज़रूरी था। मैं पक्का इरादा करके आया था कि उस ड्योडी से आज कुछ लेकर ही उठूँगा। मेरे धीरज और बड़े बाबू के इस तरह जानबूझकर अनजान बनने में रस्साकशी थी। दबी ज़बान से बोला — हुजूर, ग्रेजुएट हूँ।

शुक्र है, हजार शुक्र है, बड़े बाबू हँसे। जैसे हाँडी उबल पडी हो। वह गरज और वह कररूत आवाज़ न थी। मेरा माथा रगड़ना आखिर कहाँ तक असर न करता। शायद असर को मेरी दुआ से दुश्मनी नहीं। मेरे कान बड़ी बेकरारी से वे लफ़्ज सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे जिनसे मेरी रूह को खुशी होगी। मगर आह, जितनी मायूमी इन कानों को हुई है, उतनी शायद पहाड़ खोदनेवाले फरहाद को भी न हुई होगी। वह मुस्कराहट न थी, मेरी तकदीर की हँसी थी। हुजूर ने फरमाया — बड़ी खुशी की बात है, मुल्क और कौम के लिए इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या हो सकती है। मेरी दिली तमन्ना है, मुल्क का हर एक नोजवान ग्रेजुएट हो जाय। ग्रेजुएट जिन्दगी के जिस मैदान में जाय, उस मैदान को तरक्की ही देगा — मुल्की, माली, तमददुनी, मजहबी, गरज कि हर एक किस्म की तहरीक का जन्म और तरक्की ग्रेजुएटों ही पर मूनहसर है। अगर मुल्क में ग्रेजुएटों का यह अफसोसनाक अकाल न होता तो असहयोग की तहरीक क्यों इतनी जल्दी मुर्दा हो जाती ! क्यों बने हुए, रंगे सियार, दगाबाज, जरपरस्त लीडरों को डाकेजनी के ऐसे मौके मिलते ! तबलीग़ क्यों मुबल्लिगे अलेहुस्सलाम की इल्लत बनती ! ग्रेजुएट में सच और झूठ की परख, निगाह का फैलाव और जाँचने-तौलने की काबलियत होना ज़रूरी बात है। मेरी आँखें तो ग्रेजुएटों को देखकर नशे के दर्जे तक खुशी से भर उठती हैं। आप भी खुदा के फ़जल से अपनी किस्म की बहुत अच्छी मिसाल है, बिलकुल अप-टू-डेट। यह शेरवानी तो बरकत एण्ड को० की दुकान की सिली हुई होगी। जूते भी डासन के हैं। क्यों न हों। आप लोगों ने कौम की जिन्दगी के मेयार को बहुत ऊँचा बना दिया है और अब वह बहुत जल्द अपनी मज़िल पर पहुँचेगी। ब्लैकबर्ड भी है, वेस्ट एण्ड की रिस्टवाच भी है। बेशक अब कौमी बेड़े को ह्वाजा खिजर की ज़रूरत भी नहीं। वह उनकी मिन्नत न करेगा।

हाय तकदीर और वाय तकदीर ! अगर जानता कि यह शेरवानी और फ़ाउण्टेनपेन और रिस्टवाच यो मज़ाक का निशाना बनेगी, तो दोस्तों का एहसान क्यों लेता। नमाज बरूशवाने आया था, रोज़े गले पड़े। किताबों में पढा था गरीबी की हुलिया ऐलान है अपनी नाकामी का, न्योता देना है अपनी ज़िल्लत को। तजूर्बा भी यही कहता था। चीथड़े लगाये हुए भिखमगो को कितनी बेदर्दी से दुतकारता हूँ। लेकिन जब कोई हज़रत सूफी-साफी बने हुए, लम्बे-लम्बे बाल कंधों पर बिखेरे, सुनहरा अमामा सर पर बाँका-तिरछा शान से बाँधे, संदली रग का नीचा कुर्ता पहने, कमरे में आ पहुँचते हैं तो मजबूर होकर उनकी इज्जत करनी पड़ती है और उनकी पाकीजगी के बारे में हज़ारों शुबहे पैदा होने पर भी छोटी से छोटी रक़म जो उनकी नज़र की जाती है, वह एक दर्जन भिखारियों को अच्छा खाना खिलाने के सामान इकट्ठा कर देती। पुरानी मसल है — भेस से ही भीख मिलती है। पर आज यह बात गलत साबित हो गयी। अब बीवी साहिबा की वह तम्बीह याद आयी जो उसने चलते वक़्त दी थी — क्यों बेकार अपनी बेइज्जती कराने जा रहे हो। वह साफ समझेंगे कि यह माँगे-जाँचे का ठाठ है। ऐसे रईस होते तो मेरे दरवाजे पर आते ही क्यों। उस वक़्त मैंने इस तम्बीह को बीवी की कम-निगाही और उसका गँवारपन समझा था। पर अब मालूम हुआ कि गँवारिनें भी कभी-कभी सूझ की बाते कहती है। मगर अब पछताना बेकार है। मैंने आज़िज़ी से कहा — हुज़ूर कही मेरी भी परवरिश फरमाये।

बड़े बाबू ने मेरी तरफ़ इस अन्दाज़ से देखा कि जैसे मैं किसी दूसरी दुनिया का कोई जानवर हूँ और बहुत दिलासा देने के लहजे में बोले — आपकी परवरिश खुदा करेगा। वही सब का रज्ज़ाक है। दुनिया जब से शुरू हुई तब से तमाम शायर, हकीम और औलिया यही सिखाते आये हैं कि खुदा पर भरोसा रख और हम है कि उनकी हिदायत को भूल जाते हैं। लेकिन खैर, मैं आपको नेक सलाह देने में कजूसी न करूँगा। आप एक अखबार निकाल लीजिए। यकीन मानिए इसके लिए बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे होने की ज़रूरत नहीं और आप तो खुदा के फज़ल से ग्रेजुएट है। स्वादिष्ट तिलाओं और स्तम्भन-बटियों के नुस्खे लिखिए। तिब्बे अकबर में आपको हज़ारों नुस्खे मिलेंगे। लाइब्रेरी जाकर नक़ल कर लाइए और अखबार में नये नाम से छापिए। कोकशास्त्र तो आपने पढ़ा ही होगा। अगर न पढ़ा हो तो एक बार पढ़ जाइए और अपने अखबार में शादी के मज़ों के तरीक़े लिखिए। कामेन्द्रिय के नाम जितने ज्यादा आ सकें, बेहतर है। फिर, देखिए

कैसे डाक्टर और प्रोफ़ेसर और डिप्टी कलेक्टर आपके भक्त हो जाते हैं। इसका खयाल रहे कि यह काम हकीमाना अन्दाज़ से किया जाय। ब्योपारी और हकीमाना अन्दाज़ में थोड़ा फ़र्क है। ब्योपारी सिर्फ़ अपनी दवाओं की तारीफ़ करता है, हकीम परिभाषाओं और सूक्तियों को खोलकर अपने लेखों को इल्मी रंग देता है। ब्योपारी की तारीफ़ से लोग चिढ़ते हैं, हकीम की तारीफ़ भरोसा दिलाने-वाली होती है। अगर इस मामले में कुछ समझने-बूझने की ज़रूरत हो तो रिसाला दरवेश हाज़िर है। अगर इस काम में आपको कुछ दिक्कत मालूम होती हो, तो स्वामी श्रद्धानन्द की खिदमत में जाकर शुद्धि पर आमादगी ज़ाहिर कीजिए। फिर देखिए आपकी कितनी खातिर-तवाजो होती है। इतना समझाये देता हूँ कि शुद्धि के लिए फ़ौरन तैयार न हो जाइयेगा। पहले दिन तो दो-चार हिन्दू धर्म की किताबें माँग लाइएगा। एक हफ़्ते के बाद जाकर कुछ एतराज कीजिएगा। मगर एतराज ऐसे हों जिनका जवाब आसानी से दिया जा सके। इससे स्वामीजी को आपकी छान-बीन और जानने की ख्वाहिश का यकीन हो जायगा। बस आपकी चाँदी है। आप इसके बाद इसलाम की मुखालिफ़त पर दो-एक मज़मून या मज़मूनों का सिलसिला किसी हिन्दू रिसाले में लिख देंगे तो आपकी जिन्दगी और रोटी का मसला हल हो जायगा। इससे भी एक सहल नुस्खा है। तबलीगी मिशन में शरीक हो जाइए, किसी हिन्दू औरत, खासकर नौजवान बेवा, पर डोरे डालिए। आपको यह देखकर हैरत होगी कि वह कितनी आसानी से आपसे मुहब्बत करने लग जाती है। आप उसकी अँधेरी जिन्दगी के लिए एक मशाल साबित होंगे। वह उज्र नहीं करती, शौक से इसलाम कबूल कर लेगी। बस, अब आप शहीदों में दाखिल हो गये। अगर आप जरा एहतियात से काम करते रहें तो आपकी जिन्दगी बड़े चैन से गुज़रेगी। एक ही खेवे में दीनो-दुनिया दोनों ही पार है। जनाब लीडर बन जायेंगे। वल्लाह, एक हफ़्ते में आपका शुमार नामी-गरामी लोगों में होने लगेगा, दीन के सच्चे पैरो। हज़ारों सीधे-सादे मुसलमान आपको दीन की डूबती हुई किस्ती का मल्लाह समझेंगे। फिर खुदा के सिवा और किसी को खबर न होगी कि आपके हाथ क्या आता है और वह कहाँ जाता है और खुदा कभी राज़ नहीं खोला करता, यह आप जानते ही है। ताज्जुब है, कि इन मौकों पर आपकी निगाह क्यों नहीं जाती। मैं तो बुढ़ा हो गया और अब कोई नया काम नहीं सीख सकता, वरना इस वक़्त लीडरों का लीडर होता।

इस आग की लपट जैसे मज़ाक ने जिस्म में शोले पैदा कर दिये। आँखों से

चिनगारियाँ निकलने लगी। धीरज हाथ से छूटा जा रहा था। मगर कहरे दरवेश बर जाने दरवेश (भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर) के मुताबिक सर झुकाकर खडा रहा। जितनी दलीले दिमाग मे कई दिनों से चुन-चुनकर रखी थी, सब धरी रह गयी। बहुत सोचने पर भी कोई नया पहलू ध्यान मे न आया। यो खुदा के फ़जल से बेवकूफ या कुन्दजेहन नही हूँ, अच्छा दिमाग पाया है। इतने सोच-विचार से कोई अच्छी-सी गजल हो जाती। पर तबीयत ही तो है, न लडी। इन्फाक से जेब मे हाथ डाला तो अचानक याद आ गया कि सिफारिशी खतो का एक पोया भी साथ लाया हूँ। रोब का दिमाग पर क्या असर पडता है इसका आज तजुर्वा हो गया। उम्मीद से चेहरा फूल की तरह खिल उठा। खतो का पुलिन्दा हाथ में लेकर बोला — हुजूर, यह चन्द खत है, इन्हे मुलाहिजा फरमा ले।

बडे बाबू ने बण्डल लेकर मेज़ पर रख दिया और उस पर एक उड़ती हुई नजर डालकर बोले — आपने अब तक इन मोतियों को क्यों छिपा रक्खा था ?

मेरे दिल मे उम्मीद की खुशी का एक हंगामा बरपा हो गया। जवान जो बन्द थी, खुल गयी। उमग से बोला -- हुजूर की शान-शौकत ने मुझ पर इतना रोब डाल दिया और कुछ ऐसा जादू कर दिया कि मुझे इन खतो की याद न रही। हुजूर से मैं बिना नमक-मिर्च लगाये सच-सच कहता हूँ कि मैने इनके लिए किसी तरह की कोशिश या सिफारिश नही पहुँचायी। किसी तरह की दौड-भाग नही की।

बडे बाबू ने मुस्कराकर कहा — अगर आप इनके लिए ज्यादा से ज्यादा दौड-भाग करने मे भी अपनी ताकत खर्च करते तो भी मै आपको इसके लिए बुरा-भला न कहता। आप बेशक बडे खुशनसीब है कि यह नायाब चीज आपको बेमौगे मिल गयी, इसे जिन्दगी के सफर का पास-पोर्ट समझिए। बाह, आपको खुदा के फजल से एक से एक कद्रदान नसीब हुए। आप जहीन है, सीवे-सच्चे है, बेलौस है, फ़र्माबरदार है। ओफ़्रोह आपके गुणो की तो कोई इन्तहा ही नहीं है। कसम खुदा की, आपमे तो तमाम भीतरी और बाहरी कमाल भरे हुए है। आपमे सूझ-बूझ, गम्भीरता, सच्चाई, चौकसी, कुलीनता, शराफत, बहादुरी सभी गुण मौजूद है। आप तो नुमाइश मे रखे जाने क़ाबिल मालूम होते है कि दुनिया आपको हैरत की निगाह से देखे और दाँतो तले उँगली दबाये। आज किसी भले का मुँह देखकर उठा था कि आप जैसे पाकीजा आदमी के दर्शन हुए। यह वे गुण है जो जिन्दगी के हर एक मैदान मे आपको शोहरत की चोटी तक पहुँचा सकते है। सरकारी नौकरी आप जैसे गुणियों की शान के काबिल नही। आपको यह कब गवारा होगा। इस दायरे में

आते ही आदमी बिलकुल जानवर बन जाता है। बोलिए, आप इसे मंजूर कर सकते हैं? हरगिज़ नहीं।

मैंने डरते-डरते कहा — जनाब, ज़रा इन लफ्जों को खोलकर समझा दीजिए। आदमी के जानवर बन जाने से आपका क्या मशा है? •

बड़े बाबू ने त्योरी चढाते हुए कहा — यह तो कोई पेचीदा बात न थी जिसका मतलब खोलकर बतलाने की जरूरत हो। तब तो मुझे बात करने के अपने ढंग में कुछ तरमीम करनी पड़ेगी। इस दायरे के उम्मीदवारों के लिए सबसे ज़रूरी और लाजिमी सिफत, सूझ-बूझ है। मैं नहीं कह सकता कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह इस लफ्ज से अदा होता है या नहीं। इसका अंग्रेज़ी लफ्ज है इन्टुइशन—इशारे के असली मतलब को समझना। मसलन अगर सरकार बहादुर यानी हाकिम जिला को शिकायत हो कि आपके इलाके में इनकमटैक्स कम वसूल होता है तो आपका फर्ज है कि उसमें अधाधुन्य इज़ाफा करे। आमदनी की परवाह न करे। आमदनी का बढ़ाना आपकी सूझ-बूझ पर मुनहसर है। एक हल्की-सी धमकी काम कर जायगी और इनकमटैक्स दुगुना-तिगुना हो जायगा। यकीनन आपको इस तरह अपना जमीर (अन्तःकरण) बेचना गवारा न होगा।

मैंने समझ लिया कि मेरा इम्तहान हो रहा है, आशिको जैसे जोश और सरगर्मी से बोला — मैं तो इसे जमीर बेचना नहीं समझता, यह तो नमक का हक है। मेरा जमीर इतना नाजुक नहीं है।

बड़े बाबू ने मेरी तरफ कद्रदानी की निगाह से देख कर कहा — शाबाश! मुझे तुमसे ऐसे ही जवाब की उम्मीद थी। आप मुझे होनहार मालूम होते हैं। लेकिन शायद यह दूसरी शर्त आपको मंजूर न हो। इस दायरे के मुरीदों के लिए दूसरी शर्त यह है कि वह अपने को भूल जायें। कुछ आया आपकी समझ में?

मैंने दबी जबान में कहा — जनाब को तकलीफ़ तो होगी मगर ज़रा फिर इसको खोलकर बतला दीजिए।

बड़े बाबू ने त्योरियों पर बल देते हुए कहा — जनाब, यह बार-बार का समझाना मुझे बुरा मालूम होता है। मैं इससे ज्यादा आसान तरीके पर अपने खयालो को बाहिर नहीं कर सकता। अपने को भूल जाना बहुत ही आम मुहावरा है। अपनी खुदी को मिटा देना, अपनी शल्लिसयत को फ़ना कर देना, अपनी पर्सनालिटी को खत्म कर देना। आपकी वजा-कता से, आपके बोलने बात करने के ढंग से, आपके तौर-तरीकों से आपकी हिन्दियत मिट जानी चाहिए। आपके मजहबी, अखलाकी और

तमदुदुनी असरो का बिलकुल गायब हो जाना जरूरी है। मुझे आपके चेहरे से मालूम हो रहा है कि इस समझाने पर भी आप मेरा मतलब नहीं समझ सके। सुनिश्च, आप गालिबन मुसलमान है। शायद आप अपने अकीदों में बहुत पक्के भी हों। आप नमाज और रोजे के पाबन्द है ?

मैने फख्र से कहा — मै इन चीजों का उतना ही पाबन्द हूँ जितना कोई मौलवी हो सकता है। मेरी कोई नमाज कजा नहीं हुई। सिवाय उन वक्तों के जब मै बीमार था।

बड़े बाबू ने मुस्कराकर कहा — यह तो आपके अच्छे अखलाक ही कहे देते हैं। मगर इस दायरे में आकर आपको अपने अकीदे और अमल में बहुत कुछ काट-छाँट करनी पड़ेगी। यहाँ आपका मजहब मजहबियत का जामा अख्तियार करेगा। आप भूलकर भी अपनी पेशानी को किसी के सामने सिजदे में न झुकाये, कोई बात नहीं। आप भूलकर भी जकात के झगड़े में न फँसे, कोई बात नहीं। लेकिन आपको अपने मजहब के नाम पर फरियाद करने के लिए हमेशा आगे-आगे रहना और दूसरों को आमादा करना होगा। अगर आपके जिले में दो डिप्टी कलक्टर हिन्दू है और मुसलमान सिर्फ़ एक, तो आपका फ़र्ज होगा कि हिज़ एक्सेलेसी गवर्नर की खिदमत में एक डेपुटेशन भेजने के लिए क़ौम के रईसों को आमादा करे। अगर आपको मालूम हो कि किसी म्युनिसिपैलिटी ने क़साइयों को शहर से बाहर दुकान रखने की तजवीज़ पास कर दी है तो आपका फ़र्ज होगा कि क़ौम के चौबेरियों को उस म्युनिसिपैलिटी का सिर तोड़ने के लिए तहरीक करे। आपको सोते-जागते, उठते-बैठते जाति-प्रेम का राग अलापना चाहिए। मसलन इस्तहान के नतीजों में अगर आपको मुसलमान विद्यार्थियों की सख्या मुनासिब से कम नजर आये तो आपको फ़ौरन चांसलर के पास एक गुमनाम खत लिख भेजना होगा कि इस मामले में जरूर ही सख्ती से काम लिया गया है। यह सारी बातें उसी इन्टुइशन-वाली शर्त के भीतर आ जाती है। आपको साफ़-साफ़ शब्दों में यह इशारों से यह काम करने के लिए हिदायत न की जायगी। सब कुछ आपकी सूझ-बूझ पर मुनहसर होगा। आपमें यह जौहर होगा तो आप एक दिन ज़रूर ज़ँचे ओहदे पर पहुँचेंगे। आपको जहाँ तक मुमकिन हो, अंग्रेज़ी में लिखना और बोलना पड़ेगा। इसके बग़ैर हुक्काम आपसे खुश न होंगे। लेकिन क़ौमी ज़बान की हिमायत और प्रचार की सदा आपकी ज़बान से बराबर निकलती रहनी चाहिए। आप शौक से अखबारों का चन्दा हज़म करे, मँगनी की किताबें पढ़े, चाहे वापसी के वक्त किताब के फट - चिँथ जाने

के कारण आपको माफ़ी ही क्यों न माँगनी पड़े, लेकिन ज़बान की हिमायत बराबर जोरदार तरीक़े से करते रहिए। खुलासा यह कि आपको जिसका खाना उसी का गाना होगा। आपको बातों से, काम से और दिल से अपने मालिक की भलाई में और मजबूती से उसको जमाये रखने में लगे रहना पड़ेगा। अगर आप यह खयाल करते हों कि मालिक की खिदमत के ज़रिये कौम की खिदमत भी करूँगा तो यह झूठ बात है, पागलपन है, हिमाकत है। आप मेरा मतलब समझ गये होंगे। फ़रमाइए, आप इस हद तक अपने को भूल सकते हैं ?

मुझे जवाब देने में ज़रा देर हुई। सच यह है कि मैं भी आदमी हूँ और बीसवीं सदी का आदमी हूँ। मैं बहुत जागा हुआ न सही, मगर बिलकुल सोया हुआ भी नहीं हूँ। मैं भी अपने मुल्क और कौम को बलन्दी पर देखना चाहता हूँ। मैंने तारीख़ पढ़ी है और उससे इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मज़हब दुनिया में सिर्फ़ एक है और उसका नाम है, दर्द। मज़हब की मौजूदा सूरत घड़ेबंदी के सिवाय और कोई हैसियत नहीं रखती। खतने या चोटी से कोई बदल नहीं जाता। पूजा के लिए कलीसा, मसजिद, मन्दिर की मैं बिलकुल ज़रूरत नहीं समझता। हाँ, यह मानता हूँ कि घमण्ड और खुदगर्जी को दबाये रखने के लिए कुछ करना ज़रूरी है। इसलिए नहीं कि उससे मुझे जन्नत मिलेगी या मेरी मुक्ति होगी, बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि मुझे दूसरों के हक़ छीनने से नफरत होगी। मुझमें खुदी का खासा जुजु मौजूद है। यों अपनी खुशी से कहिए तो आपकी जूतियाँ सीधी करूँ लेकिन हुकूमत की बरदाश्त नहीं। महकूम बनना शर्मनाक समझता हूँ। किसी ग़रीब को जुल्म का शिकार होते देखकर मेरे खून में गर्मी पैदा हो जाती है। किसी से दबकर रहने से मर जाना बेहतर समझता हूँ। लेकिन खयाल हालतों पर तो फ़तह नहीं पा सकता। रोज़ी की फ़िक्र तो सबसे बड़ी है। इतने दिनों के बाद बड़े बाबू की निगाहे करम को अपनी ओर मुड़ते देखकर मैं इसके सिवा कि अपना सिर झुका दूँ, दूसरा कर ही क्या सकता था। बोला — जनाब, मेरी तरफ़ से भरोसा रखें। मालिक की खिदमत में अपनी तरफ़ से कुछ उठा न रखूँगा।

‘शैरत को फ़ना कर देना होगा ?’

‘मज़ूर।’

‘शराफ़त के ज़ब्रों को उठाकर ताक़ पर रख देना होगा ?’

‘मज़ूर।’

‘मुखबिरी करनी पड़ेगी ?’

‘मजूर।’

‘तो बिस्मिल्लाह, कल से आपका नाम उम्मीदवारो की फेहरिस्त मे लिख दिया जायगा।’

मैने सोचा था कल से कोई जगह मिल जायगी। इतनी जिल्लत कबूल करने के बाद रोजी की फिक्र से तो आजाद हो जाऊँगा। अब यह हकीकत खुली। बरबस मुँह से निकला — और जगह कब तक मिलेगी ?

बड़े बाबू हँसे, वही दिल दुखानेवाली हँसी जिसमे तौहीन का पहलू खास था — जनाब, मै कोई ज्योतिषी नहीं, कोई फकीर-दरवेश नहीं, बेहतर है इस सवाल का जवाब आप किसी औलिया से पूछे। दस्तरखान बिछा देना मेरा काम है। खाना आयेगा और वह आपके हलक़ मे जायगा, यह पेशीनगोई मैं नहीं कर सकता।

मैने मायूसी के साथ कहा — मै तो इससे बडी इनायत का मुन्तजिर था।

बड़े बाबू कुर्सी से उठकर बोले — कसम खुदा की, आप परले दर्जे के कूडमग़्ज आदमी है। आपके दिमाग मे भुस भरा है। दस्तरखान का सामने आ जाना आप कोई छोटी बात समझते है ? इन्तजार का मज़ा आपकी निगाह मे कोई चीज ही नहीं ? हालाँकि इन्तजार मे इन्सान उमरे गुज़ार सकता है। आप रोज़ाना कचहरी मे आयेगे, गरज़मन्दो से आपका साबका होगा। अमलो से आपका परिचय हो जायगा। मामले बिठाने, सौदे पटाने के सुनहरे मौके हाथ आयेगे। हुक्काम के लड़के पढ़ाइए। अगर गडे-ताबीज का फ़न सीख लीजिए तो आपके हक मे बहुत मुफ़ीद हो। कुछ हकीमी भी सीख लीजिए। अच्छे होशियार सुनारो से दोस्ती पैदा कीजिए, क्योंकि आपको उनसे अवसर काम पड़ेगा। हुक्काम की औरते आप ही के मार्फ़त अपनी ज़रुरते पूरी करायेंगी। मगर इन सब लटको से ज्यादा कारगर एक और लटका है। अगर वह हुनर आप मे है, तो यकीनन आपके इन्तजार की मुद्दत बहुत कुछ कम हो सकती है। आप बड़े-बड़े हाकिमो के लिए तफ़रीह का सामान जुटा सकते है ?

बड़े बाबू मेरी तरफ़ कनखियो से देखकर मुस्कराये। तफ़रीह के सामान से उनका क्या मतलब है, यह मै न समझ सका। मगर पूछते हुए भी डर लगता था कि कहीं बड़े बाबू बिगड़ न जायँ और फिर मामला खराब हो जाय। एक बेचैनी की-सी हालत मे जमीन की तरफ ताकने लगा।

बड़े बाबू ताड़ तो गये कि इसकी समझ मे मेरी बात न आयी लेकिन अब की

उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़े। नहीं, उनके लहजे में हमदर्दी की झलक थी। फ़रमाया — यह तो ग़ैर-मुमकिन है कि आपने बाज़ार की सैर न की हो।

मैंने शर्मति हुए कहा — नहीं हुज़ूर, बन्दा इस कूचे को बिलकुल नहीं जानता।

बड़े बाबू — तो आपको इस कूचे की खाक छाननी पड़ेगी। हाकिम भी आँख-कान रखते हैं। दिन भर की दिमागी थकन के बाद स्वभावतः रात को उनकी तबीयत तफरीह की तरफ झुकती है। अगर आप उनके लिए आँखों को अच्छा लगनेवाले रूप और कानों को भानेवाले संगीत का इन्तजाम सस्ते दामों पर कर सकते हैं या कर सकें तो .

मैंने किसी कदर तेज़ होकर कहा — आपका कहने का मतलब यह है कि मुझे रूप की मंडी की दलाली करनी पड़ेगी ?

बड़े बाबू — तो आप तेज़ क्यों होते हैं, अगर अब तक इतनी मोटी-सी बात आप नहीं समझें तो यह मेरा कसूर है या आपकी अक्ल का !

मेरे जिस्म में आग लग गयी। जी में आया कि बड़े बाबू को जुजुत्सू के दो-चार हाथ दिखाऊँ, मगर घर की बेपरोसामानी का खयाल आ गया। बीवी की इन्तजार करती हुई आँखें और बच्चों की भूखी सूरतें याद आ गयीं। ज़िल्लत का एक दरिया हलक से नीचे ढकेलते हुए बोला — जी नहीं, मैं तेज़ नहीं हुआ था। ऐसी बेअदबी मुझसे नहीं हो सकती। (आँखों में आँसू भरकर) ज़रूरत ने मेरी ग़ैरत को मिटा दिया है। आप मेरा नाम उम्मीदवारों में दर्ज कर दें। हालात मुझसे जो कुछ कराएंगे वह सब कहेगा और मरते दम तक आपका एहसानमन्द रहूँगा।

— 'खाके परवाना' से

राष्ट्र का सेवक

राष्ट्र के सेवक ने कहा — देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचो के साथ भाईचारे का सुलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई है, कोई नीचा नहीं, कोई ऊँचा नहीं।

दुनिया ने जयजयकार की — कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय ! उसकी सुन्दर लड़की इन्दिरा ने सुना और चिन्ता के सागर में डूब गयी।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा — यह फरिश्ता है, पैगम्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है। इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौजवान को मन्दिर में ले गया, देवता के दर्शन कराये और कहा — हमारा देवता गरीबी में है, जिल्लत में है, पस्ती में है।

दुनिया ने कहा — कैसे शुद्ध अन्तःकरण का आदमी है ! कैसा ज्ञानी !

इन्दिरा ने देखा और मुस्करायी।

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली — श्रद्धेय पिता जी, मैं मोहन से क्याह करना चाहती हूँ।

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा — मोहन कौन है ?

इन्दिरा ने उत्साह भरे स्वर में कहा — मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मन्दिर में ले गये, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आँखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

— 'प्रेम चालीसी' से

आखिरी तोहफ़ा

सारे शहर में सिर्फ़ एक ऐसी दुकान थी, जहाँ विलायती रेशमी साड़ी मिल सकती थी। और सभी दुकानदारों ने विलायती कपड़े पर काँग्रेस की मुहर लगवायी थी। मगर अमरनाथ की प्रेमिका की फ़रमाइश थी, उसको पूरा करना ज़रूरी था। वह कई दिन तक शहर की दुकानों का चक्कर लगाते रहे, दुगुना दाम देने पर तैयार थे, लेकिन कहीं सफल-मनोरथ न हुए और उसके तकाजे बराबर बढ़ते जाते थे। होली आ रही थी। आखिर वह होली के दिन कौन-सी साड़ी पहनेगी। उसके सामने अपनी मजबूरी को जाहिर करना अमरनाथ के पुरुषोचित अभिमान के लिए कठिन था। उसके इशारे से वह आसमान के तारे तोड़ लाने के लिए भी तत्पर हो जाते। आखिर जब कहीं मकसद पूरा न हुआ, तो उन्होंने उसी खास दुकान पर जाने का इरादा किया। उन्हें यह मालूम था कि उस दुकान पर घरना दिया जा रहा है। सुबह से शाम तक स्वयंसेवक तैनात रहते हैं और तमाशाइयो की भी हरदम खासी भीड़ रहती है। इसलिए उस दुकान में जाने के लिए एक विशेष प्रकार के नैतिक साहस की ज़रूरत थी और यह साहस अमरनाथ में ज़रूरत से कम था। पढ़े-लिखे आदमी थे, राष्ट्रीय भावनाओं से भी अपरिचित न थे, यथाशक्ति स्वदेशी चीजे ही इस्तेमाल करते थे। मगर इस मामले में बहुत कट्टर न थे। स्वदेशी मिल जाय तो बेहतर वर्ना विदेशी ही सही—इस उसूल के माननेवाले थे। और खासकर जब उसकी फ़रमाइश थी तब तो कोई बचाव की सूरत ही न थी। अपनी ज़रूरतों को तो वह शायद कुछ दिनों के लिए टाल भी देते, मगर उसकी फ़रमाइश तो मौत की तरह अटल है। उससे मुक्ति कहाँ! तय कर लिया कि आज साड़ी ज़रूर लायेंगे। कोई क्यों रोके? किसी को रोकने का क्या अधिकार है? माना स्वदेशी का इस्तेमाल अच्छी बात है लेकिन किसी को जबर्दस्ती करने का क्या हक? अच्छी आजादी की लड़ाई है जिसमें व्यक्ति की आजादी का इतनी बेदर्दी से खून हो!

यों दिल को मजबूत करके वह शाम को दुकान पर पहुँचे। देखा तो पाँच वालण्टियर पिकेटिंग कर रहे हैं और दुकान के सामने सड़क पर हजारों तमाशाई

खड़े है। सोचने लगे, दुकान में कैसे जायँ। कई बार कलेजा मजबूत किया और चले मगर बरामदे तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

सयोग से एक जान-पहचान के पण्डितजी मिल गये। उनसे पूछा — क्यों भाई, यह घरना कब तक रहेगा? शाम तो हो गयी।

पण्डितजी ने कहा — इन सिरफिरो को सुबह और शाम से क्या मतलब, जब तक दुकान बन्द न हो जायगी, यहाँ से न टलेगे। कहिए, कुछ खरीदने का इरादा है? आप तो रेशमी कपड़ा नहीं खरीदते?

अमरनाथ ने विवशता की मुद्रा बनाकर कहा — मैं तो नहीं खरीदता। मगर औरतों की फरमाइश को कैसे टालूँ।

पण्डितजी ने मुस्कराकर कहा — वाह, इससे ज्यादा आसान तो कोई बात नहीं। औरतों को भी चकमा नहीं दे सकते? सौ हीले और हजार वहाने हैं।

अमरनाथ — आप ही कोई हीला सोचिए।

पण्डितजी — सोचना क्या है, यहाँ रात-दिन यही किया करते हैं। सौ-पचास हीले हमेशा जेबों में पड़े रहते हैं। औरत ने कहा हार बनवा दो। कहा, आज ही लो। दो-चार रोज के बाद कहा, सुनार माल लेकर चम्पत हो गया। यह तो रोज का धन्धा है भाई। औरतों का काम फरमाइश करना है और मर्दों का काम उसे खूबसूरती से टालना है।

अमरनाथ — आप तो इस कला के पण्डित मालूम होते हैं!

पण्डितजी — क्या करे भाई, आबरू तो बचानी ही पडती है। सूखा जवाब दे तो शर्मिन्दगी अलग हो, बिगड़े वह अलग से, समझे, हमारी परवाह ही नहीं करते। आबरू का मामला है। आप एक काम कीजिए। यह तो आपने कहा ही होगा कि आजकल पिकेटींग है?

अमरनाथ — हाँ, यह तो बहाना कर चुका भाई, मगर वह सुनती ही नहीं, कहती है क्या विलायती कपड़े दुनिया से उठ गये। मुझसे चले हों उड़ने!

पण्डितजी — तो मालूम होता है, कोई धुन की पक्की औरत है। अच्छा तो मैं एक तरकीब बताऊँ। एक खाली कार्ड का बक्स ले लो, उसमें पुराने कपड़े जलाकर भर लो। जाकर कह देना, मैं कपड़े लिये आता था, बाल्पिटयरोँ ने छीनकर जला दिये। क्यों, कैसी रहेगी?

अमरनाथ — कुछ जँचती नहीं। अजी, बीस एतराज करेगी, कही पर्दा फ्राश हो जाय तो मुफ्त को शर्मिन्दगी उठानी पड़े।

पण्डितजी — तो मालूम हो गया, आप बोदे आदमी है और है भी आप कुछ ऐसे ही। यहाँ तो कुछ इस शान से हीले करते है कि सच्चाई भी उसके आगे धूल हो जाय। जिन्दगी भर यही बहाने करते गुजरी और कभी पकड़े न गये। एक तरकीब और है। इसी नमूने का देशी माल ले जाइए और कह दीजिए कि विलायती है।

अमरनाथ — देशी और विलायती की पहचान उन्हे मुझसे और आपसे कही ज्यादा है। विलायती पर तो जल्द विलायती का यक़ीन आयेगा नहीं, देशी की तो बात ही क्या है !

एक खद्दरपोश महाशय पास ही खडे यह बातचीत सुन रहे थे, बोल उठे — ए साहब, सीधी-सी तो बात है, जाकर साफ कह दीजिए कि मैं विदेशी कपड़े न लाऊँगा। अगर जिद करे तो दिन भर खाना न खाइये, आप सीधे रास्ते पर आ जायेंगी।

अमरनाथ ने उनकी तरफ कुछ ऐसी निगाहों से देखा जो कह रही थीं आप इस कूचे को नहीं जानते और बोले — यह आप ही कर सकते है, मैं नहीं कर सकता।

खद्दरपोश — कर तो आप भी सकते है लेकिन करना नहीं चाहते। यहाँ तो उन लोगों में से है कि अगर विदेशी दुआ से मुक्ति भी मिलती हो तो उसे ठुकरा दे।

अमरनाथ — तो शायद आप घर में पिकेटिंग करते होंगे ?

खद्दरपोश — पहले घर में करके तब बाहर करते है भाई साहब।

खद्दरपोश साहब चले गये तो पण्डितजी बोले — यह महाशय तो तीसमारखाँ से भी तेज निकले। अच्छा तो आप एक काम कीजिए। इस दुकान के पिछवाड़े एक दूसरा दरवाज़ा है, ज़रा अँधेरा हो जाय तो उधर से चले जाइएगा, दायें-बायें किसी तरफ न देखिएगा।

अमरनाथ ने पण्डितजी को धन्यवाद दिया और जब अँधेरा हो गया तो दुकान के पिछवाड़े की तरफ जा पहुँचे। डर रहे थे, कहीं यहाँ भी घेरा न पडा हो। लेकिन मैदान खाली था। लपककर अन्दर गये, एक ऊँचे दामो की साडी खरीदी और बाहर निकले तो एक देवीजी केसरिया साडी पहने खड़ी थी। उनको देखकर इनकी रूह फना हो गयी, दरवाजे से बाहर पाँव रखने की हिम्मत नहीं हुई। एक मिनट तक तो किवाड़ की आड़ में छिपे खडे रहे फिर देवीजी का मुँह दूसरी तरफ़ देखकर तेजी से निकल पडे और कोई सौ क्रदम भागते हुए चले गये। कर्म का लिखा, सामने से एक बुढिया लाठी टेकती चली आ रही थी। आप उससे लड़

गये। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी कोसने — अरे अभागे, यह जवानी बहुत दिन न रहेगी, आँखों में चर्बी छा गयी है, धक्के देता चलता है!

अमरनाथ उसकी खुशामद करने लगे — भाई माफ़ करो, मुझे रात को कुछ कम सुझाई पड़ता है। ऐनक घर भूल आया।

बुढ़िया का मिजाज ठण्डा हुआ, आगे बढ़ी और आप भी चले। एकाएक कानों में आवाज आयी, 'बाबू साहब जरा ठहरिएगा' और वही केसरिया कपड़ोंवाली देवीजी आती हुई दिखायी दीं।

अमरनाथ के पाँव बँध गये। इस तरह कलेजा मजबूत करके खड़े हो गये जैसे कोई स्कूली लड़का मास्टर की बेत के सामने खडा होता है।

देवीजी ने पास आकर कहा — आप तो ऐसे भागे कि मैं जैसे आपको काट खाऊँगी। आप जब पढ़े-लिखे आदमी होकर अपना धर्म नहीं समझते तो दुख होता है। देश की क्या हालत है, लोगो को खद्दर नहीं मिलता, आप रेशमी साड़ियाँ खरीद रहे हैं!

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा — मैं सच कहता हूँ देवीजी, मैंने अपने लिए नहीं खरीदी, एक साहब की फ़रमाइश थी।

देवीजी ने झोली से एक चूड़ी निकालकर उनकी तरफ बढ़ाते हुए कहा — ऐसे हीले रोज ही सुना करती हूँ। या तो आप उसे वापस कर दीजिए या लाइए हाथ में आपको चूड़ी पहना दूँ।

अमरनाथ — शौक से पहना दीजिए। मैं उसे बड़े गर्व से पहनूँगा। चूड़ी उस बलिदान का एक चिह्न है जो देवियों के जीवन की विशेषता है। चूड़ियाँ उन देवियों के हाथ में भी थी जिनके नाम सुनकर आज भी हम आदर से सिर झुकाते हैं। मैं तो उसे शर्म की बात नहीं समझता। आप अगर और कोई चीज पहनाना चाहें तो वह भी शौक से पहना दीजिए। नारी पूजा की वस्तु है, उपेक्षा की नहीं। अगर स्त्री, जो क्रौम को पैदा करती है, चूड़ी पहनना अपने लिए गौरव की बात समझती है तो मर्दों के लिए चूड़ी पहनना क्यों शर्म की बात हो?

देवीजी को उनकी इस निर्लज्जता पर आश्चर्य तो हुआ मगर वह इतनी आसानी से अमरनाथ को छोड़नेवाली न थी। बोली — आप बातों के शेर मालूम होते हैं। अगर आप हृदय से स्त्री को पूजा की वस्तु मानते हैं, तो मेरी यह विनती क्यों नहीं मान जाते?

अमरनाथ — इसलिये कि यह साड़ी भी एक स्त्री की फ़रमाइश है।

देवी — अच्छा चलिए, मैं आपके साथ चलूँगी, ज़रा देखूँ आपकी देवीजी किस स्वभाव की स्त्री है।

अमरनाथ का दिल बैठ गया। बेचारा अभी तक बिन-ब्याहा था, इसलिए नहीं कि उसकी शादी न होती थी बल्कि इसलिए कि शादी को वह एक आजीवन कारावास समझता था। मगर वह आदमी रसिक स्वभाव के थे, शादी से अलग रहकर भी शादी के मजों से अपरिचित न थे। किसी ऐसे प्राणी की ज़रूरत उनके लिए अनिवार्य थी जिस पर वह अपने प्रेम को समर्पित कर सके, जिसकी तरावट से वह अपनी रूखी-सूखी जिन्दगी को तरो-ताज़ा कर सके, जिसके प्रेम की छाया में वह ज़रा देर के लिए ठण्डक पा सकें, जिसके दिल में वह अपनी उमड़ी हुई जवानी की भावनाओं को बिखेरकर उनका उगना देख सके। उनकी नज़र ने मालती को चुना था जिसकी शहर में धूम थी। इधर डेढ़-दो साल से वह इसी खलिहान के दाने चुना करते थे। देवीजी के आग्रह ने उन्हें थोड़ी देर के लिए उलझन में डाल दिया। ऐसी शर्मिन्दगी उन्हें जिन्दगी में कभी न हुई थी। बोले — आज तो वह एक न्योते में गयी है, घर में न होंगी।

देवीजी ने अविश्वास से हँसकर कहा — तो मैं समझ गयी यह आपकी देवीजी का कुसूर नहीं, आपका कुसूर है।

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा — मैं आपसे सच कहता हूँ आज वह घर पर नहीं।

देवी ने पूछा — कल आ जायेगी ?

अमरनाथ बोले — हाँ, कल आ जायेगी।

देवी — तो आप यह साड़ी मुझे दे दीजिए और कल यही आ जाइएगा, मैं आपके साथ चलूँगी। मेरे साथ दो-चार बहने भी होंगी।

अमरनाथ ने बिना किसी आपत्ति के वह साड़ी देवीजी को दे दी और बोले — बहुत अच्छा, मैं कल आ जाऊँगा। मगर क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है जो साड़ी की ज़मानत ज़रूरी है ?

देवीजी ने मुस्कराकर कहा — सच्ची बात तो यही है कि मुझे आप पर विश्वास नहीं।

अमरनाथ ने स्वाभिमानपूर्वक कहा — अच्छी बात है, आप इसे ले जायें।

देवी ने क्षण भर बाद कहा — शायद आपको बुरा लग रहा हो कि कहीं साड़ी गुम न हो जाय। इसे आप लेते जाइए, मगर कल आइए ज़रूर।

अमरनाथ स्वाभिमान के मारे बगैर कुछ कहे घर की तरफ चल दिये, देवीजी 'लेते जाइए लेते जाइए' करती रह गयी।

२

अमरनाथ घर न जाकर एक खद्दर की दुकान पर गये और दो सूटों का खद्दर खरीदा। फिर अपने दर्जी के पास ले जाकर बोले — खलीफ़ा, इसे रातों-रात तैयार कर दो, मुँहमाँगी सिलाई दूँगा।

दर्जी ने कहा — बाबू साहब, आजकल तो होली की भीड़ है। होली से पहले तैयार न हो सकेगे।

अमरनाथ ने आग्रह करते हुए कहा — मैं मुँहमाँगी सिलाई दूँगा, मगर कल दोपहर तक मिल जायँ। मुझे कल एक जगह जाना है। अगर दोपहर तक न मिले तो फिर मेरे किसी काम के न होंगे।

दर्जी ने आधी सिलाई पेशगी ले ली और कल तैयार कर देने का वादा किया।

अमरनाथ यहाँ से आश्वस्त होकर मालती की तरफ चले। क्रमदम आगे बढ़ते थे लेकिन दिल पीछे रहा जाता था। काश वह उनकी इतनी विनती स्वीकार कर ले कि कल दो घण्टे के लिए उनके वीरान घर को रौशन करे! लेकिन यकीनन वह उन्हें खाली हाथ देखकर मुँह फेर लेगी, सीधे मुँह बात नहीं करेगी, आने का जिक्र ही क्या। एक ही बेमुरीवत है। तो कल आकर देवीजी से अपनी सारी शर्मनाक कहानी बयान कर दूँ? उस भोले चेहरे की निस्स्वार्थ उमग उनके दिल में एक हलचल पैदा कर रही थी। उन आँखों में कितनी गम्भीरता थी, कितनी सच्ची सहानुभूति, कितनी पवित्रता! उसके सीधे-सादे शब्दों में कर्म की ऐसी प्रेरणा थी, कि अमरनाथ को अपने इन्द्रिय-परायण जीवन पर शर्म आ रही थी। अब तक काँच के एक टुकड़े को हीरा समझकर सीने से लगाये हुए थे। आज उन्हें मालूम हुआ हीरा किसे कहते हैं। उसके सामने वह टुकड़ा तुच्छ मालूम हो रहा था। मालती की वह जादूभरी चितवन, उसकी वह मीठी अदाएँ, उसकी शोखियाँ और नखरे सब जैसे मुलम्मा उड़ जाने के बाद अपनी असली सूरत में नजर आ रहे थे और अमरनाथ के दिल में नफरत पैदा कर रहे थे। वह मालती की तरफ जा रहे थे, उसके दर्शन के लिए नहीं, बल्कि उसके हाथों से अपना दिल छीन लेने के लिए। प्रेम का भिखारी आज अपने भीतर एक विचित्र अनिच्छा का अनुभव कर रहा था। उसे आश्चर्य ही रहा था कि अब तक वह क्यों इतना बेखबर था। वह

तिलिस्म जो मालती ने वर्षों के नाज-नखरे, हाव-भाव से बाँधा था, आज किसी छू-मन्तर से तार-तार हो गया था।

मालती ने उन्हें खाली हाथ देखकर तयोरियाँ चढाते हुए कहा — साड़ी लाये या नहीं ?

अमरनाथ ने उदासीनता के ढग से जवाब दिया — नहीं।

मालती ने आश्चर्य से उनकी तरफ़ देखा — नहीं ! वह उनके मुँह से यह शब्द सुनने की आदी न थी। यहाँ उसने पूर्ण समर्पण पाया था। उसका इशारा अमरनाथ के लिए भाग्य-लिपि के समान था। बोली — क्यों ?

अमरनाथ — क्यों क्या, नहीं लाये।

मालती — बाज़ार में मिली न होगी। तुम्हे क्यों मिलने लगी, और मेरे लिए !

अमरनाथ — नहीं साहब, मिली मगर लाया नहीं।

मालती — आखिर कोई वजह ? रुपये मुझसे ले जाते।

अमरनाथ — तुम खामखाह जलाती हो। तुम्हारे लिए जान देने को मैं हाज़िर रहा।

मालती — तो शायद तुम्हें रुपये जान से भी प्यारे हों ?

अमरनाथ — तुम मुझे बैठने दोगी या नहीं ? अगर मेरी सूरत से नफ़रत हो तो चला जाऊँ !

मालती — तुम्हे आज हो क्या गया है, तुम तो इतने तेज़ मिजाज के न थे ?

अमरनाथ — तुम बातें ही ऐसी कर रही हो।

मालती — तो आखिर मेरी चीज क्यों नहीं लाये ?

अमरनाथ ने उसकी तरफ़ बड़े वीर-भाव के साथ देखकर कहा—दुकान पर गया, जिल्लत उठायी और साड़ी लेकर चला तो एक औरत ने छीन ली। मैंने कहा, मेरी बीबी की फ़रमाइश है तो बोली — मैं उन्हीं को दूँगी, कल तुम्हारे घर आऊँगी।

मालती ने शरारतभरी नज़रों से देखते हुए कहा — तो यह कहिए आप दिल हथेली पर लिये फिर रहे थे। एक औरत को देखा और उसके क़दमों पर चढ़ा दिया !

अमरनाथ — वह उन औरतों में नहीं, जो दिलों की घात में रहती हैं।

मालती — तो कोई देवी होगी ?

अमरनाथ — मैं उसे देवी ही समझता हूँ।

मालती — तो आप इस देवी की पूजा कीजिएगा ?

अमरनाथ — मुझे जैसे आवारा नौजवान के लिए उस मन्दिर के दरवाजे बन्द है।

मालती — बहुत सुन्दर होगी।

अमरनाथ — न सुन्दर है, न रूपवाली, न ऐसी अदाएँ कुछ, न मधुरभाषिणी, न तन्वगी। बिल्कुल एक मामूली मासूम लड़की है। लेकिन जब मेरे हाथ से उसने साड़ी छीन ली तो मैं क्या कर सकता था। मेरी ग़ैरत ने तो गवारा न किया कि उसके हाथ से साड़ी छीन लूँ। तुम्हीं इन्साफ करो, वह दिल मे क्या कहती?

मालती — तो तुम्हें इसकी ज़्यादा परवाह है कि वह अपने दिल मे क्या कहेगी। मैं क्या कहूँगी, इसकी ज़रा भी परवाह न थी! मेरे हाथ से कोई मर्द मेरी कोई चीज छीन ले तो देखूँ, चाहे वह दूसरा कामदेव ही क्यों न हो।

अमरनाथ — अब इसे चाहे मेरी कायरता समझो, चाहे हिम्मत की कमी, चाहे शराफ़त, मैं उसके हाथ से न छीन सका।

मालती — तो कल वह साड़ी लेकर आयेगी, क्यों?

अमरनाथ — जरूर आयेगी।

मालती — तो जाकर मुँह धो आओ। तुम इतने नादान हो, यह मुझे मालूम न था। साड़ी देकर चले आये, अब कल वह आपको देने आयेगी! कुछ भंग तो नहीं खा गये!

अमरनाथ — खैर, इसका इम्तहान कल हो ही जायगा, अभी से क्यों बदगुमानी करती हो। तुम शाम को ज़रा देर के लिए मेरे घर तक चली चलना।

मालती — जिससे आप कहें कि यह मेरी बीबी है!

अमरनाथ — मुझे क्या खबर थी कि वह मेरे घर आने के लिए तैयार हो जायगी, नहीं तो कोई और बहाना कर देता।

मालती — तो आपकी साड़ी आपको मुबारक हो, मैं नहीं जाती।

अमरनाथ — मैं तो रोज़ तुम्हारे घर आता हूँ, तुम एक दिन के लिए भी नहीं चल सकतीं?

मालती ने निष्ठुरता से कहा — अगर मौक़ा आ जाय तो तुम अपने को मेरा शौहर कहलाना पसन्द करोगे? दिल पर हाथ रखकर कहना।

अमरनाथ दिल में कट गये, बात बनाते हुए बोले — मालती, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। बुरा न मानना, मेरे व तुम्हारे बीच प्यार और मुहब्बत दिखलाने के बावजूद एक दूरी का पर्दा पड़ा था। हम दोनों एक-दूसरे की हालत

को समझते थे और इस पर्व को हटाने की कोशिश न करते थे। यह पर्व हमारे संबंधों की अनिवार्य शर्त था। हमारे बीच एक व्यापारिक समझौता-सा हो गया। हम दोनों उसकी गहराई में जाते हुए डरते थे। नहीं, बल्कि मैं डरता था और तुम जान-बूझकर न जाना चाहती थी। अगर मुझे विश्वास हो जाता कि तुम्हें जीवन-सहचरी बनाकर मैं वह सब कुछ पा जाऊँगा जिसका मैं अपने को अधिकारी समझता हूँ तो मैं अब तक कभी का तुमसे इसकी याचना कर चुका होता। लेकिन तुमने कभी मेरे दिल में यह विश्वास पैदा करने की परवाह न की। मेरे बारे में भी तुम्हें यह शक है। मैं नहीं कह सकता, तुम्हें यह शक करने का मैंने कोई मौका नहीं दिया और मैं कह सकता हूँ कि मैं उससे कहीं बेहतर शौहर बन सकता हूँ जितनी तुम बीवी बन सकती हो। मेरे लिए सिर्फ़ एतबार की जरूरत है और तुम्हारे लिए ज़्यादा वजनी और ज़्यादा भौतिक चीजों की। मेरी स्थायी आमदनी पाँच सौ से ज़्यादा नहीं, तुमको इतने से सतोष न होगा। मेरे लिए सिर्फ़ इस इत्मीनान की जरूरत है कि तुम मेरी और सिर्फ़ मेरी हो। बोलो मज़ूर है ?

मालती को अमरनाथ पर रहम आ गया। उसकी बातों में जो सच्चाई भरी हुई थी, उससे वह इनकार न कर सकी। उसे यह भी यकीन हो गया कि अमरनाथ की वफ़ा के पैर डगमगायेंगे नहीं। उसे अपने ऊपर इतना भरोसा था कि वह उसे रस्सी से मज़बूत जकड़ सकती है, लेकिन खुद जकड़े जाने पर वह अपने को तैयार न कर सकी। उसकी जिन्दगी मुहब्बत की बाजीगरी में, प्रेम के प्रदर्शन में गुज़री थी। वह कभी इस, कभी उस शाख़ पर चहकती फिरती थी, बेक़द, आजाद, बेबन्द। क्या वह चिड़िया पिंजरे में खुश रह सकती है जिसकी जबान तरह-तरह के मज़ों की आदी हो गयी हो? क्या वह सूखी रोटी से तृप्त हो सकती है? इस अनुभूति ने उसे पिघला दिया। बोली — आज तुम बड़ा ज्ञान बघार रहे हो ?

अमरनाथ — मैंने तो केवल यथार्थ कहा है।

मालती — अच्छा मैं कल चलूँगी, मगर एक घण्टे से ज़्यादा वहाँ न रहूँगी।

अमरनाथ का दिल शुक्रिये से भर उठा। बोला — मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ मालती। अब मेरी आबरू बच जायगी। नहीं तो मेरे लिए घर से निकलना मुश्किल हो जाता। अब देखना यह है कि तुम अपना पार्ट कितनी खूबसूरती से अदा करती हो।

मालती — उसकी तरफ़ से तुम इत्मीनान रखो। ब्याह नहीं किया मगर

बराते देखी है। मगर मैं डरती हूँ कही तुम मुझसे दगा न कर रहे हो। मर्दों का क्या एतबार !

अमरनाथ ने निश्चल भाव से कहा — नहीं मालती, तुम्हारा सन्देह निराधार है। अगर यह जजीर पैरों में डालने की इच्छा होती तो कभी का डाल चुका होता। फिर मुझ जैसे वासना के बंदों का वहाँ गुजर ही कहाँ।

३

दूसरे दिन अमरनाथ दस बजे ही दर्जी की दुकान पर जा पहुँचे और सिर पर सवार होकर कपड़े तैयार कराये। फिर घर आकर नये कपड़े पहने और मालती को बुलाने चले। वहाँ देर हो गयी। उसने ऐसा बनाव-सिगार किया कि जैसे आज बहुत बड़ा मोर्चा जीतना है।

अमरनाथ ने कहा — वह ऐसी सुन्दरी नहीं है जो तुम इतनी तैयारियाँ कर रही हो।

मालती ने बालों में कंधी करते हुए कहा — तुम इन बातों को नहीं समझ सकते, चुपचाप बैठे रहो।

अमरनाथ — लेकिन देर जो हो रही है।

मालती — कोई बात नहीं।

भय की उस सहज आशंका ने, जो स्त्रियों की विशेषता है, मालती को और भी अधिक सतर्क कर दिया था। अब तक उसने कभी अमरनाथ की ओर विशेषरूप से कोई कृपा न की थी। वह उससे काफ़ी उदासीनता का बर्ताव करती थी। लेकिन कल अमरनाथ की भगिमा से उसे एक संकट की सूचना मिल चुकी थी और वह उस संकट का अपनी पूरी शक्ति से मुकाबला करना चाहती थी। शत्रु को तुच्छ और अपदार्थ समझना स्त्रियों के लिए कठिन है। आज अमरनाथ को अपने हाथ से निकलते देखकर वह अपनी पकड़ को मजबूत कर रही थी। अगर इस तरह उसकी चीज़े एक-एक करके निकल गयी तो फिर वह अपनी प्रतिष्ठा कब तक बनाये रख सकेगी? जिस चीज़ पर उसका कब्जा है, उसकी तरफ़ कोई आँख ही क्यों उठाये? राजा भी तो एक-एक अगुल जमीन के पीछे जान देता है। वह इस नये शिकारी को हमेशा के लिए अपने रास्ते से हटा देना चाहती थी, उसके जादू को तोड़ देना चाहती थी।

शाम को वह परी-जैसी, अपनी नौकरानी और नौकर को साथ लेकर अमरनाथ के घर चली। अमरनाथ ने सुबह दस बजे तक मर्दाने घर को जनानेपन का रंग

देने में खर्च किया था। ऐसी तैयारियाँ कर रखी थी कि जैसे कोई अफसर मुआइना करनेवाला हो। मालती ने घर में पैर रखा तो उसकी सफाई और सजावट देखकर बहुत खुश हुई। जनाने हिस्से में कई कुर्सियाँ रखी थी। बोली — अब लाओ अपनी देवीजी को। मगर जल्द आना। वर्ना मैं चली जाऊँगी।

अमरनाथ लपके हुए विलायती कपड़े की दुकान पर गये। आज भी घरना था। तमाशाइयो की वही भीड़। वहाँ देवीजी न थी। पीछे की तरफ गये तो देवीजी एक लड़की के साथ उसी भेस में खड़ी थी।

अमरनाथ ने कहा — माफ कीजिएगा, मुझे देर हो गयी। मैं आपके वादे की याद दिलाने आया हूँ।

देवीजी ने कहा — मैं तो आपका इन्तजार कर रही थी। चलो सुमित्रा, जरा आपके घर हो आये। कितनी दूर है ?

अमरनाथ — बहुत पास है। एक ताँगा कर लूँगा।

पन्द्रह मिनट में अमरनाथ दोनों को लिये घर जा पहुँचे। मालती ने देवीजी को देखा और देवीजी ने मालती को। एक किसी रईस का महल था, आलीशान; दूसरी किसी फकीर की कुटिया थी, छोटी-सी, तुच्छ। रईस के महल में आडम्बर और प्रदर्शन था, फकीर की कुटिया में सादगी और सफाई। मालती ने देखा, भोली लड़की है जिसे किसी तरह सुन्दर नहीं कह सकते। पर उसके भोलेपन और सादगी में जो आकर्षण था, उससे वह प्रभावित हुए बिना न रह सकी। देवीजी ने भी देखा, एक बनी-सँवरी, बेघड़क और घमण्डी औरत है जो किसी न किसी वजह से उस घर में अजनबी-सी मालूम हो रही है जैसे कोई जगली जानवर पिँजरे में आ गया हो।

अमरनाथ सिर झुकाये मुजरिमों की तरह खड़े थे और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरह आज पर्दा रह जाये।

देवी ने आते ही कहा — बहन, आप अब भी सिर से पाँव तक विदेशी कपड़े पहने हुई है ?

मालती ने अमरनाथ की तरफ देखकर कहा — मैं विदेशी और देशी के फेर में नहीं पड़ती। जो यह लाकर देते हैं वह पहनती हूँ। लानेवाले है ये, मैं थोड़े ही बाजार जाती हूँ।

देवी ने शिकायतभरी आँखों से अमरनाथ की तरफ देखकर कहा — आप तो कहते थे यह इनकी फ़रमाइश है, मगर आप ही का क़सूर निकल आया।

मालती — मेरे सामने इनसे कुछ मत कहो। तुम बाज़ार में भी दूसरे मर्दों से बातें कर सकती हो, जब वह बाहर चले जायँ तो जितना जी चाहे कह-सुन लेना। मैं अपने कानों से नहीं सुनना चाहती।

देवीजी — मैं कुछ कहती नहीं और बहनजी, मैं कह ही क्या सकती हूँ कोई ज़बर्दस्ती तो है नहीं, बस विनती कर सकती हूँ।

मालती — इसका मतलब यह है कि इन्हें अपने देश की भलाई का ज़रा भी खयाल नहीं, उसका ठेका तुम्हीं ने ले लिया है। पढे-लिखे आदमी है, दस आदमी इज़्जत करते हैं, अपना नफ़ा-नुकसान समझ सकते हैं। तुम्हारी क्या हिम्मत कि इन्हें उपदेश देने बैठो, या सबसे ज्यादा अक्लमन्द तुम्हीं हो ?

देवीजी — आप मेरा मतलब गलत समझ रही है बहन।

मालती—हाँ गलत तो समझूँगी ही, इतनी अक्ल कहाँ से लाऊँ कि आपकी बातों का मतलब समझूँ ! खट्टर की साड़ी पहन ली, झोली लटका ली, एक बिल्ला लगा लिया, बस अब अस्त्रियार है जहाँ चाहे आये-जाये, जिससे चाहे हँसे-बोले, घर में कोई पूछता नहीं तो जेलखाने का भी क्या डर ! मैं इसे हुड़दगापन समझती हूँ, जो शरीफ़ों की बहू-बेटियों को शोभा नहीं देता।

अमरनाथ दिल में कटे जा रहे थे। छिपने के लिए बिल ढूँढ रहे थे। देवी की पेशानी पर जरा बल न था। लेकिन आँखें डबडबा रही थी।

अमरनाथ ने मालती से ज़रा तेज़ स्वर में कहा—क्यों खामखाह किसी का दिल दुखाती हो ? यह देवियाँ अपना ऐश-आराम छोड़कर यह काम कर रही है, क्या तुम्हें इसकी बिलकुल खबर नहीं ?

मालती — रहने दो, बहुत तारीफ़ न करो। ज़माने का रग ही बदला जा रहा है, मैं क्या करूँगी और तुम क्या करोगे। तुम मर्दों ने औरतों को घर में इतनी बुरी तरह कैद किया कि आज वे रस्म-रिवाज, शर्म-हया को छोड़कर निकल आयी हैं और कुछ दिनों में तुम लोगों की हुकूमत का खातमा हुआ जाता है। विलायती और विदेशी तो दिखाने के लिए हैं, असल में यह आज़ादी की ख़्वाहिश है जो तुम्हें हासिल है। तुम अगर दो-चार शादियाँ कर सकते हो तो औरत क्यों न करे ! सच्ची बात यह है, अगर आँखें हैं तो अब खोलकर देखो। मुझे वह आज़ादी न चाहिए। यहाँ तो लाज ढोते हैं और मैं शर्म-हया को अपना सिंगार समझती हूँ।

देवीजी ने अमरनाथ की तरफ़ फ़रियाद की आँखों से देखकर कहा — बहन ने

औरतों को जलील करने की क़सम खा ली है। मैं बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर आयी थी, मगर शायद यहाँ से नाकाम जाना पड़ेगा।

अमरनाथ ने वह साड़ी उसको देते हुए कहा — नहीं, बिलकुल नाकाम तो आप नहीं जायेंगी, हाँ जैसी कामयाबी की आपको उम्मीद थी वह न होगी।

मालती ने डपटते हुए कहा — वह मेरी साड़ी है, तुम उसे नहीं दे सकते!

अमरनाथ ने शर्मिन्दा होते हुए कहा — अच्छी बात है, न दूँगा। देवीजी, ऐसी हालत में तो शायद आप मुझे माफ़ करेगी।

देवीजी चली गयीं तो अमरनाथ ने त्योरियाँ बदलकर कहा — यह तुमने आज मेरे मुँह में कालिख लगा दी। तुम इतनी बदतमीज़ और बदज़बान हो, मुझे मालूम न था।

मालती ने रोषपूर्ण स्वर में कहा — तो अपनी साड़ी उसे दे देती? मैं ऐसी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली। अब तो बदतमीज़ भी हूँ, बदज़बान भी, उस दिन इन बुराइयों में से एक भी न थी जब मेरी जूतियाँ सीधी करते थे! इस छोकरी ने मोहिनी डाल दी। जैसी रूह वैसे फरिश्ते। मुबारक हो।

यह कहती हुई मालती बाहर निकली। उसने समझा था ज़बान चलाकर और रूप की ताकत से वह उस लड़की को उखाड़ फेंकेगी लेकिन जब मालूम हुआ कि अमरनाथ आसानी से काबू में आनेवाला नहीं तो उसने फटकार बतायी। इन दामों अगर अमरनाथ मिल सकता था तो बुरा न था। इससे ज़्यादा कीमत वह उसके लिए दे न सकती थी।

अमरनाथ उसके साथ दरवाज़े तक आये। जब वह ताँगे पर बैठी तो विनती करते हुए बोले — यह साड़ी दे दो न मालती, मैं तुम्हें कल इससे कहीं अच्छी साड़ी ला दूँगा।

मगर मालती ने रूखेपन से कहा—यह साड़ी तो अब लाख रुपये पर भी नहीं दे सकती!

अमरनाथ ने त्योरियाँ बदलकर जवाब दिया—अच्छी बात है, ले जाओ मगर समझ लो कि यह मेरा आखिरी तोहफ़ा है।

मालती ने होंठ चबाकर कहा—इसकी परवाह नहीं। तुम्हारे बग़ैर मैं मर न जाऊँगी, इसका तुम्हें यकीन दिलाती हूँ!

— ‘आखिरी तोहफ़ा’ से

क्रांतिल

जाडो की रात थी। दस बजे ही सबके बन्द हो गयी थी और गलियों में सन्नाटा था। बूढ़ी बेवा माँ ने अपने नौजवान बेटे धर्मवीर के सामने थाली परोसते हुए कहा — तुम इतनी रात तक कहाँ रहते हो बेटा ? रखे-रखे खाना ठडा हो जाता है। चारो तरफ सौता पड़ गया। आग भी तो इतनी नहीं रहती कि इतनी रात तक बैठी तापती रहूँ।

धर्मवीर हूँ-पुष्ट, सुन्दर नवयुवक था। थाली खीचता हुआ बोला — अभी तो दस भी नहीं बजे अम्माँ। यहाँ के मुर्दादिल आदमी सरे-शाम ही सो जायँ तो कोई क्या करे। योरोप में लोग बारह-एक बजे तक सैर-सपाटे करते रहते हैं। जिन्दगी के मजे उठाना कोई उनसे सीख ले। एक बजे से पहले तो कोई सोता ही नहीं।

माँ ने पूछा — तो आठ-दस बजे सोकर उठते भी होंगे।

धर्मवीर ने पहलू बचाकर कहा — नहीं, वह छः बजे ही उठ बैठते हैं। हम लोग बहुत सोने के आदी हैं। दस से छः बजे तक, आठ घण्टे होते हैं। चौबीस घण्टों में आठ घण्टे आदमी सोये तो काम क्या करेगा ? यह बिलकुल गलत है कि आदमी को आठ घण्टे सोना चाहिए। इन्सान जितना कम सोये, उतना ही अच्छा। हमारी सभा ने अपने नियमों में दाखिल कर लिया है कि उसके मेम्बरो को तीन घण्टे से ज्यादा न सोना चाहिए।

माँ इस सभा का जिक्र सुनते-सुनते तग आ गयी थी। यह न खाओ, वह न खाओ, यह न पहनो, वह न पहनो, न ब्याह करो, न शादी करो, न नौकरी करो। न चाकरी करो, यह सभा क्या लोगों को सन्यासी बनाकर छोड़ेगी ? इतना त्याग तो सन्यासी ही कर सकता है। त्यागी सन्यासी भी तो नहीं मिलते। उनमें भी ज्यादातर इन्द्रियो के गुलाम, नाम के त्यागी हैं। आज सोने की कैद भी लगा दी। अभी तीन महीने का घूमना खत्म हुआ। जाने कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते हैं। अब बारह बजे खाइए। या कौन जाने रात को खाना ही उड़ा दे। आपत्ति के स्वर में बोली — तभी तो यह सूरत निकल आयी है कि चाहो तो एक-एक हड्डी

गिन लो। आखिर सभावले कोई काम भी करते है या सिर्फ आदमियो पर कैदें ही लगाया करते है ?

धर्मवीर बोला — जो काम तुम करती हो वही हम करते है। तुम्हारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है, हमारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है।

बूढ़ी विधवा आजादी की लड़ाई मे दिलो-जान से शरीक थी। दस साल पहले उसके पति ने एक राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध मे सजा पायी थी। जेल मे उसका स्वास्थ्य बिगड गया और जेल ही मे उसका स्वर्गवास हो गया। तब से यह विधवा बडी सच्चाई और लगन से राष्ट्र की सेवा मे लगी हुई थी। शुरू मे उसका नौजवान बेटा भी स्वयंसेवको मे शामिल हो गया था। मगर इधर पाँच महीनो से वह इस नयी सभा मे शरीक हो गया और उसको जोशीले कार्यकर्ताओं मे समझा जाता था।

माँ ने सदेह के स्वर मे पूछा — तो तुम्हारी सभा का भी कोई दफ्तर है ?
'हाँ है।'

'उसमें कितने मेम्बर है ?'

'अभी तो सिर्फ पचीस मेम्बर है ? लेकिन वह पचीस आदमी जो कुछ कर सकते है, वह तुम्हारे पचीस हजार भी नहीं कर सकते। देखो अम्माँ, किसी से कहना मत वना सबसे पहले मेरी जान पर आफत आयेगी। मुझे उम्मीद नहीं कि पिकेटिंग और जुलूसो से हमे आजादी हासिल हो सके। यह तो अपनी कमजोरी और बेबसी का साफ़ एलान है। झडियाँ निकालकर और गीत गाकर कौमे नहीं आजाद हुआ करती। यहाँ के लोग अपनी अकल से काम नहीं लेते। एक आदमी ने कहा — यो स्वराज्य मिल जायगा। बस आँखे बन्द करके उसके पीछे हो लिये। वह आदमी गुमराह है और दूसरों को भी गुमराह कर रहा है। यह लोग दिल मे इस खयाल से खुश हो ले कि हम आजादी के करीब आते-जाते है। मगर मुझे तो काम करने का यह ढग बिलकुल बच्चो का खेल-सा मालूम होता है। लड़को के रोने-धोने और मचलने पर खिलौने और मिठाइयाँ मिला करती है। वही इन लोगो को मिल जायगा। असली चीज तभी मिलेगी, जब हम उसकी कीमत देने को तैयार होंगे।'

माँ ने कहा — उसकी कीमत क्या हम नहीं दे रहे है ? हमारे लाखों आदमी जेल नहीं गये ? हमने डडे नहीं खाये ? हमने अपनी जायदादे नहीं जब्त करायी ?

धर्मवीर—इससे अंग्रेजों का क्या नुकसान हुआ ? वे हिन्दुस्तान उसी वक्त छोड़ेंगे, जब उन्हें यकीन हो जायगा कि अब वे एक पल भर भी नहीं रह सकते। अगर आज हिन्दोस्तान के एक हजार अंग्रेज कत्ल कर दिये जायँ तो आज ही स्वराज्य मिल जाय। रूस इसी तरह आजाद हुआ, आयरलैण्ड भी इसी तरह आजाद हुआ, हिन्दोस्तान भी इसी तरह आजाद होगा, और कोई तरीका नहीं। हमें उनका खातमा कर देना है। एक गोरे अफ़सर के कत्ल कर देने से हुकूमत पर जितना डर छा जाता है, उतना एक हजार जूलूसों से मुमकिन नहीं।

माँ सर से पाँव तक काँप उठी। उसे विघवा हुए दस साल हो गये थे। यही लड़का उसकी जिन्दगी का सहारा है। इसी को सीने से लगाए, मेहनत-मजदूरी करके अपने मुसीबत के दिन काट रही है। वह इस खयाल से खुश थी कि यह चार पैसे कमायेगा, घर में बहू आयेगी, एक टुकड़ा खाऊँगी और पडी रहूँगी। आरजूओं के पतले-पतले तिनकों से उसने एक किश्ती बनायी थी और उसी पर बैठकर जिन्दगी के दरिया को पार कर रही थी। वह किश्ती अब उसे लहरो में झकोले खाती मालूम हुई। उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह किश्ती दरिया में डूबी जा रही है। उसने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा — बेटा, तुम कैसी बातें कर रहे हो। क्या तुम समझते हो, अंग्रेजों को कत्ल कर देने से हम आजाद हो जायेंगे ? हम अंग्रेजों के दुश्मन नहीं। हम इस राज्य-प्रणाली के दुश्मन हैं। अगर यह राज्य-प्रणाली हमारे भाई-बन्दोही के हाथों में हो — और उसका बहुत बड़ा हिस्सा है भी — तो हम उसका भी इसी तरह विरोध करेंगे। रूस में तो कोई दूसरी कौम राज न करती थी, फिर भी रूसवालों ने उस हुकूमत को उखाड़ फेंका तो उसका कारण यही था कि जार प्रजा की परवाह न करता था। अमीर लोग मजे उड़ाते थे, गरीबों को पीसा जाता था। यह बातें तुम मुझसे ज़्यादा जानते हो। वही हाल हमारा है। यहाँ एक-एक ओहदेदार, एक हजार गरीबों का हिस्सा खा जाता है। देश की सम्पत्ति एक न एक बहाने निकलती चली जाती है और हम गरीब होते जाते हैं। हम इस अवैधानिक शासन को बदलना चाहते हैं। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, इस सभा से अपना नाम कटवा लो। खामखाह आग में न कूदो। मैं अपनी आँखों से यह दृश्य नहीं देखना चाहती कि तुम अदालत में खून के जुर्म में लाये जाओ।

धर्मवीर पर इस विनती का कोई असर नहीं हुआ। बोला — इसका कोई डर नहीं। हमने इसके बारे में काफ़ी एहतियात कर ली है। गिरफ़्तार होना तो

बेवकूफी है। हम लोग ऐसी हिकमत से काम करना चाहते हैं कि कोई गिरफ्तार न हो।

माँ के चेहरे पर अब डर की जगह शर्मिन्दगी की झलक नजर आयी। बोली — यह तो उससे भी बुरा है। बेगुनाह सजा पायें और कातिल चैन से बैठे रहे! यह शर्मनाक हरकत है। मैं इसे कमीनापन समझती हूँ। किसी को छिपकर कत्ल करना दगाबाजी है, मगर अपने बदले अपने बेगुनाह भाइयों को फँसा देना देशद्रोह है। इन बेगुनाहों का खून भी कातिल की गर्दन पर होगा।

धर्मवीर ने अपनी माँ की परेशानी का मज्जा लेते हुए कहा — अम्माँ, तुम इन बातों को नहीं समझती। तुम अपने घरने दिये जाओ, जुलूस निकाले जाओ। हम जो कुछ करते हैं, हमें करने दो। गुनाह और सवाब, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, यह निरर्थक शब्द हैं। जिस काम को तुम पाप समझती हो, उसे मैं पुण्य समझता हूँ। तुम्हें कैसे समझाऊँ कि यह सापेक्ष शब्द है। तुमने भगवतगीता तो पढ़ी है। कृष्ण भगवान ने साफ कहा है — मारनेवाला मैं हूँ, जिलानेवाला मैं हूँ, आदमी न किसी को मार सकता है, न जिला सकता है। फिर कहाँ रहा तुम्हारा पाप? मुझे इस बात की क्यो शर्म हो कि मेरे बदले कोई दूसरा मुजरिम क्ररार दिया गया। यह व्यक्तिगत लडाई नहीं, इग्लैण्ड की सामूहिक शक्ति से युद्ध है। मैं मरूँ या मेरे बदले कोई दूसरा मरे, इसमे कोई अन्तर नहीं। जो आदमी राष्ट्र की ज़्यादा सेवा कर सकता है, उसे जीवित रहने का ज़्यादा अधिकार है।

माँ आश्चर्य से लड़के का मुँह देखने लगी। उससे बहस करना बेकार था। अपनी दलीलों से वह उसे कायल न कर सकती थी। धर्मवीर खाना खाकर उठ गया। मगर वह ऐसी बैठी रही कि जैसे उसे लकवा मार गया हो। उसने सोचा — कही ऐसा तो नहीं कि वह किसी को कत्ल कर आया हो या कत्ल करने जा रहा हो। इस विचार से उसके शरीर में कँपकँपी आ गयी। आम लोगो की तरह हत्या और खून के प्रति घृणा उसके शरीर के कण-कण में भरी हुई थी। उसका अपना बेटा खून करे, इससे ज़्यादा लज्जा, अपमान, घृणा की बात उसके लिए और क्या हो सकती थी। वह राष्ट्र सेवा की उस कसौटी पर जान देती थी जो त्याग, सदाचार, सच्चाई और साफदिली का वरदान है। उसकी आँखों में राष्ट्र का सेवक वह था जो नीच से नीच प्राणी का दिल भी न दुखाये, बल्कि ज़रूरत पड़ने पर खुशी से अपने को बलिदान कर दे। अहिंसा उसकी नैतिक भावनाओं का सबसे प्रधान अंग थी। अगर धर्मवीर किसी गरीब की हिमायत में गोली का निशाना

बन जाता तो वह रोती जरूर मगर गर्दन उठाकर । उसे गहरा शोक होता, शायद इस शोक में उसकी जान भी चली जाती । मगर इस शोक में गर्व मिला हुआ होता । लेकिन वह किसी का खून कर आये यह एक भयानक पाप था, कलक था । लडके को रोके कैसे, यही सवाल उसके सामने था । वह यह नौबत हरगिज न आने देगी कि उसका बेटा खून के जुर्म मे पकड़ा जाय । न उसे यही बरदाश्त था कि उसके जुर्म की सजा बेगुनाहों को मिले । उसे ताज्जुब हो रहा था, लडके में यह पागलपन आया क्योंकर ? वह खाना खाने बैठी मगर कौर गले के नीचे न जा सका । कोई जालिम हाथ धर्मवीर को उसकी गोद से छीने लेता है । वह उस हाथ को हटा देना चाहती थी । अपने जिगर के टुकड़े को वह एक क्षण के लिए भी अलग न करेगी । छाया की तरह उसके पीछे-पीछे रहेगी । किसकी मजाल है, जो उसके लडके को उसकी गोद से छीने !

धर्मवीर बाहर के कमरे मे सोया करता था । उसे ऐसा लगा कि कहीं वह चला न गया हो । फ़ौरन उसके कमरे में आयी । धर्मवीर के सामने दीवट पर दिया जल रहा था । वह एक किताब खोले पढ़ता-पढ़ता सो गया था । किताब उसके सीने पर पड़ी थी । माँ ने वही बैठकर अनाथ की तरह बड़ी सच्चाई और विनय के साथ परमात्मा से प्रार्थना की कि लडके का हृदय-परिवर्तन कर दे । उसके चेहरे पर अब भी वही भोलापन, वही मासूमियत थी जो पन्द्रह-बीस साल पहले नजर आती थी । कर्कशता या कठोरता का कोई चिह्न न था । माँ की सिद्धांत-परता एक क्षण के लिए ममता के आँचल मे छिप गयी । माँ ने हृदय से बेटे की हार्दिक भावनाओं को देखा । इस नौजवान के दिल मे सेवा की कितनी उमग है, क्रौम का कितना दर्द है, पीड़ितों से कितनी सहानुभूति है । अगर इसमें बूढो की-सी सूझ-बूझ, धीमी चाल और धैर्य है तो इसका क्या कारण है । जो व्यक्ति प्राण जैसी प्रिय वस्तु को बलिदान करने के लिए तत्पर हो, उसकी तडप और जलन का कौन अन्दाज़ा कर सकता है । काश यह जोश, यह दर्द हिंसा के पजे से निकल सकता तो जागरण की प्रगति कितनी तेज हो जाती !

माँ की आहट पाकर धर्मवीर चौक पड़ा और किताब सम्हालता हुआ बोला—तुम कब आ गयीं अम्माँ ? मुझे तो न जाने कब नीद आ गयी ।

माँ ने दीवट को दूर हटाकर कहा—चारपाई के पास दिया रखकर न सोया करो । इससे कभी-कभी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं । और क्या सारी रात

पढते ही रहोगे? आधी रात तो हुई, आराम से सो जाओ। मैं भी यही लेटी जाती हूँ। मुझे अन्दर न जाने क्यों डर लगता है।

धर्मवीर — तो मैं एक चारपाई लाकर डाले देता हूँ।

‘नहीं, मैं यहीं जमीन पर लेटी जाती हूँ।’

‘वाह, मैं चारपाई पर लेटूँ और तुम जमीन पर पड़ी रहो। तुम चारपाई पर आ जाओ।’

‘चल, मैं चारपाई पर लेटूँ और तू जमीन पर पड़ा रहे, यह तो नहीं हो सकता।’

‘मैं चारपाई लिये आता हूँ। नहीं तो मैं भी अन्दर ही लेटता हूँ। आज आप डरी क्यों?’

‘तुम्हारी बातों ने डरा दिया। तू मुझे भी क्यों अपनी सभा में नहीं शरीक कर लेता?’

धर्मवीर ने कोई जवाब न दिया। बिस्तर और चारपाई उठाकर अन्दर-वाले कमरे में चला। माँ आगे-आगे चिराग दिखाती हुई चली। कमरे में चारपाई डालकर उस पर लेटता हुआ बोला — अगर तुम मेरी सभा में शरीक हो जाओ तो क्या पूछना। बेचारे कच्ची-कच्ची रोटियाँ खाकर बीमार हो रहे हैं। उन्हें अच्छा खाना मिलने लगेगा। फिर ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें एक बूढ़ी स्त्री जितनी आसानी से कर सकती है, नौजवान हरगिज नहीं कर सकते। मसलन किसी मामले का सुराग लगाना, औरतों में हमारे विचारों का प्रचार करना। मगर तुम दिल्लगी कर रही हो!

माँ ने गम्भीरता से कहा — नहीं बेटा, दिल्लगी नहीं कर रही। दिल से कह रही हूँ। माँ का दिल कितना नाजुक होता है, इसका अन्दाजा तुम नहीं कर सकते। तुम्हें इतने बड़े खतरे में अकेला छोड़कर मैं घर में नहीं बैठ सकती। जब तक मुझे कुछ न मालूम था, दूसरी बात थी। लेकिन अब यह बातें जान लेने के बाद मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती। मैं हमेशा तुम्हारे बगल में रहूँगी और अगर कोई ऐसा मौका आया तो तुमसे पहले मैं अपने को कुर्बान करूँगी। मरते वक़्त तुम मेरे सामने होंगे। मेरे लिए यही सबसे बड़ी खुशी है। यह मत समझो कि मैं नाजुक मौकों पर डर जाऊँगी, चीखूँगी, चिल्लाऊँगी। हरगिज नहीं। सख्त से सख्त खतरो के सामने भी तुम मेरी ज़बान से एक चीख न सुनोगे। अपने बच्चे की हिफ़ाजत के लिए गाय भी शेरनी बन जाती है।

धर्मवीर ने भक्ति से विह्वल होकर माँ के पैरों को चूम लिया। उसकी दृष्टि में वह कभी इतने आदर और स्नेह के योग्य न थी।

२

दूसरे ही दिन परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ। यह दो दिन बुढ़िया ने रिवाल्वर चलाने के अभ्यास में खर्च किये। पटाखे की अवाज पर कानों पर हाथ रखनेवाली, अहिंसा और धर्म की देवी, इतने साहस से रिवाल्वर चलाती थी और उसका निशाना इतना अचूक होता था कि सभा के नौजवानों को भी हैरत होती थी।

पुलिस के सबसे बड़े अफसर के नाम मौत का परवाना निकला और यह काम धर्मवीर के सुपुर्द हुआ।

दोनों घर पहुँचे तो माँ ने पूछा — क्यों बेटा, इस अफसर ने तो कोई ऐसा काम नहीं किया फिर सभा ने क्यों उसको चुना ?

धर्मवीर माँ की सरलता पर मुस्कराकर बोला — तुम समझती हो, हमारे कानिस्टिबिल और सब-इन्सपेक्टर और सुपरिण्टेण्डेण्ट जो कुछ करते हैं, अपनी खुशी से करते हैं ? वे लोग जितने अत्याचार करते हैं, उनके लिए यही आदमी जिम्मेदार है। और फिर हमारे लिए तो इतना ही काफी है कि वह उस मशीन का एक खास पुर्जा है जो हमारे राष्ट्र को चरम निर्दयता से बर्बाद कर रही है। लड़ाई में व्यक्तिगत बातों से कोई प्रयोजन नहीं, वहाँ तो विरोधी पक्ष का सदस्य होना ही सबसे बड़ा अपराध है।

माँ चुप हो गयी। क्षण भर बाद डरते-डरते बोली — बेटा, मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं माँगा। अब एक सवाल करती हूँ, उसे पूरा करोगे ?

धर्मवीर ने कहा — यह पूछने की कोई जरूरत नहीं अम्माँ, तुम जानती हो मैं तुम्हारे किसी हुक्म से इनकार नहीं कर सकता।

माँ — हाँ बेटा, यह जानती हूँ। इसी वजह से मुझे यह सवाल करने की हिम्मत हुई। तुम इस सभा से अलग हो जाओ। देखो, तुम्हारी बूढ़ी माँ हाथ जोड़कर तुमसे यह भीख माँग रही है।

और वह हाथ जोड़कर भिखारिन की तरह बेटे के सामने खड़ी हो गयी। धर्मवीर ने कहकहा मारकर कहा — यह तो तुमने बेढब सवाल किया, अम्माँ! तुम जानती हो इसका नतीजा क्या होगा ? जिन्दा लौटकर न आऊँगा। अगर

यहाँ से कहीं भाग जाऊँ तो भी जान नहीं बच सकती। सभा के सब मेम्बर ही मेरे खून के प्यासे हो जायेंगे और मुझे उनकी गोलियों का निशाना बनना पड़ेगा। तुमने मुझे यह जीवन दिया है, इसे तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर सकता हूँ। लेकिन भारतमाता ने तुम्हें और मुझे दोनों ही को जीवन दिया है और उसका हक़ सबसे बड़ा है। अगर कोई ऐसा मौका हाथ आ जाय कि मुझे भारतमाता की सेवा के लिए तुम्हें क़त्ल करना पड़े तो मैं इस अप्रिय कर्तव्य से भी मुँह न मोड़ सकूँगा। आँखों से आँसू जारी होंगे, लेकिन तलवार तुम्हारी गर्दन पर होगी। हमारे धर्म में राष्ट्र की तुलना में कोई दूसरी चीज़ नहीं ठहर सकती। इसलिए सभा को छोड़ने का तो सवाल ही नहीं है। हाँ, तुम्हें डर लगता हो तो मेरे साथ न जाओ। मैं कोई बहाना कर दूँगा और किसी दूसरे कामरेड को साथ ले लूँगा। अगर तुम्हारे दिल में कमज़ोरी हो, तो मुझे फौरन बतला दो।

माँ ने कलेजा मज़बूत करके कहा — मैंने तुम्हारे खयाल से कहा था भइया, वर्ना मुझे क्या डर।

अँधेरी रात के पर्दे में इस काम को पूरा करने का फ़ैसला किया गया था। कोप का पात्र रात को क्लब से जिस वक़्त लौटे वहीं उसकी ज़िन्दगी का चिराग़ बुझा दिया जाय। धर्मवीर ने दोपहर ही को मौक़े का मुआइना कर लिया और उस खास जगह को चुन लिया जहाँ से वह निशाना मारेगा। साहब के बैंगले के पास करील और करौदे की एक छोटी-सी झाड़ी थी। वही उसकी छिपने की जगह होगी। झाड़ी के बायीं तरफ़ नीची जमीन थी। उसमें बेर और अमरूद के बाग़ थे। भाग निकलने का अच्छा मौका था।

साहब के क्लब जाने का वक़्त सात और आठ बजे के बीच था, लौटने का वक़्त ग्यारह या बारह बजे था। इन दोनों वक़्तों की बात पक्की तरह मालूम कर ली गयी थी। धर्मवीर ने तय किया कि नौ बजे चलकर उसी करौदेवाली झाड़ी में छिपकर बैठ जायँ। वही एक मोड़ भी था। मोड़ पर मोटर की चाल कुछ धीमी पड़ जायगी। ठीक इसी वक़्त उसे रिवाल्वर का निशाना बना लिया जाय।

ज्यो-ज्यों दिन गुज़रता जाता था, बूढ़ी माँ का दिल भय से सूखता जाता था। लेकिन धर्मवीर के दैनंदिन आचरण में तनिक भी अन्तर न था। वह नियत समय पर उठा, नाश्ता किया, सन्ध्या की और अन्य दिनों की तरह कुछ देर पढ़ता रहा। दो-चार मित्र आ गये। उनके साथ दो-तीन बाज़ियाँ शतरंज की खेली। इत्मीनान से खाना खाया और अन्य दिनों से कुछ अधिक। फिर आराम

से सो गया, कि जैसे उसे कोई चिन्ता नहीं है। माँ का दिल उचाट था। खाने-पीने का तो जिन्न ही क्या, वह मन मारकर एक जगह बैठ भी न सकती थी। पड़ोस की औरते हमेशा की तरह आयी। वह किसी से कुछ न बोली। बदहवास-सी इधर-उधर दौड़ती फिरती थी कि जैसे चुहिया बिल्ली के डर से कोई सुराख ढूँढती हो। कोई पहाड़-सा उसके सिर पर गिरता था। उससे कही मुक्ति नहीं। कहीं भाग जाय, ऐसी कोई जगह नहीं। वे घिसे-पिटे दार्शनिक विचार जिनसे अब तक उसे सान्त्वना मिलती थी — भाग्य, पुनर्जन्म, भगवान् की मर्जी — वे सब इस भयानक विपत्ति के सामने व्यर्थ जान पड़ते थे। जिरहबख्तर और लोहे की टोपी-तीर-नुपक से रक्षा कर सकते हैं लेकिन पहाड़ तो उसे उन सब चीजों के साथ कुचल डालेगा। उसके दिलो-दिमाग बेकार होते जाते थे। अगर कोई भाव शेष था, तो वह भय था। मगर शाम होते-होते उसके हृदय पर एक शान्ति-सी छा गयी। उसके अन्दर एक ताकत पैदा हुई जिसे मजबूरी की ताकत कह सकते हैं। चिड़िया उस वक़्त तक फडफडाती रही, जब तक उड़ निकलने की उम्मीद थी। उसके बाद वह बहेलिये के पंजे और कसाई के छुरे के लिए तैयार हो गयी। भय की चरम सीमा साहस है।

उसने धर्मवीर को पुकारा — बेटा, कुछ आकर खा लो।

धर्मवीर अन्दर आया। आज दिन भर माँ-बेटे में एक बात भी न हुई थी। इस वक़्त माँ ने धर्मवीर को देखा तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह समय जिससे आज उसने दिन भर अपने भीतर की बेचैनी को छिपा रखा था, जो अब तक उड़े-उड़े-से दिमाग की शकल में दिखायी दे रही थी, खतरे के पास आ जाने पर पिघल गया था — जैसे कोई बच्चा भालू को दूर से देखकर तो खुशी से तालियाँ बजाये लेकिन उसके पास आने पर चीख उठे।

दोनों ने एक दूसरे की तरफ देखा। दोनों रोने लगे।

माँ का दिल खुशी से खिल उठा। उसने आँचल से धर्मवीर के आँसू पोछते हुए कहा — चलो बेटा, यहाँ से कहीं भाग चलें।

धर्मवीर चिन्ता-मग्न खड़ा था। माँ ने फिर कहा — किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं। यहाँ से बाहर निकल जायँ जिसमें किसी को खबर भी न हो। राष्ट्र की सेवा करने के और भी बहुत-से रास्ते हैं।

धर्मवीर जैसे नींद से जागा, बोला — यह नहीं हो सकता अम्माँ। कर्तव्य तो कर्तव्य है, उसे पूरा करना पड़ेगा। चाहे रोकर पूरा करो, चाहे हँसकर।

हाँ, इस खयाल से डर लगता है कि नतीजा न जाने क्या हो। मुमकिन है निशाना चूक जाये और गिरफ्तार हो जाऊँ या उसकी गोली का निशाना बनूँ। लेकिन खैर जो हो, सो हो। मर भी जायेगे तो नाम तो छोड़ जायेगे।

क्षण भर बाद उसने फिर कहा—इस समय तो कुछ खाने को जी नहीं चाहता, माँ। अब तैयारी करनी चाहिए। तुम्हारा जी न चाहता हो तो न चलो, मैं अकेला चला जाऊँगा।

माँ ने शिकायत के स्वर में कहा — मुझे अपनी जान इतनी प्यारी नहीं है बेटा, मेरी जान तो तुम हो। तुम्हें देखकर जीती थी। तुम्हें छोड़कर मेरी जिन्दगी और मौत दोनों बराबर हैं, बल्कि मौत जिन्दगी से अच्छी है।

धर्मवीर ने कुछ जवाब न दिया। दोनों अपनी-अपनी तैयारियों में लग गये। माँ की तैयारी ही क्या थी। एक बार ईश्वर का ध्यान किया, रिवाल्वर लिया और चलने को तैयार हो गयी।

धर्मवीर को अपनी डायरी लिखनी थी। वह डायरी लिखने बैठा तो भावनाओं का एक सागर-सा उमड़ पड़ा। यह प्रवाह, विचारों की यह स्वतः स्फूर्ति उसके लिए नयी चीज़ थी। जैसे दिल में कहीं सोता खुल गया हो। इन्सान लाफानी है, अमर है, यही उस विचार-प्रवाह का विषय था। आरम्भ एक दर्दनाक अलविदा से हुआ —

‘रुखसत ! ऐ दुनिया की दिलचस्पियो, रुखसत ! ऐ जिन्दगी की बहारो, रुखसत ! ऐ मीठे जरूमो रुखसत ! देशभाइयो, अपने इस आहत और अभागे सेवक के लिए भगवान से प्रार्थना करना ! जिन्दगी बहुत प्यारी चीज़ है, इसका तजुर्बा हुआ। आह ! वही दुख-दर्द के नशतर, वही हसरते और मायूसियाँ जिन्होंने जिन्दगी को कडुवा बना रखा था, इस समय जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है। यह प्रभात की सुनहरी किरनो की वर्षा, यह शाम की रगिन हवाएँ, यह गली-कूचे, यह दरों-दीवार फिर देखने को न मिलेगे। जिन्दगी बन्दिशों का नाम है। बन्दिशे एक-एक करके टूट रही है। जिन्दगी का शीराजा बिखरा जा रहा है। ऐ दिल की आजादी ! आओ तुम्हें नाउम्मीदी की कब्र में दफ़न कर दूँ। भगवान से यही प्रार्थना है कि मेरे देशवासी फले-फूले, मेरा देश लहलहाये। कोई बात नहीं, हम क्या और हमारी हस्ती ही क्या, मगर गुलशन बुलबुलों से खाली न रहेगा। मेरी अपने भाइयों से इतनी ही विनती है कि जिस समय आप आजादी के गीत गायें तो इस गरीब की भलाई के लिए दुआ करके उसे याद कर लें।’

डायरी बन्द करके उसने एक लम्बी साँस खींची और उठ खड़ा हुआ। कपड़े पहने, रिवाल्वर जेब में रखा और बोला — अब तो वक़्त ही गया अम्माँ !

माँ ने कुछ जवाब न दिया। घर सम्हालने की किसे परवाह थी, जो चीज जहाँ पड़ी थी, वहीं पड़ी रही। यहाँ तक कि दिया भी न बुझाया गया। दोनों खामोश घर से निकले—एक मर्दानगी के साथ कदम उठाता, दूसरी चिन्तित और शोक-मग्न और बेबसी के बोझ से झुकी हुई। रास्ते में भी शब्दों का विनिमय न हुआ। दोनों भाग्य-लिपि की तरह अटल, मौन और तत्पर थे — गद्यांश तेजस्वी, बलवान्, पुनीत कर्म की प्रेरणा; पद्यांश दर्द, आवेश और विनती से काँपता हुआ।

झाड़ी में पहुँचकर दोनों चुपचाप बैठ गये। कोई आध घण्टे के बाद साहब की मोटर निकली। धर्मवीर ने शौर से देखा। मोटर की चाल धीमी थी। साहब और लेडी दोनों बैठे थे। निशाना अचूक था। धर्मवीर ने जेब से रिवाल्वर निकाला। माँ ने उसका हाथ पकड़ लिया और मोटर आगे निकल गयी।

धर्मवीर ने कहा — यह तुमने क्या किया अम्माँ ! ऐसा सुनहरा मौक़ा फिर हाथ न आयेगा।

माँ ने कहा — मोटर मे मेम भी थी। कही मेम को गोली लग जाती तो ?

‘तो क्या बात थी। हमारे धर्म मे नाग, नागिन और सँपोले में कोई भी अन्तर नहीं।’

माँ ने घृणा के स्वर में कहा—तो तुम्हारा धर्म जंगली जानवरों और वहशियों का है, जो लड़ाई के बुनियादी असूलों की भी परवाह नहीं करता। स्त्री हर एक धर्म में निर्दोष समझी गयी है। यहाँ तक कि वहशी भी उसका आदर करते हैं।

‘मैं वापसी के समय हरगिज़ न छोड़ूँगा।’

‘मेरे जीते-जी तुम स्त्री पर हाथ नहीं उठा सकते।’

‘मैं इस मामले में तुम्हारी पाबन्दियों का गुलाम नहीं हो सकता।’

माँ ने कुछ जवाब न दिया। इस नामदों जैसी बात से उसकी ममता टुकड़े-टुकड़े हो गयी। मुश्किल से बीस मिनट बीते होंगे कि वही मोटर दूसरी तरफ से आती दिखायी पड़ी। धर्मवीर ने मोटर को शौर से देखा और उछलकर बोला — लो अम्माँ, अबकी बार साहब अकेला है। तुम भी मेरे साथ निशाना लगाना।

माँ ने लपककर धर्मवीर का हाथ पकड़ लिया और पागलों की तरह जोर लगाकर उसका रिवाल्वर छीनने लगी। धर्मवीर ने उसको धक्का देकर गिरा

दिया और एक कदम हटकर रिवाल्वर साधा। एक सेकेण्ड में माँ उठी। उसी वक़्त गोली चली। मोटर आगे निकल गयी, मगर माँ जमीन पर पड़ी तड़प रही थी।

धर्मवीर रिवाल्वर फेंककर माँ के पास गया और घबराकर बोला — अम्माँ, क्या हुआ ? फिर यकायक इस शोकभरी घटना की प्रतीति उसके अन्दर चमक उठी — वह अपनी प्यारी माँ का कातिल है ! उसके स्वभाव की सारी कठोरता और तेजी और गर्मी बुझ गयी। आँसुओं की बढती हुई थरथरी को अनुभव करता हुआ वह नीचे झुका, और माँ के चेहरे की तरफ़ आँसुओं में लिपटी हुई शर्मिन्दगी से देखकर बोला — यह क्या हो गया, अम्माँ ! हाय, तुम कुछ बोलती क्यों नहीं ! यह कैसे हो गया। अँधेरे में कुछ नजर भी तो नहीं आता। कहाँ गोली लगी, कुछ तो बताओ। आह ! इस बदनसीब के हाथों तुम्हारी मौत लिखी थी। जिसको तुमने गोद में पाला उसी ने तुम्हारा खून किया। किसको बुलाऊँ, कोई नजर भी तो नहीं आता !

माँ ने डूबती हुई आवाज़ में कहा — मेरा जन्म सुफल हो गया बेटा। तुम्हारे हाथों मेरी मिट्टी उठेगी। तुम्हारी गोद में मर रही हूँ। छाती में घाव लगा है। ज्योंही तुमने गोली चलायी, मैं तुम्हारे सामने खड़ी हो गयी। अब नहीं बोला जाता, परमात्मा तुम्हें खुश रखे। मेरी यह दुआ है। मैं और क्या करती बेटा। माँ की आबरू तुम्हारे हाथ में है। मैं तो चली !

क्षण भर बाद उस अँधेरे सन्नाटे में धर्मवीर अपनी प्यारी माँ के नीमजान शरीर को गोद में लिये घर चला तो उसके ठंडे तलुओं से अपनी आँसू-भरी आँखें रगड़कर आत्मिक आह्लाद से भरी हुई दर्द की टीस अनुभव कर रहा था।

—‘आखिरी तोहफा’ से

बोहनी

उस दिन जब मेरे मकान के सामने सड़क की दूसरी तरफ एक पान की दुकान खुली तो मैं बाग-बाग हो उठा। इधर एक फर्लांग तक पान की कोई दुकान नहीं थी और मुझे सड़क के मोड़ तक कई चक्कर करने पड़ते थे। कभी वहाँ कई-कई मिनट तक दुकान के सामने खड़ा रहना पड़ता था। चौराहा है, गाहको की हरदम भीड़ रहती है। यह इन्तजार मुझको बहुत बुरा लगता था। पान की लत मुझे कब पड़ी और कैसे पड़ी, यह तो अब याद नहीं आता लेकिन अगर कोई बना-बनाकर गिलौरियाँ देता जाय तो शायद मैं कभी इनकार न करूँ। आमदनी का बड़ा हिस्सा नहीं तो छोटा हिस्सा जरूर पान की भेंट चढ़ जाता है। कई बार इरादा किया कि एक पानदान खरीद लूँ लेकिन पानदान खरीदना कोई खाला जी का घर नहीं है और फिर मेरे लिए तो हाथी खरीदने से किसी तरह कम नहीं। और मान लो जान पर खेलकर एक बार खरीद भी लूँ तो पानदान कोई परी की थैली तो नहीं कि इधर इच्छा हुई और गिलौरियाँ निकल पड़ी। बाजार से पान लाना, दिन में पाँच बार फेरना, पानी से तर करना, सड़े हुए टुकड़ों को तराशकर अलग करना क्या कोई आसान काम है। मैंने बड़े घरों की औरतों को हमेशा पानदान की देखभाल और प्रबन्ध में ही व्यस्त पाया है। इतना सरदर्द उठाने की क्षमता होती तो आज मैं भी आदमी होता। और अगर किसी तरह यह मुश्किल भी हल हो जाय तो सुपाड़ी कौन काटे? यहाँ तो सरौते की सूरत देखते ही कँपकँपी छूटने लगती है। जब कभी ऐसी ही कोई जरूरत आ पड़ी, जिसे टाला नहीं जा सकता, तो सिल पर बट्टे से तोड़ लिया करता हूँ लेकिन सरौते से काम लूँ यह गैर-मुमकिन। मुझे तो किसी को सुपाड़ी काटते देखकर उतना ही आश्चर्य होता है जितना किसी को तलवार की धार पर नाचते देखकर। और मान लो यह मामला भी किसी तरह हल हो जाय, तो आखिरी मजिल कौन फ़तह करे। कत्था और चूना बराबर लगाना क्या कोई आसान काम है? कम से कम मुझे तो उसका ढग नहीं आता। जब इस मामले में वे लोग रोज़ गलतियाँ करते हैं जो इस कला में दक्ष

है तो मैं भला किस खेत की मूली हूँ। तमोली ने अगर चूना ज्यादा कर दिया तो कत्था और ले लिया, उस पर उसे एक डाँट भी बतायी, आँसू पूँछ गये। मुसीबत का सामना तो उस वक़्त होता है, जब किसी दोस्त के घर जाय। पान अन्दर से आया तो इसके सिवाय कि जान-बूझकर मक्खी निगले, समझ-बूझकर जहर का घूँट गले के नीचे उतारे और चारा ही क्या है। शिकायत नहीं कर सकते, सम्यता बाधक होती है। कभी-कभी पान मुँह में डालते ही ऐसा मालूम होता है, कि जीभ पर कोई चिनगारी पड़ गयी, गले से लेकर छाती तक किसी ने पारा गरम करके उड़ेल दिया, मगर घुटकर रह जाना पड़ता है। अन्दाज़े में इस हृद तक ग़लती हो जाय यह तो समझ में आनेवाली बात नहीं। मैं लाख अनाड़ी हूँ लेकिन कभी इतना ज्यादा चूना नहीं डालता, हाँ दो-चार छाले पड़ जाते हैं। मैं तो समझता हूँ, यही अन्तःपुर के कोप की अभिव्यक्ति है। आखिर वह आपकी ज्यादातियों का प्रोटेस्ट क्योंकर करे। खामोश बायकाट से आप राज़ी नहीं होते, दूसरा कोई हथियार उनके हाथ में है नहीं। भवों की कमान और बरौनियों का नेजा और मुस्कराहट का तीर उस वक़्त बिलकुल कोई असर नहीं करते। जब आप आँखें लाल किये, आस्तीने समेटे इसलिए आसमान सर पर उठा लेते हैं कि नास्ता और पहले क्यों नहीं तैयार हुआ, तब सालन में नमक और पान में चूना ज्यादा कर देने के सिवाय बदला लेने का उनके हाथ में और क्या साधन रह जाता है।

ख़ैर, तीन-चार दिन के बाद एक दिन मैं सुबह के वक़्त तम्बोलिन की दुकान पर गया तो उसने मेरी फ़रमाइश पूरी करने में ज्यादा मुस्तैदी न दिखलाई। एक मिनट तक तो पान फेरती रही, फिर अन्दर चली गयी और कोई मसाला लिये हुए निकली। मैं दिल में खुश हुआ कि आज बड़े विधिपूर्वक गिलौरियाँ बना रही है। मगर अब भी वह सड़क की ओर प्रतीक्षा की आँखों से ताक रही थी कि जैसे दुकान के सामने कोई ग्राहक ही नहीं और ग्राहक भी कैसा, जो उसका पड़ोसी है और दिन में बीसियों ही बार आता है! तब तो मैंने ज़रा झुंझलाकर कहा — मैं कितनी देर से खड़ा हूँ, कुछ इसकी भी खबर है?

तम्बोलिन ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा — हाँ बाबू जी, आपको देर तो बहुत हुई लेकिन एक मिनट और ठहर जाइए। बुरा न मानिएगा बाबू जी, आपके हाथ की बोहनी अच्छी नहीं है। कल आपकी बोहनी हुई थी, दिन में कुल छः आने की बिक्री हुई। परसों भी आप ही की बोहनी थी, आठ आने के

पैसे दुकान में आये थे। इसके पहले दो दिन पंडितजी की बोहनी हुई थी, दोपहर तक ढाई रुपये आ गये थे। कभी किसी का हाथ अच्छा नहीं होता बाबू जी!

मुझे गोली-सी लगी। मुझे अपने भाग्यशाली होने का कोई दावा नहीं है, मुझसे ज्यादा अभागें दुनिया में कम होंगे। इस साम्राज्य का अगर मैं बादशाह नहीं, तो कोई ऊँचा मसबदार जरूर हूँ। लेकिन यह मैं कभी गवारा नहीं कर सकता कि नहूसत का दाग बर्दाश्त कर लूँ। कोई मुझसे बोहनी न कराये, लोग सुबह को मेरा मुँह देखना अपशकुन समझे, यह तो घोर कलक की बात है।

मैंने पान तो ले लिया लेकिन दिल में पक्का इरादा कर लिया कि इस नहूसत के दाग को मिटाकर ही छोड़ूँगा। अभी अपने कमरे में आकर बैठ आ ही था कि मेरे एक दोस्त आ गये। बाज़ार साग-भाजी लेने जा रहे थे। मैंने उनसे अपनी तम्बोलिन की खूब तारीफ की। वह महाशय ज़रा सौन्दर्य-प्रेमी थे और मज़ाकिया भी। मेरी ओर शरारत-भरी नजरों से देखकर बोले — इस वक्त तो भाई, मेरे पास पैसे नहीं हैं और न अभी पानों की ज़रूरत ही है। मैंने कहा — पैसे मुझसे ले लो।

‘हाँ यह मज़ूर है, मगर कभी तकाजा मत करना।’

‘यह तो टेढ़ी खीर है।’

‘तो क्या मुफ्त में किसी की आँख में चढना चाहते हो?’

मजबूर होकर उन हज़रत को एक ढोली पान के दाम दिये। इसी तरह जो मुझसे मिलने आया, उससे मैंने अपनी तम्बोलिन का बखान किया। दोस्तों ने मेरी खूब हँसी उड़ायी, मुझ पर खूब फबतियाँ कसीं, मुझे ‘छिपे रुस्तम’ ‘भगत जी’ और न जाने क्या-क्या नाम दिये गये लेकिन मैंने सारी आफतें हँसकर टाली। यह दाग मिटाने की मुझे धुन सवार हो गयी।

दूसरे दिन जब मैं तम्बोलिन की दुकान पर गया तो उसने फ़ौरन पान बनाये और मुझे देती हुई बोली — बाबू जी, कल तो आपकी बोहनी बहुत अच्छी हुई, कोई साढ़े तीन रुपये आये। अब रोज बोहनी करा दिया करो।

२

तीन चार दिन लगातार मैंने दोस्तों से सिफारिशें की, तम्बोलिन की स्तुति गायी और अपनी गिरह से पैसे खर्च करके सुखरूई हासिल की। लेकिन इतने ही दिनों में मेरे खजाने में इतनी कमी हो गयी कि खटकने लगी। यह स्वाँग अब ज्यादा दिनों तक न चल सकता था, इसलिए मैंने इरादा किया कि कुछ दिनों उसकी

दुकान से पान लेना छोड़ दूँ। जब मेरी बोहनी ही न होगी, तो मुझे उसकी बिक्री की क्या फिक्र होगी? दूसरे दिन हाथ-मुँह धोकर मैंने एक इलायची खा ली और अपने काम में लग गया। लेकिन मुश्किल से आध घण्टा बीता होगा, कि किसी की आहट मिली। आँख ऊपर को उठाता हूँ तो तम्बोलिन गिलौरियाँ लिये सामने खड़ी मुस्करा रही है। मुझे इस वक्त उसका आना जी पर बहुत भारी गुजरा लेकिन इतनी बेमुरौवती भी तो न हो सकती थी कि द्रुतकार दूँ। बोला — तुमने नाहक तकलीफ की, मैं तो आ ही रहा था।

तम्बोलिन ने मेरे हाथ मे गिलौरियाँ रखकर कहा — आपको देर हुई तो मैंने कहा मैं ही चलकर बोहनी कर आऊँ। दुकान पर गाहक खड़े हैं, मगर किसी की बोहनी नहीं की।

क्या करता, गिलौरियाँ खायी और बोहनी करायी। जिस चिन्ता से मुक्ति पाना चाहता था, वह फिर फन्दे की तरह गर्दन पर चिमटी हुई थी। मैंने सोचा था, मेरे दोस्त दो-चार दिन तक उसके यहाँ पान खायेगे तो आप ही उससे हिल जायेगे और मेरी सिफ़ारिश की जरूरत न रहेगी। मगर तम्बोलिन शायद पान के साथ अपने रूप का भी कुछ मोल करती थी इसलिए एक बार जो उसकी दुकान पर गया, दुबारा न गया। दो-एक रसिक नौजवान अभी तक आते थे, वह लोग एक ही हँसी में पान और रूप-दर्शन दोनों का आनन्द उठाकर चलते बने थे। आज मुझे अपनी साख बनाये रखने के लिए फिर पूरे डेढ़ रुपये खर्च करने पड़े, बधिया बूँठ गयी।

दूसरे दिन मैंने दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया, मगर जब तम्बोलिन ने नीचे से चीखना, चिल्लाना और खटखटाना शुरू किया तो मजबूरन दरवाजा खोलना पड़ा। आँखे मलता हुआ नीचे गया, जिससे मालूम हो कि आज नींद आ गयी थी। फिर बोहनी करानी पड़ी। और फिर वही बला सर पर सवार हुई। शाम तक दो रुपये का सफाया हो गया। आखिर इस विपत्ति से छुटकारा पाने का यही एक उपाय रह गया कि वह घर छोड़ दूँ।

मैंने वहाँ से दो मील पर एक अनजान मुहल्ले में एक मकान ठीक किया और रातों-रात असबाब उठवाकर वहाँ जा पहुँचा। वह घर छोड़कर मैं जितना खुश हुआ शायद कैंदी जेलखाने से भी निकलकर उतना खुश न होता होगा। रात को

खूब गहरी नींद सोया, सबेरा हुआ तो मुझे उस पंछी की आज़ादी का अनुभव हो रहा था जिसके पर खुल गये हैं। बड़े इत्मीनान से सिगरेट पिया, मुंह-हाथ धोया, फिर अपना सामान ढग से रखने लगा। खाने के लिए किसी होटल की भी फिक्र थी, मगर उस हिम्मत तोड़नेवाली बला पर फ़तेह पाकर मुझे जो खुशी हो रही थी, उसके मुकाबले मे इन चिन्ताओं की कोई गिनती न थी। मुंह-हाथ धोकर नीचे उतरा। आज की हवा में भी आज़ादी का नशा था। हर एक चीज मुस्कराती हुई मालूम होती थी। खुश-खुश एक दुकान पर जाकर पान खाये और जीने पर चढ़ ही रहा था कि देखा वह तम्बोलिन लपकी चली आ रही है। कुछ न पूछो, उस वक्त दिल पर क्या गुज़री। बस यही जी चाहता था कि अपना और उसका दोनों का सिर फोड़ लूं। मुझे देखकर वह ऐसी खुश हुई जैसे कोई धोबी अपना खोया हुआ गधा पा गया हो। और मेरी घबराहट का अन्दाज़ा बस उस गधे की दिमागी हालत से कर लो ! उसने दूर ही से कहा — वाह बाबू जी, वाह, आप ऐसा भागे कि किसी को पता भी न लगा। उसी मुहल्ले में एक से एक अच्छे घर खाली हैं। मुझे क्या मालूम था कि आपको उस घर में तकलीफ़ थी। नहीं तो मेरे पिछवाड़े ही एक बड़े आराम का मकान था। अब मैं आपको यहाँ न रहने दूंगी। जिस तरह हों सकेगा, आपको उठा ले जाऊँगी। आप इस घर का क्या किराया देते हैं ?

मैंने रोनी सूरत बना कर कहा — दस रुपये।

मैंने सोचा था कि किराया इतना कम बताऊँ जिसमें यह दलील उसके हाथ से निकल जाय। इस घर का किराया बीस रुपये हैं, दस रुपये में तो शायद मरने को भी जगह न मिलेगी। मगर तम्बोलिन पर इस चकमे का कोई असर न हुआ। बोली — इस ज़रा-से घर के दस रुपये ! आप आठ ही दीजियेगा और घर इससे अच्छा न हो तो जब भी जी चाहे छोड़ दीजिएगा। चलिए, मैं उस घर की कुजी लेती आयी हूँ। इसी वक्त आपको दिखा दूँ।

मैंने थोरी चढ़ाते हुए कहा — आज ही तो इस घर में आया हूँ, आज ही छोड़ कैसे सकता हूँ। पेशगी किराया दे चुका हूँ।

तम्बोलिन ने बड़ी लुभावनी मुस्कराहट के साथ कहा — दस ही रुपये तो दिये हैं, आपके लिए दस रुपये कौन बड़ी बात है। यही समझ लीजिए कि आप न चले तो मैं उजड़ जाऊँगी। ऐसी अच्छी बोहनी वहाँ और किसी की नहीं है। आप नहीं चलेंगे तो मैं ही अपनी दुकान यहाँ उठा लाऊँगी।

मेरा दिल बैठ गया। यह अच्छी मुसीबत गले पड़ी। कहीं सचमुच चुड़ैल

अपनी दुकान न उठा लाये। मेरे जी मे तो आया कि एक फटकार बताऊँ पर ज़बान इतनी बेमुरौवत न हो सकी। बोला—मेरा कुछ ठीक नहीं है, कब तक रहूँ, कब तक न रहूँ। आज ही तबादला हो जाय तो भागना पड़े। तुम न इधर की रहो, न उधर की।

उसने हसरत-भरे लहजे मे कहा — आप चले जायेंगे तो मैं भी चली जाऊँगी। अभी आज तो आप जाते नहीं।

‘मेरा कुछ ठीक नहीं है।’

‘तो मैं रोज यहाँ आकर बोहनी करा लिया करूँगी।’

‘इतनी दूर रोज आओगी?’

‘हाँ चली आऊँगी। दो मील ही तो है। आपके हाथ को बोहनी हो जायगी। यह लीजिए गिलौरियाँ लायी हूँ। बोहनी तो करा दीजिए।’

मैंने गिलौरियाँ ली, पैसे दिये और कुछ गन्ना की-सी हालत मे ऊपर जाकर चारपाई पर लेट गया।

अब मेरी अबल कुछ काम नहीं करती कि इस मुसीबत से क्योकर गला छुड़ाऊँ। तब से इसी फिक्र मे पडा हुआ हूँ। कोई भागने की राह नज़र नहीं आती। सुखरू भी रहना चाहता हूँ, बेमुरौवती भी नहीं करना चाहता और इस मुसीबत से छुटकारा भी पाना चाहता हूँ। अगर कोई साहब मेरी इस करुण स्थिति पर मुझे ऐसा कोई उपाय बतला दें तो जीवन भर उनका कृतज्ञ रहूँगा।

—‘प्रेमचालीसी’ से

बन्द दरवाज़ा

सूरज क्षितिज की गोद से निकला, बच्चा पालने से — वही स्निग्धता, वही लाली, वही खुमार, वही रोशनी।

मैं बरामदे में बैठा था। बच्चे ने दरवाजे से झाँका। मैंने मुस्कराकर पुकारा। वह मेरी गोद में आकर बैठ गया।

उसकी शरारते शुरू हो गयीं। कभी कलम पर हाथ बढ़ाया, कभी कागज़ पर। मैंने गोद से उतार दिया। वह मेज का पाया पकड़े खड़ा रहा। घर में न गया। दरवाजा खुला हुआ था।

एक चिड़िया फुदकती हुई आयी और सामने के सहन में बैठ गयी। बच्चे के लिए मनोरंजन का यह नया सामान था। वह उसकी तरफ लपका। चिड़िया जरा भी न डरी। बच्चे ने समझा अब यह परदार खिलौना हाथ आ गया। बैठकर दोनों हाथों से चिड़िया को बुलाने लगा। चिड़िया उड़ गयी, निराश बच्चा रोने लगा। मगर अन्दर के दरवाजे की तरफ ताका भी नहीं। दरवाजा खुला हुआ था।

गरम हलवे की मीठी पुकार आयी। बच्चे का चेहरा चाव से खिल उठा। खोंचेवाला सामने से गुज़रा। बच्चे ने मेरी तरफ याचना की आँखों से देखा। ज्यों-ज्यों खोंचेवाला दूर होता गया, याचना की आँखें रोष में परिवर्तित होती गयीं। यहाँ तक कि जब मोड़ आ गया और खोंचेवाला आँख से ओझल हो गया तो रोष ने पुरश्चोर फरियाद की सूरत अख़्तियार की। मगर मैं बाज़ार की चीज़े बच्चों को नहीं खाने देता। बच्चे की फ़रियाद ने मुझ पर कोई असर न किया। मैं आगे की बात सोचकर और भी तन गया। कह नहीं सकता बच्चे ने अपनी माँ की अदालत में अपील करने की ज़रूरत समझी या नहीं। आम तौर पर बच्चे ऐसी हालतों में माँ से अपील करते हैं। शायद उसने कुछ देर के लिए अपील मुलतवी कर दी हो। उसने दरवाजे की तरफ रुख न किया। दरवाजा खुला हुआ था।

मैंने आँसू पोछने के खयाल से अपना फाउण्टेनपेन उसके हाथ में रख दिया। बच्चे को जैसे सारे ज़माने की दौलत मिल गयी। उसकी सारी इन्द्रियाँ इस नयी

समस्या को हल करने में लग गयी। एकाएक दरवाजा हवा से खुद-ब-खुद बन्द हो गया। पट की आवाज बच्चे के कानों में आयी। उसने दरवाजे की तरफ देखा। उसकी वह व्यस्तता तत्क्षण लुप्त हो गयी। उसने फाउण्टेनपेन को फेंक दिया और रोता हुआ दरवाजे की तरफ चला क्योंकि दरवाजा बन्द हो गया था।

—‘प्रेमचालीसी’ से

तिरसूल

अँधेरी रात है, मूसलाधार पानी बरस रहा है। खिड़कियों पर पानी के थप्पड़ लग रहे हैं। कमरे की रोशनी खिड़की से बाहर जाती है तो पानी की बड़ी-बड़ी बूँदें तीरों की तरह नोकदार, लम्बी, मोटी, गिरती हुई नज़र आ जाती है। इस वक़्त अगर घर में आग भी लग जाय तो शायद मैं बाहर निकलने की हिम्मत न करूँ। लेकिन एक दिन था जब ऐसी ही अँधेरी भयानक रात के वक़्त मैं मैदान में बन्दूक लिये पहरा दे रहा था। उसे आज तीस साल गुजर गये। उन दिनों मैं फ़ौज में नौकर था। आह! वह फ़ौजी जिन्दगी कितने मजे से गुज़रती थी। मेरी जिन्दगी की सबसे मीठी, सबसे सुहानी यादगारे उसी जमाने से जुड़ी हुई हैं। आज मुझे इस अँधेरी कोठरी में अखबारों के लिए लेख लिखते देखकर कौन समझेगा कि इस नीम-जान, झुकी हुई कमरवाले खस्ताहाल आदमी में भी कभी हौसला और हिम्मत और जोश का दरिया लहरें मारता था। क्या-क्या दोस्त थे जिनके चेहरों पर हमेशा मुस्कराहट नाचती रहती थी। शेरदिल रामसिंह और मीठे गलेवाले देवीदास की याद क्या कभी दिल से मिट सकती है? वह अदन, वह बसरा, वह मिन्न; सब आज मेरे लिए सपने हैं। यथार्थ है तो यह तंग कमरा और अखबार का दफ़्तर।

हाँ, ऐसी ही अँधेरी डरावनी सुनसान रात थी। मैं बारक के सामने बरसाती पहने हुए खडा मँग़ज़ीन का पहरा दे रहा था। कंधे पर भरा हुआ राइफल था। बारक में से दो-चार सिपाहियों के गाने की आवाज़ें आ रही थीं। रह-रहकर जब बिजली चमक जाती थी तो सामने के ऊँचे पहाड़ और दरख़्त और नीचे का हरा-भरा मैदान इस तरह नज़र आ जाते थे जैसे किसी बच्चे की बड़ी-बड़ी काली भोली पुतलियों में खुशी की झलक नज़र आ जाती है।

धीरे-धीरे बारिश ने तूफानी सूरत अख़्तियार की। अधकार और भी अँधेरा, बादल की गरज और भी डरावनी और बिजली की चमक और भी तेज़ हो गयी। मालूम होता था प्रकृति अपनी सारी शक्ति से ज़मीन को तबाह कर देगी।

यकायक मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे सामने से किसी चीज़ की परछाईं-सी निकल गयी। पहले तो मुझे खयाल हुआ कि कोई जगली जानवर होगा लेकिन

बिजली की एक चमक ने यह खयाल दूर कर दिया। वह कोई आदमी था, जो बदन को चुराये पानी में भीगता हुआ एक तरफ़ जा रहा था। मुझे हैरत हुई कि इस मूसला-घार वर्षा में कौन आदमी बारक से निकल सकता है और क्यों? मुझे अब उसके आदमी होने में कोई सन्देह न था। मैंने बन्दूक सम्हाल ली और फौजी कायदे के मुताबिक पुकारा — हाल्ट, हू कम्स देअर? फिर भी कोई जवाब नहीं। कायदे के मुताबिक तीसरी बार ललकारने पर अगर जवाब न मिले तो मुझे बन्दूक दाग देनी चाहिए थी। इसलिए मैंने बन्दूक हाथ में लेकर खूब जोर से कड़ककर कहा — हाल्ट, हू कम्स देअर? जवाब तो अबकी भी न मिला मगर वह परछाईं मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। अब मुझे मालूम हुआ कि वह मर्द नहीं औरत है। इसके पहले कि मैं कोई सवाल करूँ उसने कहा — सन्तरी, खुदा के लिए चुप रहो। मैं हूँ लुईसा।

मेरी हैरत की कोई हद न रही। अब मैंने उसे पहचान लिया। वह हमारे कमाण्डिंग अफसर की बेटी लुईसा ही थी। मगर इस वक़्त इस मूसलाघार में और इस घटाटोप अँधेरे में वह कहाँ जा रही है? बारक में एक हजार जवान मौजूद थे जो उसका हुकम पूरा कर सकते थे। फिर वह नाजुकबदन औरत इस वक़्त क्यों निकली और कहाँ के लिए निकली? मैंने आदेश के स्वर में पूछा — तुम इस वक़्त कहाँ जा रही हो?

लुईसा ने विनती के स्वर में कहा — माफ़ करो सन्तरी, यह मैं नहीं बता सकती और तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि यह बात किसी से न कहना। मैं हमेशा तुम्हारी एहसानमन्द रहूँगी।

यह कहते-कहते उसकी आवाज़ इस तरह कांपने लगी जैसे किसी पानी से भरे हुए बर्तन की आवाज़।

मैंने उसी सिपाहियाना अन्दाज़ से कहा — यह कैसे हो सकता है। मैं फौज का एक अदना सिपाही हूँ। मुझे इतना अख़्तियार नहीं। मैं कायदे के मुताबिक़ आपको अपने साज़ेण्ट के सामने ले जाने के लिए मजबूर हूँ।

‘लेकिन क्या तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारे कमाण्डिंग अफसर की लडकी हूँ?’

मैंने ज़रा हँसकर जवाब दिया — अगर मैं इस वक़्त कमाण्डिंग अफसर साहब को भी ऐसी हालत में देखूँ तो उनके साथ भी मुझे यही सख़्ती करनी पड़ेगी। कायदा सबके लिए एकसाँ है और एक सिपाही को किसी हालत में उसे तोड़ने का अख़्तियार नहीं है।

यह निर्दय उत्तर पाकर उसने करुण स्वर में पूछा — तो फिर क्या तदबीर है ? मुझे उस पर रहम तो आ रहा था लेकिन कायदों की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। मुझे नतीजे का जरा भी डर न था। कोर्ट-मार्शल या तनज्जुली या और कोई सजा मेरे ध्यान में न थी। मेरा अन्तःकरण भी साफ था। लेकिन कायदे को कैसे तोड़ूँ। इसी हैस-बैस में खड़ा था कि लुईसा ने एक कदम बढ़कर मेरा हाथ पकड़ लिया और निहायत पुरदद बेचैनी के लहजे में बोली — तो फिर मैं क्या करूँ ?

ऐसा मालूम हो रहा था कि जैसे उसका दिल पिघला जा रहा हो। मैं महसूस कर रहा था कि उसका हाथ काँप रहा है। एक बार जी में आया जाने दूँ। प्रेमी के सदेश या अपने वचन की रक्षा के सिवा और कौन-सी शक्ति इस हालत में उसे घर से निकलने पर मजबूर करती ? फिर मैं क्यों किसी की मुहब्बत की राह का काँटा बनूँ। लेकिन कायदे ने फिर जबान पकड़ ली। मैंने अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश न करके मुँह फेरकर कहा — और कोई तदबीर नहीं है।

मेरा जवाब सुनकर उसकी पकड़ ढीली पड़ गयी कि जैसे शरीर में जान न हो पर उसने अपना हाथ हटाया नहीं, मेरे हाथ को पकड़े हुए गिड़गिड़ाकर बोली — सन्तरी, मुझ पर रहम करो। खुदा के लिए मुझ पर रहम करो। मेरी इज्जत खाक में मत मिलाओ। मैं बड़ी बदनसीब हूँ।

मेरे हाथ पर आँसुओं के कई गरम कतरे टपक पड़े। मूसलाधार बारिश का मुझ पर ज़रा भर भी असर न हुआ था लेकिन इन चन्द बूंदों ने मुझे सर से पाँव तक हिला दिया।

मैं बड़े पसोपेश में पड़ गया। एक तरफ़ कायदे और फ़र्ज की आहूनी दीवार थी, दूसरी तरफ़ एक सुकुमार युवती का बिनती भरा आग्रह। मैं जानता था अगर उसे सार्जेंट के सिपुर्द कर दूँगा तो सबेरा होते ही सारे बटालियन में खबर फैल जायगी, कोर्ट-मार्शल होगा, कमाण्डिंग अफसर की लड़की पर भी फ़ौज का लौह कानून कोई रियायत न कर सकेगा। उसके बेरहम हाथ उस पर भी बेदरदी से उठेंगे। खासकर लड़ाई के जमाने में।

और अगर इसे छोड़ दूँ तो इतनी ही बेदरदी से कानून मेरे साथ पेश आयेगा। जिन्दगी खाक में मिल जायगी। कौन जाने कल जिन्दा भी रहूँ या नहीं। कम से कम तनज्जुली तो होगी ही। भेद छिपा भी रहे तो क्या मेरी अन्तरात्मा मुझे सदा न धिक्कारेगी ? क्या मैं फिर किसी के सामने इसी दिलेर ढग से ताक सकूँगा ? क्या मेरे दिल में हमेशा एक चोर-सा न समाया रहेगा ?

लुईसा बोल उठी — सन्तरी !

विनती का एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला। वह अब निराशा की उस सीमा पर पहुँच चुकी थी जब आदमी की वाक्शक्ति अकेले शब्दों तक सीमित हो जाती है। मैंने सहानुभूति के स्वर में कहा — बड़ा मुश्किल मामला है।

‘सन्तरी, मेरी इज्जत बचा लो। मेरे सामर्थ्य में जो कुछ है वह तुम्हारे लिए करने को तैयार हूँ।’

मैंने स्वाभिमानपूर्वक कहा — मिस लुईसा, मुझे लालच न दीजिए, मैं लालची नहीं हूँ। मैं सिर्फ इसलिए मजबूर हूँ कि फ़ौजी कानून को तोड़ना एक सिपाही के लिए दुनिया में सबसे बड़ा जुर्म है।

‘क्या एक लडकी के सम्मान की रक्षा करना नैतिक कानून नहीं है? क्या फ़ौजी कानून नैतिक कानून से भी बड़ा है?’ लुईसा ने ज़रा जोश में भरकर कहा।

इस सवाल का मेरे पास क्या जवाब था। मुझसे कोई जवाब न बन पड़ा। फ़ौजी कानून अस्थायी, परिवर्तनशील होता है, परिवेश के आधीन होता है। नैतिक कानून अटल और सनातन होता है, परिवेश से ऊपर। मैंने कायल होकर कहा — जाओ मिस लुईसा, तुम अब आजाद हो, तुमने मुझे लाजवाब कर दिया। मैं फ़ौजी कानून तोड़कर इस नैतिक कर्तव्य को पूरा करूँगा। मगर तुमसे केवल यही प्रार्थना है कि आगे फिर कभी किसी सिपाही को नैतिक कर्तव्य का उपदेश न देना क्योंकि फ़ौजी कानून में वह भी जुर्म है। फ़ौजी आदमी के लिए दुनिया में सबसे बड़ा कानून फ़ौजी कानून है। फ़ौज किसी नैतिक, आत्मिक या ईश्वरीय कानून की परवाह नहीं करती।

लुईसा ने फिर मेरा हाथ पकड़ लिया और एहसान में डूबे हुए लहजे में बोली — सन्तरी, भगवान तुम्हें इसका फल दे।

मगर फ़ौरन उसे सदेह हुआ कि शायद यह सिपाही आइन्दा किसी मौक़े पर यह भेद न खोल दे इसलिए अपने और भी इत्मीनान के खयाल से उसने कहा — मेरी आबरू अब तुम्हारे हाथ है।

मैंने विश्वास दिलानेवाले ढंग से कहा — मेरी ओर से आप बिलकुल इत्मीनान रखिए।

‘कभी किसी से नहीं कहोगे न?’

‘कभी नहीं।’

‘कभी नहीं?’

‘हाँ, जीते जी कभी नहीं।’

‘अब मुझे इत्मीनान हो गया, सन्तरी। लुईसा तुम्हारी इस नेकी और एहसान को मौत की गोद में जाते वक़्त भी न भूलेगी। तुम जहाँ रहोगे तुम्हारी यह बहन तुम्हारे लिए भगवान से प्रार्थना करती रहेगी। जिस वक़्त तुम्हें कभी जरूरत हो, मेरी याद करना। लुईसा दुनिया के उस पद पर होगी तब भी तुम्हारी खिदमत के लिए हाजिर होगी। वह आज से तुम्हें अपना भाई समझती है। सिपाही की जिन्दगी में ऐसे मौके आते हैं, जब उसे एक खिदमत करनेवाली बहन की जरूरत होती है। भगवान न करे तुम्हारी जिन्दगी में ऐसे मौके आये लेकिन अगर आयें तो लुईसा अपना फ़र्ज अदा करने में कभी पीछे न रहेगी। क्या मैं अपने नेकमिजाज भाई का नाम पूछ सकती हूँ?’

बिजली एक बार चमक उठी। मैंने देखा लुईसा की आँखों में आँसू भरे हुए हैं। बोला — लुईसा, इन हौसला बढ़ानेवाली बातों के लिए मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ। लेकिन मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह नैतिकता और हमदर्दी के नाते कर रहा हूँ। किसी इनाम की मुझे इच्छा नहीं है। मेरा नाम पूछकर क्या करोगी ?

लुईसा ने शिकायत के स्वर में कहा — क्या बहन के लिए भाई का नाम पूछना भी फौजी कानून के खिलाफ है ?

इन शब्दों में कुछ ऐसी सच्चाई, कुछ ऐसा प्रेम, कुछ ऐसा अपनापन भरा हुआ था, कि मेरी आँखों में बरबस आँसू भर आये।

बोला — नहीं लुईसा, मैं सिर्फ़ यही चाहता हूँ कि इस भाई-जैसे सलूक में स्वार्थ की छाया भी न रहने पाये। मेरा नाम श्रीनाथ सिंह है।

लुईसा ने कृतज्ञता व्यक्त करने के तौर पर मेरा हाथ धीरे से दबाया और थैंक्स कहकर चली गयी। अँधेरे के कारण बिलकुल नजर न आया कि वह कहाँ गयी और न पूछना ही उचित था। मैं वही खडा-खड़ा इस अचानक मुलाकात के पहलुओं को सोचता रहा। कमाण्डिंग अफ़सर की बेटी क्या एक मामूली सिपाही को, और वह भी जो काला आदमी हो, कुत्ते से बदतर नहीं समझती ? मगर वही औरत आज मेरे साथ भाई का रिश्ता कायम करके फूली नहीं समाती थी।

२

इसके बाद कई साल बीत गये। दुनिया में कितनी ही क्रान्तियाँ हो गयीं। रूस की ज़ारशाही मिट गयी, जर्मनी का कैसर दुनिया के स्टेज से हमेशा के लिए

बिदा हो गया, प्रजातन्त्र को एक शताब्दी में जितनी उन्नति न हुई थी, उतनी इन थोड़े से सालों में हो गयी। मेरे जीवन में भी कितने ही परिवर्तन हुए। एक टॉग युद्ध के देवता की भेंट हो गयी, मामूली सिपाही से लेफ़्टिनेण्ट हो गया।

एक दिन फिर ऐसी ही चमक और गरज की रात थी। मैं क्वार्टर में बैठा हुआ कप्तान नाक्स और लेफ़्टिनेण्ट डाक्टर चन्द्रसिंह से इसी घटना की चर्चा कर रहा था जो दस-बारह साल पहले हुई थी, सिर्फ़ लुईसा का नाम छिपा रखा था। कप्तान नाक्स को इस चर्चा में असाधारण आनन्द आ रहा था। वह बार-बार एक-एक बात पूछता और घटना का क्रम मिलाने के लिए दुबारा पूछता था। जब मैंने आखिर में कहा कि उस दिन भी ऐसी ही अँधेरी रात थी, ऐसी मूसलाघार बारिश हो रही थी और यही वक्त था तो नाक्स अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया और बहुत उद्विग्न होकर बोला — क्या उस औरत का नाम लुईसा तो नहीं था ?

मैंने आश्चर्य से कहा, 'आपको उसका नाम कैसे मालूम हुआ ? मैंने तो नहीं बतलाया,' पर नाक्स की आँखों में आँसू भर आये। सिसकियाँ लेकर बोले — यह सब आपको अभी मालूम हो जायगा। पहले यह बतलाइए कि आपका नाम श्रीनाथ सिंह है या चौधरी ?

मैंने कहा — मेरा पूरा नाम श्रीनाथ सिंह चौधरी है। अब लोग मुझे सिर्फ़ चौधरी कहते हैं। लेकिन उस वक्त चौधरी के नाम से मुझे कोई न जानता था। लोग श्रीनाथ कहते थे।

कप्तान नाक्स अपनी कुर्सी खींचकर मेरे पास आ गये और बोले — तब तो आप मेरे पुराने दोस्त निकले। मुझे अब तक नाम के बदल जाने से धोखा हो रहा था, वना आपका नाम तो मुझे खूब याद है। हाँ, ऐसा याद है कि शायद मरते दम तक भी न भूलूँ क्योंकि यह उसकी आखिरी वसीयत है।

यह कहते-कहते नाक्स खामोश हो गये और आँखें बन्द करके सर मेज़ पर रख लिया। मेरा आश्चर्य हर क्षण बढ़ता जा रहा था और लेफ़्टिनेण्ट डा० चन्द्रसिंह भी सवाल-भरी नज़रों से एक बार मेरी तरफ़ और दूसरी बार कप्तान नाक्स के चेहरे की तरफ़ देख रहे थे।

दो मिनट तक खामोश रहने के बाद कप्तान नाक्स ने सर उठाया और एक लम्बी साँस लेकर बोले — क्यों लेफ़्टिनेण्ट चौधरी, तुम्हें याद है एक बार एक अंग्रेज़ सिपाही ने तुम्हें बुरी गाली दी थी ?

मैंने कहा—हाँ, खूब याद है। वह कारपोरल था, मैंने उसकी शिकायत कर दी थी और उसका कोर्टमार्शल हुआ था। वह कारपोरल के पद से गिरा कर मामूली सिपाही बना दिया गया था। हाँ, उसका नाम भी याद आ गया क्रिप या क्रूप . . .

कप्तान नाक्स ने बात काटते हुए कहा — किरपिन। उसकी और मेरी सूरत मे आपको कुछ मेल दिखायी पड़ता है? मैं ही वह किरपिन हूँ। मेरा नाम सी० नाक्स है, किरपिन नाक्स। जिस तरह उन दिनों आपको लोग श्रीनाथ कहते थे उसी तरह मुझे भी किरपिन कहा करते थे।

अब जो मैंने शीर से नाक्स की तरफ देखा तो पहचान गया। बेशक वह किरपिन ही था। मैं आश्चर्य से उसकी ओर ताकने लगा। लुईसा से उसका क्या सम्बन्ध हो सकता है, यह मेरी समझ में उस वक्त भी न आया।

कप्तान नाक्स बोले — आज मुझे सारी कहानी कहनी पड़ेगी। लेफ़्टिनेण्ट चौधरी, तुम्हारी वजह से जब मैं कारपोरल से मामूली सिपाही बनाया गया और जिल्लत भी कुछ कम न हुई तो मेरे दिल में ईर्ष्या और प्रतिशोध की लपटे-सी उठने लगी। मैं हमेशा इसी फ़िक्र में रहता था कि किस तरह तुम्हें जलील करूँ, किस तरह अपनी जिल्लत का बदला लूँ। मैं तुम्हारी एक-एक हरकत को, एक-एक बात को ऐब ढूँढनेवाली नजरों से देखा करता था। इन दस-बारह सालों में तुम्हारी सूरत बहुत कुछ बदल गयी है और मेरी निगाहों में भी कुछ फ़र्क आ गया है जिसके कारण मैं तुम्हें पहचान न सका लेकिन उस वक्त तुम्हारी सूरत हमेशा मेरी आँखों के सामने रहती थी। उस वक्त मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी तमन्ना यही थी कि किसी तरह तुम्हें भी नीचे गिराऊँ। अगर मुझे मौका मिलता तो शायद मैं तुम्हारी जान लेने से भी बाज न आता।

कप्तान नाक्स फिर खामोश हो गये। मैं और डाक्टर चन्द्रसिंह टकटकी लगाये कप्तान नाक्स की तरफ़ देख रहे थे।

नाक्स ने फिर अपनी दास्तान शुरू की — उस दिन, रात को जब लुईसा तुमसे बातें कर रही थी, मैं अपने कमरे में बैठा हुआ तुम्हें दूर से देख रहा था। मुझे उस वक्त क्या मालूम था कि वह लुईसा है। मैं सिर्फ़ यह देख रहा था कि तुम पहरा देते वक्त किसी औरत का हाथ पकड़े उससे बातें कर रहे हो। उस वक्त मुझे जितनी पाजीपन से भरी हुई खुशी हुई वह बयान नहीं कर सकता। मैंने सोचा, अब इसे जलील करूँगा। बहुत दिनों के बाद बचा फँसे है। अब किसी तरह न छोड़ूँगा। यह फ़ैसला करके मैं कमरे से निकला और पानी में भीगता हुआ तुम्हारी तरफ़ चला।

लेकिन जब तक मैं तुम्हारे पास पहुँचूँ लुईसा चली गयी थी। मजबूर होकर मैं अपने कमरे में लौट आया। लेकिन फिर भी मैं निराशा न था, मैं जानता था कि तुम झूठ न बोलोगे और जब मैं कर्माण्डिग अफसर से तुम्हारी शिकायत करूँगा तो तुम अपना कसूर मान लोगे। मेरे दिल की आग बुझाने के लिए इतना इतमीनान काफी था। मेरी आरजू पूरी होने में अब कोई सदेह न था।

मैंने मुस्कराकर कहा — लेकिन आपने मेरी शिकायत तो नहीं की? क्या बाद को रहम आ गया?

नाक्स ने जवाब दिया — नहीं जी, रहम किस मरदूद को आता था। शिकायत न करने का दूसरा ही कारण था। सबेरा होते ही मैंने सबसे पहला काम यही किया कि सीधे कर्माण्डिग अफसर के पास पहुँचा। तुम्हें याद होगा मैं उनके बड़े बेटे राजर्स को घुड़सवारी सिखाया करता था इसलिए वहाँ जाने में किसी किस्म की झिझक या रुकावट न हुई। जब मैं पहुँचा तो राजर्स और लुईसा दोनों चाय पी रहे थे। आज इतने सबेरे मुझे देखकर राजर्स ने कहा—आज इतनी जल्दी क्यों किरपिन? अभी तो वक्त नहीं हुआ? आज बहुत खुश नजर आ रहे हो?

मैंने कुर्सी पर बैठते हुए कहा — आज का दिन मेरी खिन्दगी में मुबारक है। आज मुझे अपने पुराने दुश्मन को सजा देने का मौक़ा हाथ आया है। आपको मालूम है न एक राजपूत सिपाही ने कर्माण्डिग अफसर से शिकायत करके मेरी तनज़ुली करा दी थी।

राजर्स ने कहा — हाँ-हाँ, मालूम क्यों नहीं है। मगर तुमने उसे गाली दी थी।

मैंने किसी क्रदर झेपते हुए कहा — मैंने गाली नहीं दी थी, सिर्फ़ बल्लडी कहा था। सिपाहियों में इस तरह की बदज़बानी एक आम बात है मगर उस राजपूत ने मेरी शिकायत कर दी। आज मैंने उसे एक सगीन जुर्म में पकड़ पाया है। खुदा ने चाहा तो कल उसका भी कोर्ट-मार्शल होगा। मैंने आज रात को उसे एक औरत से बाते करते देखा है। बिलकुल उस दक़्त जब वह ड्यूटी पर था। वह इस बात से इनकार नहीं कर सकता। इतना कमीना नहीं है।

लुईसा के चेहरे का रंग कुछ का कुछ हो गया। अजीब पागलपन से मेरी तरफ़ देखकर बोली — तुमने और क्या देखा?

मैंने कहा — जितना मैंने देखा है उतना उस राजपूत को जलील करने के लिए काफी है। ज़रूर उससे किसी से आशनाई है और वह औरत हिन्दोस्तानी नहीं,

कोई योरोपियन लेडी है। मैं क्रसम खा सकता हूँ, दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े बिलकुल उसी तरह बातें कर रहे थे, जैसे प्रेमी-प्रेमिका किया करते हैं।

लुईसा के चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगी। चौधरी, मैं कितना कमीना हूँ, इसका अंदाजा तुम खुद कर सकते हो। मैं चाहता हूँ तुम मुझे कमीना कहो। मुझे धिक्कारो। मैं दरिन्दे वहशी से भी ज्यादा बेरहम हूँ, काले साँप से भी ज्यादा जहरीला हूँ। वह खड़ी दीवार की तरफ ताक रही थी कि इसी बीच राजर्से का कोई दोस्त आ गया। वह उसके साथ चला गया। लुईसा मेरे साथ अकेली रह गयी तो उसने मेरी ओर प्रार्थना-भरी आँखों से देखकर कहा — किरपिन, तुम उस राजपूत सिपाही की शिकायत मत करना।

मैंने ताज्जुब से पूछा — क्यों ?

लुईसा ने सर झुकाकर कहा—इसलिए कि जिस औरत को तुमने उसके साथ बातें करते देखा वह मैं ही थी।

मैंने और भी चकित होकर कहा — तो क्या तुम उसे . . .

लुईसा ने बात काटकर कहा — चुप, वह मेरा भाई है। बात यह है मैं कल रात को एक जगह जा रही थी; तुमसे छिपाऊँगी नहीं किरपिन, जिसको मैं दिलोजान से ज्यादा चाहती हूँ, उससे रात को मिलने का वादा था। वह मेरे इन्तजार में पहाड़ के दामन में खड़ा था। अगर मैं न जाती तो उसकी कितनी दिलशिकनी होती। मैं ज्योंही मँगजीन के पास पहुँची, उस राजपूत सिपाही ने मुझे टोक दिया। वह मुझे फ़ौजी कायदे के मुताबिक सार्जेंट के पास ले जाना चाहता था लेकिन मेरे बहुत अनुनय-विनय करने पर वह मेरी लाज रखने के लिए फ़ौजी कानून तोड़ने को तैयार हो गया। सोचो, उसने अपने सिर कितनी बड़ी जिम्मेदारी ली। मैंने उसे अपना भाई कहकर पुकारा है और उसने भी मुझे बहन कहा है। सोचो अगर तुम उसकी शिकायत करोगे तो उसकी क्या हालत होगी ? वह नाम न बतलायेगा, इसका मुझे पूरा विश्वास है। अगर उसके गले पर तलवार भी रख दी जायगी, तो भी वह मेरा नाम न बतायेगा। मैं नहीं चाहती कि एक नेक काम करने का उसे यह इनाम मिले। तुम उसकी शिकायत हरगिज मत करना। तुमसे यही मेरी प्रार्थना है।

मैंने निर्दय कठोरता से कहा — उसने मेरी शिकायत करके मुझे ज़लील किया है। ऐसा अच्छा मौक़ा पाकर मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता। जब तुमको यकीन है कि वह तुम्हारा नाम न बतलायेगा तो फिर उसे जहन्नुम में जाने दो।

लुईसा ने मेरी तरफ धृणापूर्वक देखकर कहा — चुप रहो किरपिन, ऐसी बातें

मुझसे न करो। मैं इसे कभी गवारा न करूँगी कि मेरी इज्जत-आबरू के लिए उसे ज़िल्लत और बदनामी का निशाना बनना पड़े। अगर तुम मेरी न मानोगे तो मैं सच कहती हूँ, मैं खुदकुशी कर लूँगी।

उस वक़्त तो मैं सिर्फ़ प्रतिशोध का प्यासा था। अब मेरे ऊपर वासना का भूत सवार हुआ। मैं बहुत दिनों से दिल में लुईसा की पूजा किया करता था लेकिन अपनी बात कहने का साहस न कर सकता था। अब उसको बस में लाने का मुझे मौका मिला। मैंने सोचा अगर यह उस राजपूत सिपाही के लिए जान देने को तैयार है तो निश्चय ही मेरी बात पर नाराज़ नहीं हो सकती। मैंने उसी निर्दय स्वार्थपरता के साथ कहा — मुझे सख्त अफसोस है मगर अपने शिकार को छोड़ नहीं सकता।

लुईसा ने मेरी तरफ़ बेकस निगाहों से देखकर कहा — यह तुम्हारा आखिरी फैसला है ?

मैंने निर्दय निर्लज्जता से कहा — नहीं लुईसा, यह आखिरी फैसला नहीं है। तुम चाहो तो उसे तोड़ सकती हो, यह बिलकुल तुम्हारे इमकान में है। मैं तुमसे कितनी मुहब्बत करता हूँ, यह आज तक शायद तुम्हें मालूम न हो। मगर इन तीन सालों में तुम एक पल के लिए भी मेरे दिल से दूर नहीं हुई। अगर तुम मेरी तरफ़ से अपने दिल को नर्म कर लो, मेरी मुहब्बत की कद्र करो तो मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। मैं आज एक मामूली सिपाही हूँ और मेरे मुँह से मुहब्बत का निमन्त्रण पाकर शायद तुम दिल में हँसती होगी, लेकिन एक दिन मैं भी कप्तान हो जाऊँगा और तब शायद हमारे बीच इतनी बड़ी खाई न रहेगी।

लुईसा ने रोकर कहा — किरपिन तुम बड़े बेरहम हो, मैं तुमको इतना जालिम न समझती थी। खुदा ने क्यों तुम्हें इतना संगदिल बनाया, क्या तुम्हें एक बेकस औरत पर ज़रा भी रहम नहीं आता !

मैं उसकी बेचारगी पर दिल में खुश होकर बोला — जो खुद सगदिल हो उसे दूसरों की संगदिली की शिकायत करने का क्या हक़ है ?

लुईसा ने गम्भीर स्वर में कहा — मैं बेरहम नहीं हूँ किरपिन, खुदा के लिए इन्साफ़ करो। मेरा दिल दूसरे का हो चुका, मैं उसके बग़ैर जिन्दा नहीं रह सकती और शायद वह भी मेरे बग़ैर जिन्दा न रहे। मैं अपनी बात रखने के लिए, अपने ऊपर नेकी करनेवाले एक आदमी की आबरू बचाने के लिए अपने ऊपर जबर्दस्ती करके अगर तुमसे शादी कर भी लूँ तो नतीजा क्या होगा ? जोर-ज़बर्दस्ती से मुहब्बत नहीं पैदा होती। मैं कभी तुमसे मुहब्बत न करूँगी. . .

दोस्तो, अपनी बेशर्मी और बेहयाई का पर्दा फाश करते हुए मेरे दिल को बड़ी सख्त तकलीफ हो रही है। मुझे उस वक्त वासना ने इतना अधा बना दिया था कि मेरे कानों पर जूँ तक न रेगी। बोला — ऐसा मत खयाल करो लुईसा। मुहब्बत अपना असर जरूर पैदा करती है। तुम इस वक्त मुझे न चाहो लेकिन बहुत दिन न गुजरने पायेगे कि मेरी मुहब्बत रग लायेगी। तुम मुझे स्वार्थी और कमीना समझ रही होगी, समझो। प्रेम स्वार्थी होता ही है, शायद वह कमीना भी होता है। लेकिन मुझे विश्वास है कि यह नफरत और बेरुखी बहुत दिनों तक न रहेगी। मैं अपने जानी दुश्मन को छोड़ने के लिए ज्यादा से ज्यादा क्रीमत लूँगा, जो मिल सके।

लुईसा पंद्रह मिनट तक भीषण मानसिक यातना की हालत में खड़ी रही। जब उसकी याद आती है तो जी चाहता है गले में छुरी मार लूँ। आखिर उसने आँसूभरी निगाहों से मेरी तरफ देखकर कहा — अच्छी बात है किरपिन, अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही। तुम जो क्रीमत चाहते हो, वह मैं देने का वादा करती हूँ। मगर खुदा के लिए इस वक्त जाओ, मुझे खूब जी भरकर रो लेने दो।

यह कहते-कहते कप्तान नाक्स फूट-फूटकर रोने लगे। मैंने कहा — अगर आपको यह दर्दभरी दास्तान कहने में दुःख हो रहा है तो जाने दीजिए।

कप्तान नाक्स ने गला साफ़ करके कहा — नहीं भाई, वह किस्सा पूरा तो करना ही पड़ेगा। उसके बाद एक महीने तक मैं रोजाना लुईसा के पास जाता, और उसके दिल से अपने प्रतिद्वन्दी के खयाल को मिटाने की कोशिश करता। वह मुझे देखते ही कमरे से बाहर निकल आती, खुश हो-होकर बातें करती। यहाँ तक कि मैं समझने लगा कि उसे मुझसे प्यार हो गया है। इसी बीच योरोपियन लड़ाई छिड़ गई। हम और तुम दोनों लड़ाई पर चले गये। तुम फ्रांस गये, मैं कर्माण्डग अफसर के साथ मिस्र गया। लुईसा अपने चचा के साथ यहीं रह गयी। राजसँ भी उसके साथ रह गया। तीन साल तक मैं लाम पर रहा। लुईसा के पास से बराबर खत आते रहे। मैं तरक्की पाकर लेफ्टिनेण्ट हो गया और कर्माण्डग अफसर कुछ दिन और जिन्दा रहते तो जरूर कप्तान हो जाता। मगर मेरी बदनसीबी से वह एक लड़ाई में मारे गये। आप लोगों को उस लड़ाई का हाल मालूम ही है। उनके मरने के एक महीने बाद मैं छुट्टी लेकर घर लौटा। लुईसा अब भी अपने चचा के साथ ही थी। मगर अफसोस, अब न वह हुस्न था न वह जिन्दादिली, घुलकर काँटा हो गयी थी। उस वक्त मुझे उसकी हालत देखकर बहुत रज हुआ। मुझे अब मालूम हो गया कि उसकी मुहब्बत कितनी सच्ची और कितनी गहरी थी। मुझसे शादी का

वादा करके भी वह अपनी भावनाओं पर विजय न पा सकी थी। शायद इसी गम में कुछ-कुठकर उसकी यह हालत हो गयी थी। एक दिन मैंने उससे कहा — लुईसा, मुझे ऐसा खयाल होता है कि शायद तुम अपने पुराने प्रेमी को भूल नहीं सकी। अगर मेरा यह खयाल ठीक है तो मैं उस वादे से तुमको मुक्त करता हूँ। तुम शौक से उसके साथ शादी कर लो। मेरे लिए यही इत्मीनान काफ़ी होगा कि मैं दिन रहते घर आ गया। मेरी तरफ़ से अगर कोई मलाल हो तो उसे निकाल डालो।

लुईसा की बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू की बूँदे टपकने लगीं। बोली — वह अब इस दुनिया में नहीं है किरपिन, आज छः महीने हुए वह फ्रांस में मारे गये। मैं ही उनकी मौत का कारण हुई — यही गम है। फ़ौज से उनका कोई सम्बन्ध न था। अगर वह मेरी ओर से निराश न हो जाते तो कभी फ़ौज में भर्ती न होते। मरने ही के लिए वह फ़ौज में गये। मगर तुम अब आ गये, मैं बहुत जल्द अच्छी हो जाऊँगी। अब मुझमें तुम्हारी बीबी बनने की काबलियत ज्यादा हो गयी। तुम्हारे पहलू में अब कोई कॉटा नहीं रहा और न मेरे दिल में कोई गम।

इन शब्दों में व्यंग भरा हुआ था, जिसका आशय यह था कि मैंने लुईसा के प्रेमी की जान ली। इसकी सच्चाई से कौन इनकार कर सकता है। इसके प्रायश्चित्त की अगर कोई सूरत थी तो यही कि लुईसा की इतनी खातिरदारी, इतनी दिलजोई कल्ले, उस पर इस तरह न्योछावर हो जाऊँ कि उसके दिल से यह दुख निकल जाय।

इसके एक महीने बाद शादी का दिन तय हो गया। हमारी शादी भी हो गयी। हम दोनों घर आये। दोस्तों की दावत हुई। शराब के दौर चले। मैं अपनी खुशानसीबी पर फूला नहीं समाता था और मैं ही क्यों मेरे इष्ट-मित्र सब मेरी खुशकिस्मती पर मुझे बधाई दे रहे थे।

मगर क्या मालूम था तकदीर मुझे यों सब्ज बाग़ दिखा रही है, क्या मालूम था कि यह वह रास्ता है, जिसके पीछे जालिम शिकारी का जाल बिछा हुआ है। मैं तो दोस्तों की खातिर-तवाजो मे लगा हुआ था, उधर लुईसा अन्दर कमरे में लेटी हुई इस दुनिया से रुखसत होने का सामान कर रही थी। मैं एक दोस्त की बधाई का धन्यवाद दे रहा था कि राजर्स ने आकर कहा — किरपिन, चलो लुईसा तुम्हें बुला रही है। जल्द। उसकी न जाने क्या हालत हो रही है। मेरे पैरों तले से ज़मीन खिसक गयी। दौड़ा हुआ लुईसा के कमरे में आया।

कप्तान नाक्स की आँखों से फिर आँसू बहने लगे, आवाज फिर भारी हो गयी। ज़रा दम लेकर उन्होंने कहा — अन्दर जाकर देखा तो लुईसा कोच पर लेटी हुई

थी। उसका शरीर एँठ रहा था। चेहरे पर भी उसी एँठन के लक्षण दिखायी दे रहे थे। मुझे देखकर बोली — किरपिन, मेरे पास आ जाओ। मैंने शादी करके अपना वचन पूरा कर दिया। इससे ज्यादा मैं तुम्हें कुछ और न दे सकती थी क्योंकि मैं अपनी मुहब्बत पहले ही दूसरे की भेट कर चुकी हूँ। मुझे माफ़ करना। मैंने जहर खा लिया है और बस कुछ घड़ियों की मेहमान हूँ।

मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। दिल पर एक नशतर-सा लगा। घुटने टेककर उसके पास बैठ गया। रोता हुआ बोला — लुईसा, यह तुमने क्या किया! हाय! क्या तुम मुझे दाग देकर इतनी जल्दी चली जाओगी, क्या अब कोई तदबीर नहीं है?

फ़ौरन दौड़कर एक डाक्टर के मकान पर गया। मगर आह! जब तक उसे साथ लेकर आऊँ मेरी वफा की देवी, सच्ची लुईसा हमेशा के लिए मुझसे जुदा हो गयी थी। सिर्फ उसके सिरहाने एक छोटा-सा पुर्जा पड़ा हुआ था जिस पर उसने लिखा था — अगर तुम्हें मेरा भाई श्रीनाथ नजर आये तो उससे कह देना, लुईसा मरते वक़्त भी उसका एहसान नहीं भूली।

यह कहकर नाक्स ने अपनी वास्केट के जेब से एक मखमली डिविया निकाली और उसमे से कागज़ का एक पुर्जा निकालकर दिखाते हुए कहा — चौधरी, यही मेरे उस अस्थायी सौभाग्य की स्मृति है जिसे आज तक मैंने जान से ज्यादा सँभालकर रखा है। आज तुमसे परिचय हो गया। मैंने समझा था, और दोस्तों की तरह तुम भी लड़ाई में ख़त्म हो गये होगे, मगर शुक्र है कि तुम जीते-जागते मौजूद हो। यह अमानत तुम्हारे सिपुर्दे करता हूँ। अब अगर तुम्हारे जी मे आये तो मुझे गोली मार दो, क्योंकि उस स्वर्गिक जीव का हत्यारा मैं हूँ।

यह कहते-कहते कप्तान नाक्स फ़ैलकर कुर्सी पर लेट गये। हम दोनो ही की आँखों से आँसू जारी थे, मगर जल्द ही हमे अपने तात्कालिक कर्तव्य की याद आ गयी। नाक्स को सान्त्वना देने के लिए मैं कुर्सी से उठकर उनके पास गया, मगर उनका हाथ पकड़ते ही मेरे शरीर में कँपकँपी-सी आ गयी। हाथ ठंडा था। ऐसा ठंडा जैसा आखिरी घड़ियों में होता है। मैंने घबराकर उनके चेहरे की तरफ़ देखा और डाक्टर चन्द्र को पुकारा। डाक्टर साहब ने आकर फ़ौरन उनकी छाती पर हाथ रखा और दर्दभरे लहजे में बोले—दिल की घड़कन बन्द हो गयी।

उसी वक़्त बिजली कड़कड़ा उठी, कड़...कड़...कड़...

—‘प्रेमचालीसी’ से

स्वाँग

राजपूत खानदान में पैदा हो जाने ही से कोई सूरमा नहीं हो जाता और न नाम के पीछे 'सिंह' की दुम लगा देने ही से बहादुरी आती है। गजेन्द्र सिंह के पुरखे किसी ज़माने में राजपूत थे इसमें सन्देह की गुजाइश नहीं। लेकिन इधर तीन पुस्तों से तो नाम के सिवा उनमें राजपूती के कोई लक्षण न थे। गजेन्द्र सिंह के दादा वकील थे और जिरह या बहस में कभी-कभी राजपूती का प्रदर्शन कर जाते थे। बाप ने कपड़े की दुकान खोलकर इस प्रदर्शन की भी गुजाइश न रखी और गजेन्द्र सिंह ने तो लुटिया ही डुबो दी। डील-डौल में भी फर्क आता गया। भूपेन्द्र सिंह का सीना लम्बा-चौड़ा था, नरेन्द्र सिंह का पेट लम्बा-चौड़ा था, लेकिन गजेन्द्र सिंह का कुछ भी लम्बा-चौड़ा न था। वह हलके-फुल्के, गोरे चिट्ठे, ऐनक-बाज्र, नाजूक-बदन, फैशनेबुल बाबू थे। उन्हें पढ़ने-लिखने से दिलचस्पी थी।

मगर राजपूत कैसा ही हो उसकी शादी तो राजपूत खानदान ही में होगी। गजेन्द्र सिंह की शादी जिस खानदान में हुई थी, उस खानदान में राजपूती जौहर बिलकुल फ़ना न हुआ था। उनके ससुर पेशानर सूबेदार थे। साले शिकारी और कुश्तीबाज्र। शादी हुए दो साल हो गये थे, लेकिन अभी तक एक बार भी ससुराल न आ सका। इन्तहानों से फुरसत ही न मिलती थी। लेकिन अब पढ़ाई खतम हो चुकी थी, नौकरी की तलाश थी। इसलिए अबकी होली के मौके पर ससुराल से बुलावा आया तो उसने कोई हीला-हुज्जत न की। सूबेदार की बड़े-बड़े अफसरों से जान-पहचान थी, फौजी अफसरों की हुक्काम कितनी कद्र और कितनी इज्जत करते हैं, यह उसे खूब मालूम था। समझा, मुमकिन है, सूबेदार साहब की सिफारिश से नायब तहसीलदारी में नामजद हो जाय। इधर श्यामदुलारी से भी साल भर से मुलाकात न हुई थी। एक निशाने से दो शिकार हो रहे थे। नया रेशमी कोट बनवाया और होली के एक दिन पहले ससुराल जा पहुँचा। अपने गराण्डील सालो के सामने बच्चा-सा मालूम होता था।

तीसरे पहर का वक़्त था, गजेन्द्र सिंह अपने सालों से विद्यार्थी काल के कारनामे बयान कर रहा था। फुटबाल में किस तरह एक देव जैसे लम्बे-तड़मे गोरे

को पटखनी दी, हाकी मैच में किस तरह अकेले गोल कर लिया, कि इतने में सूबेदार साहब देव की तरह आकर खड़े हो गये और बड़े लडके से बोले — अरे सुनो, तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो। बाबू जी शहर से आये हैं, इन्हें ले जाकर जरा जगल की सैर करा लाओ। कुछ शिकार-विकार खिलाओ। यहाँ ठेठर-वेठर तो है नहीं, इनका जी घबराता होगा। वक्त भी अच्छा है, शाम तक लौट आओगे।

शिकार का नाम सुनते ही गजेन्द्र सिंह की नानी मर गयी। बेचारे ने उम्र भर कभी शिकार न खेला था। यह देहाती उजड़ लौडे उसे न जाने कहाँ-कहाँ दौड़ायेगे, कहीं किसी जानवर का सामना हो गया तो कहीं के न रहे। कौन जाने हिरन ही चोट कर बैठे। हिरन भी तो भागने की राह न पाकर कभी-कभी पलट पडता है। कहीं भेडिया निकल आये तो काम ही तमाम कर दे। बोले — मेरा तो इस वक्त शिकार खेलने को जी नहीं चाहता, बहुत थक गया हूँ।

सूबेदार साहब ने फरमाया — तुम घोड़े पर सवार हो लेना। यही तो देहात की बहार है। चुन्नू, जाकर बन्दूक ला, मैं भी चलूंगा। कई दिन से बाहर नहीं निकला। मेरा राइफल भी लेते आना।

चुन्नू और मुन्नू खुश-खुश बन्दूक लेने दौड़े, इधर गजेन्द्र की जान सूखने लगी। पछता रहा था कि नाहक इन लौडों के साथ गप-शप करने लगा। जानता कि यह बला सिर पर आनेवाली है, तो आते ही फौरन बीमार बनकर चारपाई पर पड रहता। अब तो कोई हीला भी नहीं कर सकता। सबसे बड़ी मुसीबत घोड़े की सवारी। देहाती घोड़े यों ही थान पर बँधे-बँधे टरें हो जाते हैं और आसन का कच्चा सवार देखकर तो वह और भी शोखियाँ करने लगते हैं। कहीं अलफ्र हो गया या मुझे लेकर किसी नाले की तरफ बेतहाशा भागा तो खैरियत नहीं।

दोनों साले बन्दूक लेकर आ पहुँचे। घोडा भी खिंचकर आ गया। सूबेदार साहब शिकारी कपडे पहन कर तैयार हो गये। अब गजेन्द्र के लिए कोई हीला न रहा। उसने घोड़े की तरफ कनखियों से देखा — बार-बार जमीन पर पैर पटकता था, हिनहिनाता था, उठी हुई गर्दन, लाल आँखें, कनौतियाँ खडी, बोटी बोटी फड़क रही थी। उसकी तरफ देखते हुए डुर लगता था। गजेन्द्र दिल में सहम उठा मगर बहादुरी दिखाने के लिए घोड़े के पास जाकर उसके गर्दन पर इस तरह थपकियाँ दी कि जैसे पक्का शहसवार है, और बोला — जानवर तो जानदार है मगर मुनासिब नहीं मालूम होता कि आप लोग तो पैदल चले और मैं घोड़े पर बैठूँ। ऐसा कुछ बहुत थका नहीं हूँ। मैं भी पैदल ही चलूंगा, इसका मुझे अभ्यास है।

सूबेदार ने कहा — बेटा, जगल दूर है, थक जाओगे। बडा सीधा जानवर है, बच्चा भी सवार हो सकता है।

गजेन्द्र ने कहा — जी नहीं, मुझे भी यों ही चलने दीजिये। गप-शप करते हुए चले चलेगे। सवारी मे वह लुत्फ कहाँ। आप बुनुरग है, सवार हो जायँ।

चारों आदमी पैदल चले। लोगो पर गजेन्द्र की इस नम्रता का बहुत अच्छा असर हुआ। सभ्यता और सदाचार तो शहरवाले ही जानते है। तिस पर इन्म की बरकत !

थोडी दूर के बाद पथरीला रास्ता मिला। एक तरफ हरा भरा मैदान, दूसरी तरफ पहाड़ का सिलसिला। दोनों ही तरफ बबूल, करील, करौदे और ढाक के जगल थे। सूबेदार साहब अपनी फौजी जिन्दगी के पिटे हुए किस्से कहते चले आते थे। गजेन्द्र तेज चलने की कोशिश कर रहा था। लेकिन बार-बार पिछड जाता था। और उसे दो-चार कदम दौडकर उनके बराबर होना पडता था। पसीने से तर हाँफता हुआ, अपनी बेवकूफी पर पछताता चला जाता था। यहाँ आने की जरूरत ही क्या थी, श्यामदुलारी महीने-दो महीने मे जाती ही। मुझे इस वक़्त कुत्तों की तरह दौडते आने की क्या जरूरत थी। अभी से यह हाल है। शिकार नज़र आ गया तो मालूम नहीं क्या आफत आयेगी। मील-दो मील की दौड तो उनके लिए मामूली बात है मगर यहाँ तो कचूमर ही निकल जायगा। शायद बेहोश होकर गिर पडूँ। पैर अभी से मन-मन भर के हों रहे थे।

यकायक रास्ते मे सेमल का एक पेड नजर आया। नीचे लाल-लाल फूल बिछे हुए थे, ऊपर सारा पेड गुलनार हो रहा था। गजेन्द्र वही खड़ा हो गया और उस पेड को मस्ताना निगाहो से देखने लगा।

चुन्नू ने पूछा — क्या है जीजा जी, रुक कैसे गये ?

गजेन्द्र सिंह ने मुग्ध भाव से कहा — कुछ नहीं, इस पेड का आकर्षक सौन्दर्य देखकर दिल बाग-बाग हुआ जा रहा है। अहा, क्या बहार है, क्या रौनक है, क्या शान है कि जैसे जगल की देवी ने गोघूलि के आकाश को लज्जित करने के लिए केसरिया जोडा पहन लिया हो या ऋषियो की पवित्र आत्माएँ अपनी शाश्वत यात्रा मे यहाँ आराम कर रही हो, या प्रकृति का मधुर सगीत मूर्तिमान होकर दुनिया पर मोहिनी मंत्र डाल रहा हो ! आप लोग शिकार खेलने जाइए, मुझे इस अमृत से तृप्त होने दीजिए।

दोनों नौजवान आश्चर्य से गजेन्द्र का मुँह ताकने लगे। उनकी समझ ही

में न आया कि यह महाशय कह क्या रहे हैं। देहात के रहनेवाले जगलों में घूमने-वाले सेमल उनके लिए कोई अनोखी चीज न थी। उसे रोज देखते थे, कितनी ही बार उस पर चढ़े थे, उसके नीचे दौड़े थे, उसके फूलों की गेद बनाकर खेले थे, उन पर यह मस्ती कभी न छायी थी, सौन्दर्य का उपभोग करना बेचारे क्या जाने।

सूबेदार साहब आगे बढ़ गये थे। इन लोगों को ठहरा हुआ देखकर लौट आये और बोले — क्यों बेटा, ठहर क्यों गये ?

गजेन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा — आप लोग मुझे माफ कीजिए, मैं शिकार खेलने न जा सकूंगा। फूलों की यह बहार देखकर मुझपर मस्ती-सी छा गयी है, मेरी आत्मा स्वर्ग के सगीत का मजा ले रही है। अहा, यह मेरा ही दिल है जो फूल बनकर चमक रहा है। मुझमें भी वही लाली है, वही सौन्दर्य है, वही रस है। मेरे हृदय पर केवल अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है। किसका शिकार करे? जंगल के मासूम जानवरों का? हमी तो जानवर है, हमी तो चिड़ियाँ है, यह हमारी ही कल्पनाओं का दर्पण है जिसमें भौतिक ससार की झलक दिखायी पड़ रही है। क्या अपना ही खून करे? नहीं, आप लोग शिकार खेलने जायें, मुझे इस मस्ती और बहार में डूबकर इसका आनन्द उठाने दे। बल्कि मैं तो प्रार्थना करूँगा कि आप भी शिकार से दूर रहें। जिन्दगी खुशियों का खजाना है। उसका खून न कीजिए। प्रकृति के दृश्यों से अपने मानस-चक्षुओं को तृप्त कीजिए। प्रकृति के एक-एक कण में एक-एक फूल में, एक-एक पत्ती में इसी आनन्द की किरणें चमक रही हैं। खून करके आनन्द के इस अक्षय स्रोत को अपवित्र न कीजिए।

इस दार्शनिक भाषण ने सभी को प्रभावित कर दिया। सूबेदार साहब ने चुन्नु से धीमे से कहा — उम्र तो कुछ नहीं है लेकिन कितना ज्ञान भरा हुआ है! चुन्नु ने भी अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया — विद्या से आत्मा जाग जाती है, शिकार खेलना है बुरा।

सूबेदार साहब ने ज्ञानियों की तरह कहा — हाँ बुरा तो है. चलो लौट चलें। जब हरेक चीज में उसी का प्रकाश है, तो शिकारी कौन और शिकार कौन, अब कभी शिकार न खेलूँगा।

फिर वह गजेन्द्र से बोले — भइया, तुम्हारे उपदेश ने हमारी आँखें खोल दी। कसम खाते हैं, अब कभी शिकार न खेलेगे।

गजेन्द्र पर मस्ती छाई हुयी थी, उसी नशे की हालत में बोला — ईश्वर को लाख लाख धन्यवाद है कि उसने आप लोगों को यह सुबुद्धि दी। मुझे खुद शिकार

का कितना शौक था, बतला नहीं सकता। अनगिनत जगली सूअर, हिरन, तेंदुए, नीलगाये, मगर मारे होंगे, एक बार चीते को मार डाला। मगर आज ज्ञान की मदिरा का वह नशा हुआ कि दुनिया का कहीं अस्तित्व ही नहीं रहा।

२

होली जलने का मुहूर्त नौ बजे रात को था। आठ ही बजे से गाँव के औरत मर्द, बूढ़े-बच्चे गाते-बजाते कबीरे उडाते होली की तरफ चले। सूबेदार साहब भी बाल-बच्चों को लिये हुए मेहमान के साथ होली जलाने चले।

गजेन्द्र ने अभी तक किसी बड़े गाँव की होली न देखी थी। उसके शहर में तो हर मुहल्ले में लकड़ी के मोटे-मोटे दो-चार कुन्दे जला दिये जाते थे, जो कई-कई दिन जलते रहते थे। यहाँ की होली एक लम्बे-चौड़े मैदान में किसी पहाड़ की ऊँची चोटी की तरह आसमान से बाते कर रही थी। ज्योही पंडित जी ने मंत्र पढ़कर नये साल का स्वागत किया, आतिशबाजी छूटने लगी। छोटे-बड़े सभी पटाखे, छछूंदरे, हवाईयाँ छोड़ने लगे। गजेन्द्र के सिर पर से कई छछूंदरे सन-सनाती हुई निकल गयीं। हरेक पटाखे पर बेचारा दो-दो चार-चार कदम पीछे हट जाता था और दिल में इन उजड़-देहातियों को कोसता था। यह क्या बेहूदगी है, बारूद कहीं कपड़े में लग जाय, कोई और दुर्घटना हो जाय तो सारी शरारत निकल जाये। रोज ही तो ऐसी वारदातें होती रहती हैं, मगर इन गँवारों को क्या खबर। यहाँ तो दादा ने जो कुछ किया वही करेंगे। चाहे उसमें कुछ तुक हो या न हो!

अचानक नजदीक से एक बमगोले के छूटने की गगनभेदी आवाज़ आयी कि जैसे बिजली कड़की हो। गजेन्द्र सिंह चौककर कोई दो फिट ऊँचे उछल गये। अपनी जिन्दगी में वह शायद कभी इतना न कूदे थे। दिल धक्-धक् करने लगा, गोया तोप के निशाने के सामने खड़े हों। फौरन दोनों कान उँगलियों से बन्द कर लिये और दस कदम और पीछे हट गये।

चुन्नू ने कहा — जीजाजी, आप क्या छोड़ेंगे, क्या लाऊँ ?

मुन्नू बोला — हवाईयाँ छोड़िए जीजाजी, बहुत अच्छी है। आसमान में निकल जाती है।

चुन्नू — हवाईयाँ बच्चे छोड़ते हैं कि यह छोड़ेंगे ? आप बमगोला छोड़िए भाई साहब।

गजेन्द्र — भाई, मुझे इन चीजों का शौक नहीं। मुझे तो ताज्जुब हो रहा है कि बूढ़े भी कितनी दिलचस्पी से आतिशबाजी छुड़ा रहे हैं।

मुन्नू — दो-चार महताबियाँ तो जरूर छोड़िए।

गजेन्द्र को महताबियाँ निरापद जान पड़ी। उनकी लाल, हरी, सुनहरी चमक के सामने उनके गोरे चेहरे और खूबसूरत बालों और रेशमी कुर्ते की मोहकता कितनी बढ़ जायगी। कोई खतरे की बात भी नहीं। मजे से हाथ में लिये खड़े हैं, गुल टप-टप नीचे गिर रहा है और सब की निगाहें उनकी तरफ लगी हुई हैं। उनकी दार्शनिक बुद्धि भी आत्मप्रदर्शन की लालसा से मुक्त न थी। फ़ौरन महताबी ले ली, उदासीनता की एक अजब शान के साथ। मगर पहली ही महताबी छोड़ना शुरू की थी कि दूसरा बमगोला छूटा। आसमान काँप उठा। गजेन्द्र को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कान के पर्दे फट गये या सिर पर कोई हथौड़ा-सा गिर पडा। महताबी हाथ से छूटकर गिर पड़ी और छाती घटकने लगी। अभी इस घमाके से सम्हलने न पाये थे कि दूसरा घमाका हुआ। जैसे आसमान फट पडा। सारे वायुमण्डल में कम्पन-सा आ गया, चिड़ियाँ घोंसलों से निकल-निकल शोर मचाती हुई भागी, जानवर रस्सियाँ तुडा-तुड़ाकर भागे और गजेन्द्र भी सिर पर पाँव रखकर भागे, सरपट, और सीधे घर पर आकर दम लिया। चुन्नू और मुन्नू दोनों घबड़ा गये। सूबेदार साहब के होश उड़ गये। तीनों आदमी बगट्ट दौड़े हुए गजेन्द्र के पीछे चले। दूसरो ने जो उन्हें भागते देखा तो समझे शायद कोई वारदात हो गयी। सब के सब उनके पीछे हो लिये। गाँव में एक प्रतिष्ठित अतिथि का आना मामूली बात न थी। सब एक-दूसरे से पूछ रहे थे — मेहमान को हो क्या गया? माजरा क्या है? क्यों यह लोग दौड़े जा रहे हैं?

एक पल में सैकड़ों आदमी सूबेदार साहब के दरवाजे पर हाल-चाल पूछने के लिए जमा हो गये। गाँव का दामाद कुरूप होने पर भी दर्शनीय और बदहाल होते हुए भी सबका प्रिय होता है।

सूबेदार ने सहमी हुई आवाज से पूछा — तुम वहाँ से क्यों भाग आये, भइया?

गजेन्द्र को क्या मालूम था कि उसके चले आने से यह तहलका मच जायगा। मगर उसके हाज़िर दिमाग ने जवाब सोच लिया था और जवाब भी ऐसा कि गाँव वालों पर उसकी अलौकिक दृष्टि की धाक जमा दे।

बोला — कोई खास बात न थी, दिल में कुछ ऐसा ही आया कि यहाँ से भाग जाना चाहिए।

‘नहीं कोई बात जरूर थी।’

‘आप पूछकर क्या करोगे? मैं उसे जाहिर करके आपके आनन्द में विघ्न नहीं डालना चाहता।’

‘जब तक बतला न दोगे बेटा, हमें तसल्ली न होगी। सारा गाँव घबराया हुआ है।’

गजेन्द्र ने फिर सूफियों का-सा चेहरा बनाया, आँखें बन्द कर लीं, जम्हाइयाँ लीं और आसमान की तरफ देखकर बोले — बात यह है कि ज्यों ही मैंने महताबी हाथ मे ली, मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने उसे मेरे हाथ से छीनकर फेंक दिया। मैंने कभी आतिशबाजियाँ नहीं छोड़ी, हमेशा उनको बुरा-भला कहता रहा हूँ। आज मैंने वह काम किया जो मेरी अन्तरात्मा के खिलाफ़ था। बस गजब ही तो हो गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है। शर्म से मेरी गर्दन झुक गयी और मैं इसी हालत में वहाँ से भागा। अब आप लोग मुझे माफ़ करे, मैं आपके जशन में न शरीक हो सकूँगा।

सूबेदार साहब ने इस तरह गर्दन हिलायी कि जैसे उनके सिवा वहाँ कोई इस अघ्यात्म का रहस्य नहीं समझ सकता। उनकी आँखें कह रही थी — आती है तुम लोगो की समझ में यह बातें? तुम भला क्या समझोगे, हम भी कुछ-कुछ ही समझते हैं।

होली तो नियत समय पर जलायी गयी थी मगर आतिशबाजियाँ नदी में डाल दी गयीं। शरीर लड़कों ने कुछ इसलिए छिपाकर रख लीं कि गजेन्द्र चले जायेंगे तो मज्जे से छुड़ायेंगे।

श्यामदुलारी ने एकान्त में कहा — तुम तो वहाँ से खूब भागे!

गजेन्द्र अकड़कर बोले — भागता क्यों, भागने की तो कोई बात न थी।

‘मेरी तो जान निकल गयी कि न मालूम क्या हो गया। तुम्हारे ही साथ मैं भी दौड़ी आयी। टोकरी भर आतिशबाजी पानी में फेक दी गयी।’

‘यह तो रुपये को आग में फूँकना है।’

‘होली में भी न छोड़ें तो कब छोड़े। त्योहार इसीलिए तो आते है।’

‘त्योहार में गाओ-बजाओ, अच्छी-अच्छी चीजे पकाओ-खाओ, खैरात

करो, यार-दोस्तों से मिलो, सबसे मुहब्बत से पेश आओ, बारूद उड़ाने का नाम त्योहार नहीं है।

रात को बारह बज गये थे। किसी ने दरवाजे पर धक्का मारा। गजेन्द्र ने चौंककर पूछा — यह धक्का किसने मारा ?

श्यामा ने लापरवाही से कहा — बिल्ली-विल्ली होगी।

कई आदमियों के फट फट करने की आवाजें आयीं, फिर किवाड़ पर धक्का पड़ा। गजेन्द्र को कँपकँपी छूट गयी, लालटेन लेकर दराज से झाँका तो चेहरे का रंग उड़ गया — चार-पाँच आदमी कुर्ते पहने, पगड़ियाँ बाँधें, दाढियाँ लगाये कंधे पर बन्दूके रखे, किवाड़ को तोड़ डालने की जबर्दस्त कोशिश में लगे हुए थे। गजेन्द्र कान लगाकर उनकी बातें सुनने लगा —

‘दोनों सो गये हैं, किवाड़ तोड़ डालो, माल आलमारी में है।’

‘और अगर दोनों जाग गये ?’

‘औरत क्या कर सकती है, मर्द को चारपाई से बाँध देगे।’

‘सुनते हैं गजेन्द्र सिंह कोई बड़ा पहलवान है।’

‘कैसा ही पहलवान हो, चार हथियारबन्द आदमियों के सामने क्या कर सकता है।’

गजेन्द्र के काटो तो बदन में खून नहीं! श्यामदुलारी से बोले — यह डाकू मालूम होते हैं। अब क्या होगा, मेरे तो हाथ-पाँव काँप रहे हैं!

‘चोर-चोर पुकारो, जाग हो जायगी, आप भाग जायेंगे। नहीं मैं चिल्लाती हूँ। चोर का दिल आधा।’

‘ना ना कही ऐसा गजब न करना। इन सबों के पास बन्दूके हैं। गाँव में इतना सन्नाटा क्यों है? घर के आदमी क्या हुए?’

‘भइया और मुझू दादा खलिहान में सोने गये हैं, काका दरवाजे पर पड़े होंगे, उनके कानों पर तोप छूटे तब भी न जायेंगे।’

‘इस कमरे में तो कोई दूसरी खिड़की भी तो नहीं है कि बाहर आवाज़ पहुँचे। मकान है या कैदखाने।’

‘मैं तो चिल्लाती हूँ।’

‘अरे नहीं भाई, क्यों जान देने पर तुली हो। मैं तो सोचता हूँ, हम दोनों चुप साधकर लेट जायँ और आँखें बन्द कर ल। बदमाशों को जो कुछ ले जाना हो ले जायँ, जान तो बचे। देखो किवाड़ हिल रहे हैं। कही टूट न जायँ। हे

ईश्वर, कहाँ जायँ, इस मुसीबत में तुम्हारा ही भरोसा है। क्या जानता था कि यह आफत आनेवाली है, नहीं आता ही क्यों? बस चुप्पी ही साध लो। अगर हिलाये-विलाये तो भी साँस मत लेना।’

‘मुझसे तो चुप्पी साधकर पडा न रहा जायगा।’

‘जेवर उतारकर रख क्यों नहीं देती, शैतान जेवर ही तो लेगे।’

‘जेवर तो न उतारूँगी चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय।’

‘क्यों जान देने पर तुली हुई हो?’

‘खुशी से तो जेवर न उतारूँगी, ज़बरदस्ती की और बात है।’

‘खामोश, सुनो सब क्या बाते कर रहे हैं।’

बाहर से आवाज आयी — किवाड़ खोल दो नहीं तो हम किवाड़ तोड़कर अन्दर आ जायेंगे।

गजेन्द्र ने श्यामदुलारी की भिन्नत की — मेरी बात मानो श्यामा, जेवर उतारकर रख दो, मैं वादा करता हूँ बहुत जल्द नये जेवर बनवा दूँगा।

बाहर से आवाज आयी — क्यों, शामते आयी है! बस एक मिनट की मुहलत और देते हैं, अगर किवाड़ न खोले तो खैरियत नहीं।

गजेन्द्र ने श्यामदुलारी से पूछा — खोल दूँ?

‘हाँ बुला लो, तुम्हारे भाई-बन्द है न? वह दरवाजे को बाहर से ढकेलते है, तुम अन्दर से बाहर को ठेलो।’

‘और जो दरवाजा मेरे ऊपर गिर पड़े? पाँच पाँच जवान है!’

‘वह कोने मे लाठी रखी है, लेकर खड़े हो जाओ।’

‘तुम पागल हो गयी हो।’

‘चुन्नी दादा होते तो पाँचों को गिराते।’

‘मै लट्ठबाज नहीं हूँ।’

‘तो आओ मुँह ढाँपकर लेट जाओ, मैं उन सबो से समझ लूँगी।’

‘तुम्हें तो औरत समझकर छोड़ देंगे, माथे मेरे जायगी।’

‘मै तो चिल्लाती हूँ।’

‘तुम मेरी जान लेकर छोडोगी!’

‘मुझसे तो अब सब नहीं होता, मैं किवाड़ खोले देती हूँ।’

उसने दरवाजा खोल दिया। पाँचों चोर कमरे में भड़भडाकर घुस आये।

एक ने अपने साथी से कहा — मैं इस लौंडे को पकड़े हुए हूँ, तुम औरत के सारे गहने उतार लो।

दूसरा बोला — इसने तो आँखे बन्द कर लीं। अरे, तुम आँखे क्यों नहीं खोलते जी ?

तीसरा — यार, औरत तो हसीन है !

चौथा — सुनती है ओ मेहरिया, जेवर दे दे नहीं गला घोट दूँगा।

गजेन्द्र दिल में बिगड़ रहे थे, यह चुडैल जेवर क्यों नहीं उतार देती।

श्यामदुलारी ने कहा — गला घोट दो, चाहे गोली मार दो, जेवर न उतारूँगी।

पहला — इसे उठा ले चलो। यों न मानेगी, मन्दिर खाली है।

दूसरा — बस यही मुनासिब है, क्यों रे छोकरी, हमारे साथ चलेगी ?

श्यामदुलारी — तुम्हारे मुँह में कालिख लगा दूँगी।

तीसरा — न चलेगी तो इस लौंडे को ले जाकर बेच डालेगे।

श्याम — एक-एक के हथकड़ी लगवा दूँगी।

चौथा — क्यों इतना बिगड़ती है महारानी, जरा हमारे साथ चली क्यों नहीं चलती। क्या हम इस लौंडे से भी गये-गुजरे हैं। क्या रह जायगा, अगर हम तुझे जबरदस्ती उठा ले जायेंगे। यों सीधी तरह नहीं मानती हो। तुम जैसी हसीन औरत पर जुल्म करने को जी नहीं चाहता।

पाँचवाँ — या तो सारे जेवर उतारकर दे दो या हमारे साथ चलो।

श्यामदुलारी — काका आ जायेंगे तो एक-एक की खाल उधेड़ डालेगे।

पहला — यह यों न मानेगी, इस लौंडे को उठा ले चलो। तब आप ही पैरो पड़ेंगी।

दो आदमियों ने एक चादर से गजेन्द्र के हाथ-पाँव बाँधे। गजेन्द्र मुँह की तरह पड़े हुए थे साँस तक न आती थी, दिल में झुँझला रहे थे — हाय कितनी बेवफ़ा औरत है, जेवर न देगी चाहे यह सब मुझे जान से मार डाले। अच्छा जिन्दा बचूँगा तो देखूँगा। बात तक तो पूछूँ नहीं।

डाकुओं ने गजेन्द्र को उठा लिया और लेकर आँगन में जा पहुँचे तो श्यामदुलारी दरवाजे पर खड़ी होकर बोली — इन्हे छोड़ दो तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।

पहला — पहले ही क्यों न राजी हो गयी थी। चलेगी न ?

श्यामदुलारी — चलूँगी। कहती तो हूँ।

तीसरा — अच्छा तो चल। हम इसे छोड़े देते है।

दोनों चोरों ने गजेन्द्र को लाकर चारपाई पर लिटा दिया और श्यामदुलारी को लेकर चल दिये। कमरे में सन्नाटा छा गया। गजेन्द्र ने डरते-डरते आँखें खोली। कोई नजर न आया। उठकर दरवाजे से झाँका। सहन में भी कोई न था। तीर की तरह निकलकर सदर दरवाजे पर आये लेकिन बाहर निकलने का हाँसला न हुआ। चाहा कि सूबेदार साहब को जगाये, मुँह से आवाज़ न निकली।

उसी वक़्त कहक़हे की आवाज आयी। पाँच औरते चुहल करती हुई श्यामदुलारी के कमरे में आयीं। गजेन्द्र का वहाँ पता न था।

एक — कहीं चले गये ?

श्यामदुलारी — बाहर चले गये होंगे।

दूसरी — बहुत शर्मिन्दा होंगे।

तीसरी — डरके मारे उनकी साँस तक बन्द हो गयी थी।

गजेन्द्र ने बोलचाल सुनी तो जान में जान आयी। समझे शायद घर में जाग हो गयी। लपककर कमरे के दरवाजे पर आये और बोले — ज़रा देखिए श्यामा कहाँ है। मेरी तो नीद ही न खुली। जल्द किसी को दौड़ाइए।

यकायक उन्हीं औरतों के बीच में श्यामा को खड़े हँसते देखकर हैरत में आ गये।

पाँचों सहेलियों ने हँसना और तालियाँ पीटना शुरू कर दिया।

एक ने कहा — वाह जीजा जी, देख ली आपकी बहादुरी।

श्यामदुलारी — तुम सब की सब शैतान हो।

तीसरी — बीबी तो चोरों के साथ चली गयी और आपने साँस तक न ली !

गजेन्द्र समझ गये, बड़ा धोखा खाया। मगर जबान के शेर थे, फौरन बिगड़ी बात बना ली, बोले — तो क्या करता, तुम्हारा स्वाँग बिगाड़ देता ! मैं भी इस तमाशे का मजा ले रहा था। अगर सबों को पकड़कर मुँछे उखाड़ लेता तो तुम कितनी शर्मिन्दा होतीं। मैं इतना बेरहम नहीं हूँ।

सब की सब गजेन्द्र का मुँह देखती रह गयी।

— 'वारदात' से

सैलानी बंदर

जीवनदास नाम का एक गरीब मदारी अपने बन्दर मन्नू को नचाकर अपनी जीविका चलाया करता था। वह और उसकी स्त्री बुधिया दोनो ही मन्नू को बहुत प्यार करते थे। उनके कोई सन्तान न थी, मन्नू ही उनके स्नेह और प्रेम का पात्र था। दोनो उसे अपने साथ खाना खिलाते और अपने साथ मुलाते थे। उनकी दृष्टि में मन्नू से अधिक प्रिय कोई वस्तु न थी। जीवनदास उसके लिए एक गेद लाया था। मन्नू आँगन में गेद खेला करता था। उसके भोजन करने को एक मिट्टी का प्याला था, ओढने को कम्बल का एक टुकड़ा, सोने को एक बोरिया, और उचकने के लिए छप्पर में एक रस्सी। मन्नू इन वस्तुओं पर जान देता था। जब तक उसके प्याले में कोई चीज न रख दी जाय वह भोजन न करता था। अपना टाट और कम्बल का टुकड़ा उसे शाल और गद्दे से भी प्यारा था। उसके दिन बड़े सुख से बीतते थे। वह प्रातः काल रोटियाँ खाकर मदारी के साथ तमाशा करने जाता था। वह नकले करने में इतना निपुण था कि दर्शकवृन्द तमाशा देखकर मुग्ध हो जाते थे। लकड़ी हाथ में लेकर वृद्धों की भौंति चलता, आसन मारकर पूजा करता, तिलक-मुद्रा लगाता, फिर पोथी बगल में दबाकर पाठ करने चलता। ढोल बजाकर गाने की नकल इतनी मनोहर थी कि दर्शक लोग लोट-घोट हो जाते थे। तमाशा खतम हो जाने पर वह सब को सलाम करता था, लोगों के पैर पकड़कर पैसे वसूल करता था। मन्नू का कटोरा पैसों से भर जाता था। इसके उपरान्त कोई मन्नू को एक अमरूद खिला देता, कोई उसके सामने मिठाई फेंक देता। लड़कों का तो उसे देखने से जी ही न भरता था। वे अपने-अपने घर से दौड़-दौड़कर रोटियाँ लाते और उसे खिलाते थे। मुहल्ले के लोगों के लिए भी मन्नू मनोरंजन की एक सामग्री था। जब वह घर पर रहता तो एक न एक आदमी आकर उससे खेलता रहता। खोचेवाले फेरी करते हुए उसे कुछ न कुछ दे देते थे। जो बिना दिये निकल जाने की चेष्टा करता उससे भी मन्नू पैर पकड़ कर वसूल कर लिया करता था, क्योंकि घर पर वह खुला रहता था। मन्नू को अगर चिढ़ थी तो कुत्तों से। उसके मारे उधर से कोई कुत्ता न निकलने पाता था

और यदि कोई आ जाता, तो मन्नू उसे अवश्य ही दो-चार कनेठियाँ और झापड़ लगाता था। उसके सर्वप्रिय होने का यह एक और कारण था। दिन को कभी-कभी बुधिया धूप में लेट जाती, तो मन्नू उसके सिर की जुएँ निकालता और वह उसे गाना सुनाती। वह जहाँ कही जाती थी वहाँ मन्नू उसके पीछे-पीछे जाता था। माता और पुत्र में भी इससे अधिक प्रेम न हो सकता था।

२

एक दिन मन्नू के जी में आया कि चलकर कहीं फल खाना चाहिए। फल खाने को मिलते तो थे पर वृक्षों पर चढ़कर डालियों पर उचकने, कुछ खाने और कुछ गिराने में कुछ और ही मजा था। बन्दर विनोदशील होते ही हैं, और मन्नू में इसकी मात्रा कुछ अधिक थी भी। कभी पकड़-धकड़ और मारपीट की नौबत न आयी थी। पेड़ों पर चढ़कर फल खाना उसको स्वाभाविक जान पड़ता था। यह न जानता था कि वहाँ प्राकृतिक वस्तुओं पर भी किसी न किसी की छाप लगी हुई है, जल, वायु और प्रकाश पर भी लोगो ने अधिकार जमा रक्खा है, फिर बाग-बगीचों का तो कहना ही क्या। दोपहर को जब जीवनदास तमाशा दिखाकर लौटा, तो मन्नू लबा हुआ। वह यों भी मुहल्ले में चला जाया करता था, इसलिए किसी को सदेह न हुआ कि वह कहीं चला गया। उधर वह धूमता-धामता, खपरैलों पर उछलता-कूदता एक बगीचे में जा पहुँचा। देखा तो फलो से पेड़ लदे हुए हैं। आँबले, कटहल, लीची, आम, पपीते वगैरह लटकते देखकर उसका चित्त प्रसन्न हो गया। मानो वे वृक्ष उसे अपनी ओर बुला रहे थे कि खाओ, जहाँ तक खाया जाय, यहाँ किसी की रोक-टोक नहीं है। तुरत एक छलाँग मारकर वह चहार-दीवारी पर चढ़ गया। दूसरी छलाँग में पेड़ों पर जा पहुँचा। कुछ आम खाये, कुछ लीचियाँ खायीं। खुश हो-होकर गुठलियाँ इधर-उधर फेकना शुरू किया। फिर सबसे ऊँची डाल पर जा पहुँचा और डालियों को हिलाने लगा। पके आम जमीन पर बिछ गये। खड़खड़ाहट हुई तो माली दोपहर की नीद से चौका और मन्नू को देखते ही उसे पत्थरो से मारने लगा। पर या तो पत्थर उसके पास तक पहुँचते ही न थे या वह सिर और शरीर हिलाकर पत्थरो को बचा जाता था। बीच-बीच में बागवान को दाँत निकालकर डराता भी था। कभी मुँह बनाकर उसे काटने की धमकी भी देता था। माली बैदरघुडकियों से डरकर भागता था, और फिर पत्थर लेकर आ जाता था। यह कौतुक देखकर मुहल्ले के बालक जमा हो गये, और शोर मचाने लगे —

ओ बदरवा लोयलाय, बाल उखाड़ूँ टोयटाय।
ओ बदर तेरा मुँह है लाल, पिचके-पिचके तेरे गाल।

मर गई नानी बदर की,
टूटी टाँग मुछंदर की।

मन्नू को इस शोर-गुल मे बडा आनन्द आ रहा था। वह आघे फल खा-खाकर नीचे गिराता था और लड़के लपक-लपककर चुन लेते और तालियाँ बजा-बजाकर कहते थे —

बंदर मामू और,
कहाँ तुम्हारा ठौर।

माली ने जब देखा कि यह विप्लव शात होने नहीं आता, तो जाकर अपने स्वामी को खबर दी। वह हजरत पुलिस विभाग के कर्मचारी थे। सुनते ही जामे से बाहर हो गये। बदर की इतनी मजाल कि मेरे बगीचे मे आकर ऊधम मचावे। बँगले का किराया मैं देता हूँ, कुछ बदर नहीं देता। यहाँ कितने ही असहयोगियो को लदवा दिया, अखबारवाले मेरे नाम से कांपते है, बदर की क्या हस्ती है! तुरन्त बन्दूक उठायी, और बगीचे मे आ पहुँचे। देखा मन्नू एक पेड को जोर-जोर से हिला रहा है। लाल हो गये, और उसकी तरफ बन्दूक तानी। बन्दूक देखते ही मन्नू के होश उड गये। उस पर आज तक किसी ने बन्दूक नहीं तानी थी। पर उसने बन्दूक की आवाज सुनी थी, चिड़ियों को मारे जाते देखा था और न देखा होता तो भी बन्दूक से उसे स्वाभाविक भय होता। पशु-बुद्धि अपने शत्रुओं से स्वतः सशक हो जाती है। मन्नू के पाँव मानों सुन्न हो गये। वह उछलकर किसी दूसरे वृक्ष पर भी न जा सका। उसी डाल पर दबककर बैठ गया। साहब को उसकी यह कला पसन्द आयी, दया आ गयी। माली को भेजा, जाकर बन्दर को पकड़ ला। माली दिल मे तो डरा, पर साहब के गुस्से को जानता था, चुपके-से वृक्ष पर चढ गया और हजरत बदर को एक रस्सी में बाँध लाया। मन्नू साहब के बरामदे मे एक खम्भे से बाँध दिया गया। उसकी स्वच्छन्दता का अन्त हो गया। सन्ध्या तक वही पडा हुआ करुण स्वर मे कूँ-कूँ करता रहा। साँझ हो गयी तो एक नौकर उसके सामने एक मुट्ठी चने डाल गया। अब मन्नू को अपनी स्थिति के परिवर्तन का ज्ञान हुआ। न कम्बल, न टाट, ज़मीन पर पडा बिसूर रहा था। चने उसने छुए भी नहीं। पछता रहा था कि कहाँ से कहाँ फल खाने निकला।

मदारी का प्रेम याद आया। बेचारा मुझे खोजता फिरता होगा। मदारिन प्याले में रोटी और दूध लिये मुझे मन्नू, मन्नू पुकार रही होगी। हा विपत्ति! तूने मुझे कहीं लाकर छोड़ा। रात भर वह जागता और बार-बार खम्भे के चक्कर लगाता रहा। साहब का कुत्ता टामी बार-बार डराता और भूँकता था। मन्नू को उस पर ऐसा क्रोध आता था कि पाऊँ तो मारे चपतों के चौधिया दूँ, पर कुत्ता निकट न आता, दूर ही से गरजकर रह जाता था।

रात गुजरी, तो साहब ने आकर मन्नू को दो-तीन ठोकरे जमायी। सुअर! रात-भर चिल्ला-चिल्लाकर नींद हराम कर दी। आँख तक न लगी! बचा, आज भी तुमने गुल मचाया, तो गोली मार दूँगा। यह कहकर वह तो चले गये, अब नटखट लड़को की बारी आयी। कुछ घर के और कुछ बाहर के लड़के जमा हो गये। कोई मन्नू को मुँह चिढ़ाता, कोई उस पर पत्थर फेकता और कोई उसको मिठाई दिखाकर ललचाता था। कोई उसका रक्षक न था, किसी को उस पर दया न आती थी। आत्मरक्षा की जितनी क्रियाएँ उसे मालूम थी, सब करके हार गया। प्रणाम किया, पूजा-पाठ किया लेकिन इसका उपहार यही मिला कि लड़कों ने उसे और भी दिक्कत करना शुरू किया। आज किसी ने उसके सामने चने भी न डाले। और यदि डाले भी होते तो वह खा न सकता। शोक ने भोजन की इच्छा न रक्खी थी।

संध्या समय मदारी पता लगाता हुआ साहब के घर पहुँचा। मन्नू उसे देखते ही ऐसा अधीर हुआ, मानो जंजीर तोड़ डालेगा, खम्भे को गिरा देगा। मदारी ने जाकर मन्नू को गले से लगा लिया और साहब से बोला — 'हज़ूर भूल-चूक तो आदमी से भी हो जाती है, यह तो पशु है। मुझे चाहे जो सज़ा दीजिए पर इसे छोड़ दीजिए। सरकार, यही मेरी रोटियों का सहारा है। इसके बिना हम दो प्राणी भूखों मर जायेंगे। इसे हमने लड़के की तरह पाला है। जब से यह भागा है, मदारिन ने दाना-पानी छोड़ दिया है। इतनी दया कीजिए सरकार, आपका अकबाल सदा रोशन रहे, इससे भी बड़ा ओहदा मिले, कलम चाक हो, मुद्ई बेबाक हो। आप है सपूत, सदा रहे मजबूत। आपके बैरी को दाबे भूत।' मगर साहब ने दया का पाठ न पढ़ा था। घुडककर बोले — 'चुप रह पाजी, टे-टे करके दिमाग चाट गया। बचा, बन्दर छोड़कर बाग़ का सत्यानाश करा डाला, अब खुशामद करने चले हो। जाकर देख तो, इसने कितने फल खराब कर दिये। अगर इसे ले जाना चाहता है तो दस रुपया लाकर मेरी नज़र कर नहीं तो चुपके से अपनी राह पकड़।

यह या तो यहीं बँधे-बँधे मर जायगा, या कोई इतने दाम देकर इसे ले जायगा।'

मदारी निराश होकर चला गया। दस रुपये कहाँ से लाता? बुधिया से जाकर हाल कहा। बुधिया को अपनी तरस पैदा करने की शक्ति पर ज़्यादा भरोसा था। बोली—'बस, देख ली तुम्हारी करतूत! जाकर लाठी-सी मारी होगी। हाकिमों से बड़े दाँव-पेच की बाते की जाती है, तब कहीं जाकर वे पसीजते हैं। चलो मेरे साथ, देखो छुड़ा लाती हूँ कि नहीं।' यह कहकर उसने मन्नू का सब सामान एक गठरी में बाँधा और मदारी के साथ साहब के पास आयी। मन्नू अब की इतने जोर से उछला कि खभा हिल उठा। बुधिया ने कहा—'सरकार, हम आपके द्वार पर भीख माँगने आये हैं, यह बदर हमको दान दे दीजिए।'

साहब—हम दान देना पाप समझते हैं।

मदारिन—हम देस-देस घूमते हैं। आपका जस गावेंगे।

साहब—हमें जस की चाह या परवाह नहीं है।

मदारिन—भगवान आपको इसका फल देंगे।

साहब—मैं नहीं जानता भगवान कौन बला है।

मदारिन—महाराज, क्षमा की बड़ी महिमा है।

साहब—हमारे यहाँ सबसे बड़ी महिमा दण्ड की है।

मदारिन—हुजूर, आप झाकिम हैं। हाकिमों का काम है, न्याय करना। फलों के पीछे दो आदमियों की जान न लीजिए। न्याय ही से हाकिम की बड़ाई होती है।

साहब—हमारी बड़ाई क्षमा और न्याय से नहीं है और न न्याय करना हमारा काम है, हमारा काम है मौज करना।

बुधिया की एक भी युक्ति इस अहंकार-मूर्ति के सामने न चली। अतः को निराश होकर वह बोली—हुजूर इतना हुकम तो दे दें कि ये चीजे बन्दर के पास रख दूँ। इन पर यह जान देता है।

साहब—मेरे यहाँ यह कूड़ा-करकट रखने की जगह नहीं है। आखिर बुधिया हताश होकर चली गयी।

३

टामी ने देखा, मन्नू कुछ बोलता नहीं, तो शेर हो गया। भूँकता-भूँकता मन्नू के पास चला आया। मन्नू ने लपककर उसके दोनों कान पकड़ लिये और इतने तमाचे लगाये कि उसे छठी का दूध याद आ गया। उसकी चिल्लाहट सुनकर साहब

कमरे से बाहर निकल आये और मन्नू के कई ठोकरे लगायी। नौकर को आज्ञा दी कि इस बदमाश को तीन दिन तक कुछ खाने को मत दो।

सयोग से उसी दिन एक सर्कस कंपनी का मैनेजर साहब से तमाशा करने की आज्ञा लेने आया। उसने मन्नू को बँधे, रोनी सूरत बनाये बैठे देखा, तो पास आकर उसे पुचकारा। मन्नू उछलकर उसकी टाँगो से लिपट गया, और उसे सलाम करने लगा। मैनेजर समझ गया कि यह पालतू जानवर है। उसे अपने तमाशे के लिए एक बन्दर की जरूरत थी। साहब से बातचीत की, उसका उचित मूल्य दिया, और अपने साथ ले गया। किन्तु मन्नू को शीघ्र ही विदित हो गया कि यहाँ मैं और भी बुरा फँसा। मैनेजर ने उसे बदरो के रखवाले को सौंप दिया। रखवाला बड़ा निष्ठुर और क्रूर प्रकृति का प्राणी था। उसके अधीन और भी कई बन्दर थे। सभी उसके हाथो कष्ट भोग रहे थे। वह उनके भोजन की सामग्री खुद खा जाता था। अन्य बन्दरों ने मन्नू का सहर्ष स्वागत नहीं किया। उसके आने से उनमें बड़ा कोलाहल मचा। अगर रखवाले ने उसे अलग न कर दिया होता तो वे सब उसे नोचकर खा जाते। मन्नू को अब नयी विद्या सीखनी पडी। पैरगाडी पर चढ़ना, दौडते घोडे की पीठ पर दो टाँगो से खड़े हो जाना, पतली रस्सी पर चलना इत्यादि बड़ी ही कष्टप्रद साधनाएँ थी। मन्नू को ये सब कौशल सीखने में बहुत मार खानी पडती। जरा भी चूकता तो पीठ पर डंडा पड़ जाता। उससे अधिक कष्ट की बात यह थी कि उसे दिन भर एक कठघरे में बन्द रक्खा जाता था, जिसमें कोई उसे देख न ले। मदारी के यहाँ भी उसे तमाशा ही दिखाना पड़ता था किन्तु उस तमाशे और इस तमाशे में बड़ा अंतर था। कहाँ वे मदारी की मीठी-मीठी बातें, उसका दुलार और प्यार और कहाँ यह कारावास और डडों की मार! ये काम सीखने में उसे इसलिए और भी देर लगती थी कि वह अभी तक जीवनदास के पास भाग जाने के विचार को भूला न था। नित्य इसी ताक में रहता कि मौका पाऊँ और निकल जाऊँ। लेकिन वहाँ जानवरों पर बड़ी कड़ी निगाह रक्खी जाती थी। बाहर की हवा तक न मिलती थी, भागने की तो बात ही क्या! काम लेनेवाले सब थे, मगर भोजन की खबर लेनेवाला कोई भी न था। साहब की क्रैद से तो मन्नू जल्द ही छूट गया था, लेकिन इस क्रैद में तीन महीने बीत गये। शरीर घुल गया, नित्य चिन्ता घेरे रहती थी, पर भागने का कोई ठीक-ठिकाना न था। जी चाहे या न चाहे, उसे काम अवश्य करना पड़ता था। स्वामी को पैसे से काम था, वह जिये चाहे मरे।

सयोगवश एक दिन सर्कस के पडाल में आग लग गई। सर्कस के नौकर-चाकर सब जुआरी थे। दिन भर जुआ खेलते, शराब पीते और लड़ाई-झगडा करते थे। इन्ही झगडों में एकाएक गैस की नली फट गयी। हाहाकार मच गया। दर्शक-वृन्द जान लेकर भागे। कंपनी के कर्मचारी अपनी चीजे निकालने लगे। पशुओं की किसी को खबर न रही। सर्कस में बड़े-बड़े भयकर जीव-जन्तु तमाशा करते थे। दो शेर, कई चीते, एक हाथी, एक रीछ था। कुत्तो, घोडो तथा बन्दरो की सख्या तो इससे कहीं अधिक थी। कंपनी धन कमाने के लिए अपने नौकरों की जान को कोई चीज नहीं समझती थी। ये सब के सब जीव इस समय तमाशे के लिए खोले गये थे। आग लगते ही वे चिल्ला-चिल्लाकर भागे। मन्नू भी भाग खड़ा हुआ। पीछे फिरकर भी न देखा कि पडाल जला या बचा।

मन्नू कूदता-फाँदता सीधे उसी घर पहुँचा, जहाँ जीवनदास रहता था, लेकिन द्वार बन्द था। खपरैल पर चढ़कर वह घर में घुस गया, मगर किसी आदमी का चिन्ह नहीं मिला। वह स्थान, जहाँ वह सोता था, और जिसे बुधिया गोबर से लीपकर साफ रक्खा करती थी, अब घास-पात से ढँका हुआ था। वह लकड़ी जिस पर चढ़कर वह कूदा करता था, दीमको ने खा ली थी। मुहल्लेवाले उसे देखते ही पहचान गये। शोर मच गया — मन्नू आया, मन्नू आया।

मन्नू उस दिन से रोज सन्ध्या के समय उसी घर में आ जाता, और अपने पुराने स्थान पर लेट रहता। वह दिन भर मुहल्ले में घूमा करता था, कोई कुछ दे देता, तो खा लेता था, मगर किसी की कोई चीज नहीं छूता था। उसे अब भी आशा थी कि मेरा स्वामी यहाँ मुझसे अवश्य मिलेगा। रातो को उसके कराहने की कर्ण ध्वनि सुनायी देती थी। उसकी दीनता पर देखनेवालों की आँखों से आँसू निकल पड़ते थे।

इस प्रकार कई महीने बीत गये। एक दिन मन्नू गली में बैठा हुआ था, इतने में लड़को का शोर सुनायी दिया। उसने देखा, एक बुढिया नगे सिर, नगे बदन, एक चीथडा कमर में लपेटे, सिर के बाल छिटकाए, भुतनियों की तरह चली आ रही है, और कई लड़के उसके पीछे पत्थर फेकते 'पगली नानी !' पगली नानी ! ! की हाँक लगाते, तालियाँ बजाते चले आ रहे हैं। वह रह-रहकर रुक जाती है और लड़कों से कहती है — 'मैं पगली नहीं हूँ, मुझे पगली क्यों कहते हो ?' आखिर बुढिया जमीन पर बैठ गयी, और बोली — 'बताओ, मुझे पगली क्यों कहते हो ?'

उसे लडकों पर लेशमात्र भी क्रोध न आता था। वह न रोती थी, न हँसती। पत्थर लग भी जाते तो चुप हो जाती थी।

एक लडके ने कहा — तू कपड़े क्यों नहीं पहनती? तू पागल नहीं तो और क्या है?

बुढ़िया — कपड़े जाड़े में सर्दी से बचने के लिए पहने जाते हैं। आजकल तो गर्मी है।

लड़का — तुझे शर्म नहीं आती?

बुढ़िया — शर्म किसे कहते हैं बेटा, इतने साधू-संग्यासी नगे रहते हैं, उनको पत्थर से क्यों नहीं मारते?

लडका — वे तो मर्द हैं।

बुढ़िया — क्या शर्म औरतो ही के लिए है, मर्दों को शर्म नहीं आनी चाहिए?

लड़का — तुझे जो कोई जो कुछ दे देता है, उसे तू खा लेती है। तू पागल नहीं तो और क्या है?

बुढ़िया — इसमें पागलपन की क्या बात है बेटा? भूख लगती है, पेट भर लेती हूँ।

लड़का — तुझे कुछ विचार नहीं है। किसी के हाथ की चीज खाते घिन नहीं आती?

बुढ़िया — घिन किसे कहते हैं बेटा, मैं भूल गयी।

लड़का — सभी को घिन आती है, क्या बता दूँ, घिन किसे कहते हैं।

दूसरा लडका — तू पैसे क्यों हाथ से फेक देती है? कोई कपड़े देता है तो क्यों छोड़कर चल देती है? पगली नहीं तो और क्या है?

बुढ़िया — पैसे, कपड़े लेकर क्या करूँ बेटा?

लडका — और लोग क्या करते हैं? पैसे-रुपये का लालच सभी को होता है।

बुढ़िया — लालच किसे कहते हैं बेटा, मैं भूल गयी!

लड़का — इसी से तो तुझे पगली नानी कहते हैं। तुझे न लोभ है, न घिन है, न विचार है, न लाज है। ऐसी ही को पागल कहते हैं।

बुढ़िया — तो यही कहो, मैं पगली हूँ।

लड़का — तुझे क्रोध क्यों नहीं आता?

बुढ़िया — क्या जाने बेटा। मुझे तो क्रोध नहीं आता। क्या किसी को क्रोध भी आता है? मैं तो भूल गयी।

कई लड़कों ने इस पर 'पगली, पगली' का शोर मचाया और बुढ़िया उसी तरह शात भाव से आगे चली। जब वह निकट आयी तो मन्नू उसे पहचान गया। यह तो मेरी बुधिया है। वह दौड़कर उसके पैरों से लिपट गया। बुढ़िया ने चौक-कर मन्नू को देखा, पहचान गयी। उसने उसे छाती से लगा लिया।

४

मन्नू को गोद में लेते ही बुधिया को अनुभव हुआ कि मैं नग्न हूँ। मारे शर्म के वह खड़ी न रह सकी। बैठकर एक लड़के से बोली — बेटा, मुझे कुछ पहनने को दोगे ?

लड़का — तुझे तो लाज ही नहीं आती न ?

बुढ़िया — नहीं बेटा, अब तो आ रही है। मुझे न जाने क्या हो गया था।

लड़कों ने फिर 'पगली पगली' का शोर मचाया। तो उसने पत्थर फेंककर लड़कों को मारना शुरू किया। उनके पीछे दौड़ी।

एक लड़के ने पूछा — अभी तो तुझे क्रोध नहीं आता था। अब क्यों आ रहा है ?

बुढ़िया — क्या जाने क्यों अब क्रोध आ रहा है। फिर किसी ने पगली कहा तो बदर से कटवा दूंगी।

एक लड़का दौड़कर एक फटा हुआ कपड़ा ले आया। बुधिया ने वह कपड़ा पहन लिया। बाल समेट लिये। उसके मुख पर जो एक अमानुषी आभा थी, उसकी जगह चिन्ता का पीलापन दिखायी देने लगा। वह रो-रोकर मन्नू से कहने लगी — बेटा, तुम कहाँ चले गये थे। इतने दिन हो गये, हमारी सुध न ली। तुम्हारा मदारी तुम्हारे ही वियोग में परलोक सिधारा, मैं भिक्षा माँगकर अपना पेट पालने लगी, घर-द्वार तहस-नहस हो गया। तुम थे तो खाने की, पहनने की, गहने की, घर की इच्छा थी, तुम्हारे जाते ही सब इच्छाएँ लुप्त हो गयीं। अकेली भूख तो सताती थी, पर ससार में और किसी बात की चिन्ता न थी। तुम्हारा मदारी मरा, पर मेरी आँखों में आँसू न आये। वह खाट पर पडा कराहता था और मेरा कलेजा ऐसा पत्थर हो गया था कि उसकी दवा-दारू की कौन कहे, उसके पास खड़ी तक न होती थी। सोचती थी — यह मेरा कौन है। अब आज वे सब बातें और अपनी वह दशा याद आती है, तो यही कहना पड़ता है कि मैं सचमुच पगली हो गयी थी, और लड़कों का मुझे पगली नानी कहकर चिढाना ठीक ही था।

यह कहकर बुधिया मन्नू को लिये हुए शहर के बाहर एक बाग में गयी, जहाँ वह एक पेड़ के नीचे रहती थी। वहाँ थोड़ी-सी पुआल बिछी हुई थी। इसके सिवा मनुष्य के बसेरे का और कोई चिन्ह न था।

आज से मन्नू बुधिया के पास रहने लगा। वह सबेरे घर से निकल जाता और नकले करके, भीख माँगकर बुधिया के खाने भर को ताज या रोटियाँ ले आता था। पुत्र भी अगर होता तो वह इतने प्रेम से माता की सेवा न करता। उसकी नकलों से खुश होकर लोग उसे पैसे भी देते थे। उन पैसे से बुधिया खाने की चीजे बाजार से लाती थी।

लोग बुधिया के प्रति बदर का यह प्रेम देखकर चकित हो जाते और कहते थे कि यह बदर नहीं, कोई देवता है।

माधुरी फरवरी, १९२४

नबी का नीति-निर्वाह

हजरत मुहम्मद को इलहाम हुए थोड़े ही दिन हुए थे, दस-पाँच पड़ोसियाँ और निकट-सम्बन्धियों के सिवा अभी और कोई उनके दीन पर ईमान न लाया था। यहाँ तक कि उनकी लड़की जैनब और दामाद अबुलआस भी, जिनका विवाह इलहाम के पहले ही हो चुका था, अभी तक नये धर्म में दीक्षित न हुए थे। जैनब कई बार अपने मैके गयी थी और अपने पिता के ज्ञानोपदेश सुने थे। वह दिल से इसलाम पर श्रद्धा रखती थी, लेकिन अबुलआस के कारण दीक्षा लेने का साहस न कर सकती थी। अबुलआस विचार-स्वातन्त्र्य का समर्थक था। वह कुशल व्यापारी था। मक्के से खजूर, मेवे आदि जिन्से लेकर बन्दरगाहों को चालान किया करता था। बहुत ही ईमानदार, लेन-देन का खरा, श्रमशील मनुष्य था, जिसे इहलोक से इतनी फुसंत न मिलती थी कि परलोक की चिन्ता करे। जैनब के सामने कठिन समस्या थी, आत्मा धर्म की ओर थी, हृदय पति की ओर, न धर्म को छोड़ सकती थी, न पति को। घर के अन्य प्राणी मूर्तिपूजक थे और इस नये सम्प्रदाय के शत्रु। जैनब अपनी लगन को छुपाती रहती, यहाँ तक कि पति से भी अपनी व्यथा न कह सकती। वे धार्मिक सहिष्णुता के दिन न थे। बात-बात पर खून की नदियाँ बहती थी। खान्दान के खान्दान मिट जाते थे। अरब की अलौकिक वीरता पारस्परिक कलहों में व्यक्त होती थी। राजनैतिक सगठन का नाम न था। खून का बदला खून, धनहानि का बदला खून, अपमान का बदला खून—मानव-रक्त ही से सभी झगड़ों का निबटारा होता था। ऐसी अवस्था में अपने धर्मानुराग को प्रकट करना अबुलआस के शक्तिशाली परिवार को मुहम्मद और उनके गिने-गिनाये अनुयायियों से टकराना था। उधर प्रेम का बन्धन पैरो को जकड़े हुए था। नये धर्म में प्रविष्ट होना अपने प्राण-प्रिय पति से सदा के लिए बिछुड़ जाना था। कुरैश जाति के लोग ऐसे मिश्रित विवाहों को परिवार के लिए कलंक समझते थे। माया और धर्म की दुविधा में पड़ी हुई जैनब कुढ़ती रहती थी।

२

धर्म का अनुराग एक दुर्लभ वस्तु है, किन्तु जब उसका वेग उठता है तब बड़े

प्रचण्ड रूप से उठता है। दोपहर का समय था। धूप इतनी तेज थी कि उसकी ओर ताकते हुए आँखों से चिनगारियाँ निकलती थी। हजरत मुहम्मद अपने मकान में चिन्तामग्न बैठे हुए थे। निराशा चारों ओर अन्धकार के रूप में दिखायी देती थी। खुदैजा भी पास ही बैठी हुई एक फटा कुर्त्ता सी रही थी। धन-सम्पत्ति सब कुछ इस लगन के भेट हो चुकी थी। विधर्मियों का दुराग्रह दिनोदिन बढ़ता जाता था। इसलाम के अनुयायियों को भॉति-भॉति की यातनाएँ दी जा रही थी। स्वयं हजरत को घर से निकलना मुश्किल था। खौफ होता था कि कहीं लोग उन पर ईट-पत्थर न फेकने लगे। खबर आती थी कि आज अमुक मुसलमान का घर लूटा गया, आज फलां को लोगो ने आहत किया। हजरत ये खबरे सुन-सुनकर विकल हो जाते थे और बार-बार खुदा से धैर्य और क्षमा की याचना करते थे।

हजरत ने फरमाया — मुझे ये लोग अब यहाँ न रहने देगे। मैं खुद सब कुछ झेल सकता हूँ पर अपने दोस्तों की तकलीफ नहीं देखी जाती।

खुदैजा — हमारे चले जाने से तो इन बेचारों को और भी कोई शरण न रहेगी। अभी कम से कम आपके पास आकर रो तो लेते है। मुसीबत में रोने का सहारा कम नहीं होता।

हजरत — तो मैं अकेले थोड़े ही जाना चाहता हूँ। मैं अपने सब दोस्तों को साथ लेकर जाने का इरादा रखता हूँ। अभी हम लोग यहाँ बिखरे हुए है। कोई किसी की मदद को नहीं पहुँच सकता। हम सब एक ही जगह एक कुटुम्ब की तरह रहेंगे तो किसी को हमारे ऊपर हमला करने की हिम्मत न होगी। हम अपनी मिली हुई शक्ति से बालू का ढेर तो हो ही सकते है जिस पर चढ़ने का किसी को साहस न होगा।

सहसा जैनब घर में दाखिल हुई। उसके साथ न कोई आदमी था न कोई आदमजाद, ऐसा मालूम होता था कि कहीं से भगी चली आ रही है। खुदैजा ने उसे गले लगाकर कहा — क्या हुआ जैनब, खैरियत तो है ?

जैनब ने अपने अन्तर्द्वन्द्व की कथा सुनायी और पिता से दीक्षा की प्रार्थना की। हजरत मुहम्मद आँखों में आँसू भरकर बोले — जैनब, मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती। लेकिन डरता हूँ कि तुम्हारा क्या हाल होगा।

जैनब — या हजरत, मैंने खुदा की राह में सब कुछ त्याग देने का निश्चय किया है। दुनिया के लिए अपनी आकबत को नहीं खोना चाहती।

हजरत — जैनब, खुदा की राह में काँटे हैं।

जैनब — लगन को काँटों की परवा नहीं होती।

हजरत — ससुराल से नाता टूट जायगा।

जैनब — खुदा से तो नाता जुड़ जायगा।

हजरत — और अबुलआस ?

जैनब की आँखों में आँसू डबडबा आये। कातर स्वर में बोली — अब्बाजान, इसी बेड़ी ने इतने दिनों मुझे बाँध रक्खा था, नहीं तो मैं कबकी आपकी शरण में आ चुकी होती। मैं जानती हूँ, उनसे जुदा होकर जीती न रहूँगी और शायद उनको भी मेरा वियोग दुस्सह्य होगा, पर मुझे विश्वास है कि एक दिन जरूर आयेगा जब वे खुदा पर ईमान लायेंगे और मुझे फिर उनकी सेवा का अवसर मिलेगा।

हजरत — बेटी, अबुलआस ईमानदार है, दयाशील है, सत्यवक्ता है, किन्तु उसका अहंकार शायद अन्त तक उसे ईश्वर से विमुख रक्खे। वह तक्रदीर को नहीं मानता, आत्मा को नहीं मानता, स्वर्ग और नरक को नहीं मानता। कहता है, 'सृष्टि-संचालन के लिए खुदा की जरूरत ही क्या है? हम उससे क्यों डरें? विवेक और बुद्धि की हिदायत हमारे लिए काफी है।' ऐसा आदमी खुदा पर ईमान नहीं ला सकता। अधर्म को जीतना आसान है, पर जब वह दर्शन का रूप धारण कर लेता है तो अजेय हो जाता है।

जैनब ने निश्चयात्मक भाव से कहा — हजरत, आत्मा का उपकार जिसमें हो मुझे वही चाहिए। मैं किसी इन्सान को अपने और खुदा के बीच में न रहने दूँगी।

हजरत — खुदा तुझ पर दया करे बेटी। तेरी बातों ने दिल खुश कर दिया। यह कहकर उन्होंने जैनब को प्रेम से गले लगा लिया।

३

दूसरे दिन जैनब को जामा मसजिद में यथाविधि कलमा पढ़ाया गया।

क्रूरैशियो ने जब यह खबर पायी तब वे जल उठे। राजब खुदा का। इसलाम ने तो बड़े-बड़े धरो पर हाथ साफ करना शुरू किया। अगर यही हाल रहा तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि उसका सामना करना कठिन हो जायगा। लोग अबुलआस के घर पर जमा हुए। अबूसिफ्रियान ने, जो इसलाम के शत्रुओं में सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति था (और जो बाद को इसलाम पर ईमान लाया), अबुलआस से कहा — तुम्हें अपनी बीवी को तलाक देना पड़ेगा।

अबुल० — हर्गिज नहीं।

अबूसि० — तो क्या तुम भी मुसलमान हो जाओगे ?

अबु० — हर्गिज नहीं।

अबूसि० — तो उसे मुहम्मद ही के घर रहना पड़ेगा।

अबु० — हर्गिज नहीं, आप मुझे आज्ञा दीजिए कि उसे अपने घर लाऊँ।

अबूसि० — हर्गिज नहीं।

अबु० — क्या यह नहीं हो सकता कि मेरे घर में रहकर वह अपने मतानुसार खुदा की बन्दगी करे ?

अबूसि० — हर्गिज नहीं।

अबु० — मेरी कौम मेरे साथ इतनी भी सहानुभूति न करेगी ?

अबूसि० — हर्गिज नहीं।

अबु० — तो फिर आप लोग मुझे अपने समाज से पतित कर दीजिए। मुझे पतित होना मंजूर है, आप लोग चाहे जो सजा दे वह सब मंजूर है। पर मैं अपनी बीवी को तलाक नहीं दे सकता। मैं किसी की धार्मिक स्वाधीनता का अपहरण नहीं करना चाहता, वह भी अपनी बीवी की।

अबूसि० — कुरैश में क्या और लड़कियाँ नहीं है ?

अबु० — जैनब की-सी कोई नहीं।

अबूसि० — हम ऐसी लड़कियाँ बता सकते हैं जो चाँद को लज्जित कर दें।

अबु० — मैं सौन्दर्य का उपासक नहीं।

अबूसि० — ऐसी लड़कियाँ दे सकता हूँ जो गृह-प्रबन्ध में निपुण हों, बातें ऐसी करे जो मुँह से फूल झरे, भोजन ऐसा बनाये कि बीमार को भी रुचि हो, और सीने-पिरोने में इतनी कुशल कि पुराने कपड़े को नया कर दे।

अबु० — मैं इन गुणों में किसी का भी उपासक नहीं। मैं प्रेम और केवल प्रेम का भक्त हूँ और मुझे विश्वास है, कि जैनब का-सा प्रेम मुझे सारी दुनिया में नहीं मिल सकता।

अबूसि० — प्रेम होता तो तुम्हें छोड़कर दगा न करती।

अबु० — मैं नहीं चाहता कि प्रेम के लिए कोई अपने आत्मस्वातन्त्र्य का त्याग करे।

अबूसि० — इसका आशय यह है कि तुम समाज में समाज के विरोधी बनकर

रहना चाहते हों। अपनी आँखों की कसम, समाज अपने ऊपर यह अत्याचार न होने देगा, मैं समझाये जाता हूँ, न मानोगे तो रोओगे।

४

अबूसिफ़ियान और उनकी टोली के लोग तो धमकियाँ देकर उधर गये, इधर अबुलआस ने लकड़ी सम्हाली और ससुराल जा पहुँचे। शाम हो गयी थी। हजरत अपने मुरीदों के साथ मगरिब की नमाज़ पढ़ रहे थे। अबुलआस ने उन्हें सलाम किया और जब तक नमाज़ होती रही, घौर से देखते रहे। आदमियों की कतारों का एक साथ उठना-बैठना और सिजदे करना देखकर उनके दिल पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था। वह अज्ञात भाव से संगत के साथ बैठते, झुकते और खड़े हो जाते थे। वहाँ का एक-एक परमाणु इस समय ईश्वरमय हो रहा था। एक क्षण के लिए अबुलआस भी उसी भक्ति-प्रवाह में आ गये।

जब नमाज़ खत्म हो गयी तब अबुलआस ने हजरत से कहा — मैं जैनब को बिदा कराने आया हूँ।

हजरत ने विस्मित होकर कहा — तुम्हें मालूम नहीं कि वह खुदा और रसूल पर ईमान ला चुकी है ?

अबु० — जी हाँ, मालूम है।

हज० — इसलाम ऐसे सम्बन्धों का निषेध करता है।

अबु० — क्या इसका यह मतलब है कि जैनब ने मुझे तलाक दे दिया ?

हज० — अगर यही मतलब हो तो ?

अबु० — तो कुछ नहीं, जैनब को खुदा और रसूल की बन्दगी मुबारक हो। मैं एक बार उससे मिलकर घर चला जाऊँगा और फिर कभी आपको अपनी सूरत न दिखाऊँगा। लेकिन उस दशा में अगर कुरैश जाति आपसे लड़ने के लिए तैयार हो जाय तो इसका इलजाम मुझ पर न होगा। हाँ, अगर जैनब मेरे साथ जायगी तो कुरैश के क्रोध का भाजन मैं हूँगा। आप और आपके मुरीदों पर कोई आफ़त न आयेगी।

हज० — तुम दबाव में आकर जैनब को खुदा की तरफ़ से फेरने का तो यत्न न करोगे ?

अबु० — मैं किसी के धर्म में विघ्न डालना लज्जाजनक समझता हूँ।

हज० — तुम्हें लोग जैनब को तलाक़ देने पर तो मजबूर न करेंगे ?

अबु० — मैं ज़ैनब को तलाक देने के पहले ज़िन्दगी को तलाक दे दूँगा।

हजरत को अबुलआस की बातों से इत्मीनान हो गया। आस को हरम में ज़ैनब से मिलने का अवसर मिला। आस ने पूछा — ज़ैनब, मैं तुम्हें साथ ले चलने आया हूँ। धर्म के बदलने से कहीं तुम्हारा मन तो नहीं बदल गया ?

ज़ैनब रोती हुई पति के पैरों पर गिर पड़ी और बोली — स्वामी, धर्म बार-बार मिलता है, हृदय केवल एक बार। मैं आपकी हूँ। चाहे यहाँ रहूँ, चाहे वहाँ। लेकिन समाज मुझे आपकी सेवा में रहने देगा ?

अबु० — यदि समाज न रहने देगा तो मैं समाज ही से निकल जाऊँगा। दुनिया में रहने के लिए बहुत स्थान है। रहा मैं, तुम खूब जानती हो कि किसी के धर्म में विघ्न डालना मेरे सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

ज़ैनब चली तो खुदैजा ने उसे बदलशर्तों के लालों का एक बहुमूल्य हार बिदाई में दिया।

५

इसलाम पर विधर्मियों के अत्याचार दिन-दिन बढ़ने लगे। अवहेलना की दशा से निकलकर उसने भय के क्षेत्र में प्रवेश किया। शत्रुओं ने उसे समूल नाश करने की आयोजना करना शुरू की। दूर-दूर के कबीलों से मदद माँगी गयी। इसलाम में इतनी शक्ति न थी कि शस्त्रबल से शत्रुओं को दबा सके। हजरत मुहम्मद ने अन्त को मक्का छोड़कर मदीने की राह ली। उनके कितने ही भक्तों ने उनके साथ हिजरत की। मदीने में पहुँचकर मुसलमानों में एक नयी शक्ति, एक नयी स्फूर्ति का उदय हुआ। वे निःशक होकर धर्म का पालन करने लगे। अब पड़ोसियों से दबने और छिपने की ज़रूरत न थी। आत्मविश्वास बढ़ा। इधर भी विधर्मियों का सामना करने की तैयारियाँ होने लगी।

एक दिन अबुलआस ने आकर स्त्री से कहा — ज़ैनब, हमारे नेताओं ने इसलाम पर जिहाद करने की घोषणा कर दी।

ज़ैनब ने धबराकर कहा — अब तो वे लोग यहाँ से चले गये फिर जिहाद की क्या ज़रूरत ?

अबु० — मक्का से चले गये, अरब से तो नहीं चले गये, उनकी ज़्यादातियाँ बढ़ती जा रही हैं। जिहाद के सिवा और कोई उपाय नहीं। मेरा उस जिहाद में शरीक होना बहुत ज़रूरी है।

जैन० — अगर तुम्हारा दिल तुम्हें मजबूर कर रहा है तो शौक से जाओ लेकिन मुझे भी साथ लेते चलो।

अबु० — अपने साथ ?

जैन० — हाँ, मैं वहाँ आहत मुसलमानों की सेवा-शुश्रूषा करूँगी।

अबु० — शौक से चलो।

६

घोर सग्राम हुआ। दोनों दलों ने खूब दिल के अरमान निकाले। भाई भाई से, मित्र मित्र से, बाप बेटे से लडा। सिद्ध हो गया कि धर्म का बन्धन रक्त और वीर्य के बन्धन से सुदृढ है।

दोनों दलवाले वीर थे। अन्तर यह था कि मुसलमानों में नया धर्मानुराग था, मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की आशा थी, दिलों में वह आत्मविश्वास था जो नवजात सम्प्रदायों का लक्षण है। विधर्मियों में बलिदान का यह भाव लुप्त था।

कई दिन तक लडाई होती रही। मुसलमानों की सख्या बहुत कम थी, पर अन्त में उनके धर्मोत्साह ने मैदान मार लिया। विधर्मियों में अधिकांश काम आये, कुछ घायल हुए और कुछ कैद कर लिये गये। अबुलआस भी इन्हीं क़ैदियों में थे।

जैनब को ज्योंही यह मालूम हुआ उसने हजरत मुहम्मद की सेवा में अबुलआस का फदिया (मुक्तिघन) भेजा। यह वही बहुमूल्य हार था, जो खुदैजा ने उसे दिया था। वह अपने पिता को उस धर्म-सकट में न डालना चाहती थी जो मुक्ति-घन के अभाव की दशा में उन पर पडता। हजरत ने यह हार देखा तो खुदैजा की याद ताजी हो गयी। मधुर स्मृतियों से चित्त चंचल हो उठा। अगर खुदैजा जीवित होती तो उसकी सिफारिश का असर उन पर इससे ज्यादा न होता जितना इस हार से हुआ, मानो स्वयं खुदैजा इस हार के रूप में आयी थी। अबुलआस के प्रति हृदय कोमल हो गया। उसे सजा दी गयी, यह हार ले लिया गया तो खुदैजा की आत्मा को कितना दुख होगा। उन्होंने क़ैदियों का फैसला करने के लिए एक पचायत नियुक्त कर दी थी। यद्यपि पचो में सभी हजरत के इष्ट-मित्र थे, पर इसलाम की शिक्षा उनके दिलों से पुरानी आदते, पुरानी चेष्टाएँ न मिटा सकी थी। उनमें अधिकांश ऐसे थे जिनको अबुलआस से पारिवारिक द्वेष था, जो उनसे किसी पुराने खून का बदला लेना चाहते थे। इसलाम ने उनमें क्षमा और अहिंसा के भावों को

अकुरित न किया हो, पर साम्यवाद को उनके रोम-रोम में प्रविष्ट कर दिया था। वे धर्म के विषय में किसी के साथ रू-रिआयत न कर सकते थे, चाहे वह हजरत का निकट सम्बन्धी ही क्यों न हो। अबुलआस सिर झुकाये पचो के सामने खड़े थे और कौदी पेश होते थे। उनके मुक्तिघन का मुलाहिजा होता था और वे छोड़ दिये जाते थे। अबुलआस को कोई पूछता ही न था, यद्यपि वह हार एक तश्तरी में पचों के सम्मुख रक्खा हुआ था। हजरत के मन में बार-बार प्रबल इच्छा होती थी कि सहाबियों से कहे यह हार कितना बहुमूल्य है। पर धर्म का बन्धन, जिसे उन्होंने स्वयं प्रतिष्ठित किया था, मुँह से एक शब्द भी न निकलने देता था। यहाँ तक कि समस्त बन्दीजन मुक्त हो गये, अबुलआस अकेला सिर झुकाये खड़ा रहा — हजरत मुहम्मद के दामाद के साथ इतना लिहाज भी न किया गया कि बैठने की आज्ञा तो दे दी जाती। सहसा जैद ने अबुलआस की ओर कटाक्ष करके कहा — देखा, खुदा इसलाम की कितनी हिमायत करता है। तुम्हारे पास हमसे पंचगुनी सेना थी, पर खुदा ने तुम्हारा मुँह काला किया। देखा या अब भी आँखें नहीं खुली ?

अबुलआस ने विरक्त भाव से उत्तर दिया — जब आप लोग यह मानते हैं कि खुदा सबका मालिक है तब वह अपने एक बन्दे को दूसरे की गर्दन काटने में मदद न देगा। मुसलमानों ने इसलिए विजय पायी कि गलत या सही उन्हें अटल विश्वास है कि मृत्यु के बाद हम स्वर्ग में जायेंगे। खुदा को आप नाहक बदनाम करते हैं।

जैद — तुम्हारा मुक्ति-घन काफी नहीं है।

अबुलआस — मैं इस हार को अपनी जान से ज्यादा कीमती समझता हूँ। मेरे घर में इससे बहुमूल्य और कोई वस्तु नहीं है।

जैद — तुम्हारे घर में जैनब हैं, जिन पर ऐसे सैकड़ों हार कुर्बान किये जा सकते हैं।

अबु० — तो आपकी मशा है कि मेरी बीवी मेरा फ़दिया हो। इससे तो यह कही बेहतर है कि मैं कत्ल कर दिया जाता। अच्छा अगर मैं वह फ़दिया न दूँ तो ?

जैद — तो तुम्हें आजीवन यहाँ गुलामों की तरह रहना पड़ेगा। तुम हमारे रसूल के दामाद हो, इस रिस्ते से हम तुम्हारा लिहाज करेंगे, पर तुम गुलाम ही समझे जाओगे।

हजरत मुहम्मद निकट बैठे हुए ये बातें सुन रहे थे। वे जानते थे जैनब और आस एक दूसरे पर जान देते हैं। उनका वियोग दोनों ही के लिए घातक होगा। दोनों धुल-धुलकर मर जायेंगे। सहाबियों को एक बार पच चुन लेने के बाद उनके

फ़ैसले में दखल देना नीति-विरुद्ध था। इससे इसलाम की मर्यादा भंग होती थी। कठिन आत्मवेदना हुई। यहाँ बैठे न रह सके। उठकर अन्दर चले गये। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि जैनब की गर्दन पर तलवार फेरी जा रही है। जैनब की दीन, करुणापूर्ण मूर्ति आँखों के सामने खड़ी मालूम होती थी। पर मर्यादा, निर्दय, निष्ठुर मर्यादा यह बलिदान माँग रही थी।

अबुलआस के सामने भी विषम समस्या थी। इधर गुलामी का अपमान था, उधर वियोग की दारुण वेदना थी।

अन्त में उन्होंने निश्चय किया, यह वेदना सहूँगा, अपमान न सहूँगा। प्रेम को गौरव पर समर्पित कर दूँगा। बोले — मुझे आपका फ़ैसला मज़ूर है। जैनब मेरा फदिया होगी।

७

निश्चय किया गया कि जैद अबुलआस के साथ जायें और आबादी से बाहर ठहरे। आस घर जाकर तुरन्त जैनब को वहाँ भेज दें। आस पर इतना विश्वास था कि वे अपना वचन पूरा करेंगे।

आस घर पहुँचे तो जैनब उनसे गले मिलने दौड़ी। आस हट गये और कातर स्वर से बोले — नहीं जैनब, मैं तुमसे गले न मिलूँगा। मैं तुम्हें अपने फदिये के रूप में दे आया। अब मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तुम्हारा हार है, ले लो, और फौरन यहाँ से चलने की तैयारी करो। जैद तुम्हें लेने को आये है।

जैनब पर वज्र-सी गिर पड़ा। पैर बँध गये, वही चित्र की भाँति खड़ी रह गयी। वज्र ने रक्त को जला दिया, आँसुओं को सुखा दिया, चेतना ही न रही, रोती और बिलखती क्या। एक क्षण के बाद उसने एक बार माथा ठोका—निर्दय तकदीर के सामने सिर झुका दिया। चलने को तैयार हो गयी। घोर नैराश्य इतना दुख-दायी नहीं होता जितना हम समझते हैं। उसमें एक रसहीन शान्ति होती है। जहाँ सुख की आशा नहीं वहाँ दुख का कष्ट कहाँ!

मदीने में रसूल की बेंटी की जितनी इज्जत होनी चाहिए उतनी होती थी। वह पितागृह की स्वामिनी थी। धन था, मान था, गौरव था, धर्म था, प्रेम न था। आँख में सब कुछ था, केवल पुतली न थी। पति के वियोग में रोया करती थी। जिन्दा थी मगर जिन्दा दरगोर। तीन साल तीन युगों की भाँति बीते। घण्टे, दिन और वर्ष साधारण व्यवहारों के लिए हैं, प्रेम के यहाँ समय का माप कुछ और ही है।

उधर अबुलआस द्विगुण उत्साह के साथ धनोपार्जन में लीन हुआ, महीनों

घर न आता, हँसना-बोलना सब भूल गया। घन ही उसके जीवन का एक मात्र आधार था; उसके प्रणय-वचित हृदय को किसी विस्मृतिकारक वस्तु की चाह थी। नैराश्य और चिन्ता बहुधा शराब से शान्त होती है, प्रेम उन्माद से। अबुलआस को धनोन्माद ही गया। घन के आवरण में छिपा हुआ वियोग-दुःख था, माया के पर्दे में छिपा हुआ प्रेम-वैराग्य।

जाड़ों के दिन थे। नाड़ियों में रुधिर जमा जाता था। अबुलआस मक्का से माल लादकर एक काफिले के साथ चला। रकफ़ों का एक दल भी साथ था। कुरैशियों ने मुसलमानों के कई काफिले लूट लिये थे। अबुलआस को सशय था कि मुसलमानों का आक्रमण होगा, इसलिए उन्होंने मदीने की राह छोड़कर एक दूसरा रास्ता अख्तियार किया। पर दुर्दैव, मुसलमानों को टोह मिल ही गयी। जैद ने सत्तर चुने हुए आदमियों के साथ काफिले पर घावा कर दिया। घन के भक्त धर्म के सेवकों से क्या बाजी ले जाते। सत्तर ने सात सौ को मार भगाया। कुछ मरे, अधिकांश भागे, कुछ कैद हो गये। मुसलमानों को अतुल घन हाथ लगा। कैदी घाते में मिले। अबुलआस फिर कैद हो गया।

८

कैदियों के भाग्य-निर्णय के लिए नीति के अनुसार पंचायत चुनी गयी।

जैनब को यह खबर मिली तो आशाएँ जाग उठी; आशा मरती नहीं केवल सौ जाती है। पिंजरे में बन्द पक्षी की भाँति तड़फड़ने लगी, पर क्या करे, किससे कहे, अबकी तो फ़दिये का भी कोई ठिकाना न था। या खुदा, क्या होगा !

पचो ने अबकी हज़रत मुहम्मद ही को अपना प्रधान बनाया। हज़रत ने इनकार किया, पर अन्त में उनके आग्रह से विवश हो गये।

अबुलआस सिर झुकाये बैठे हुए थे। हज़रत ने एक बार उन पर करुणासूचक दृष्टि डाली, फिर सिर झुका लिया।

पंचायत शुरू हुई। अन्य कैदियों के घरों से मुक्तिघन आ गया था। वे मुक्त किये गये। अबुलआस के घर से मुक्तिघन न आया था। हज़रत ने हुक्म दिया — इनका सारा माल और असबाब जब्त कर लिया जाय और ये उस वक़्त तक बन्दी रहे जब तक इन्हें कोई छुड़ाने न आये। उनके अंतिम शब्द ये थे — अबुलआस, इसलाम की रणनीति के अनुसार तुम गुलाम हो। तुम्हें बाज़ार में बेचकर रुपया

मुसलमानो मे तकसीम होना चाहिए था। पर तुम ईमानदार आदमी हो, इसलिए तुम्हारे साथ इतनी रियायत की गयी।

• जैनब दरवाजे के पास आड मे बैठी हुई थी। हजरत का यह फ़ैसला सुनकर रो पडी, तब घर से बाहर निकल आयी और अबुलआस का हाथ पकडकर-बोली — अगर मेरा शौहर गुलाम है तो मै उसकी लौडी हूँ। हम दोनो साथ बिकेगे या साथ कैद होंगे।

हजरत — जैनब, मुझे लज्जित मत करो, मैं वही कर रहा हूँ जो मेरा कर्तव्य है; न्याय पर बैठनेवाले मनुष्य को प्रेम और द्वेष दोनो ही से मुक्त होना चाहिए। यद्यपि इस नीति का सस्कार मैने ही किया है, पर अब मै उसका स्वामी नहीं, दास हूँ। अबुलआस से मुझे जितना प्रेम है यह खुदा के सिवा और कोई नहीं जान सकता। यह हुक्म देते हुए मुझे जितना मानसिक और आत्मिक कष्ट हो रहा है उसका अनुमान हर एक पिता कर सकता है। पर खुदा का रसूल न्याय और नीति को अपने व्यक्तिगत भावो से कलकित नहीं कर सकता।

सहाबियो ने हजरत की न्याय-न्याख्या सुनी तो मुग्ध हो गये। अबूजफर ने अर्ज की — हजरत, आपने अपना फ़ैसला सुना दिया, लेकिन हम सब इस विषय में सहमत है कि अबुलआस जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए यह दण्ड न्यायोचित होते हुए भी अति कठोर है और हम सर्वसम्मति से उसे मुक्त करते है और उसका लूटा हुआ धन लौटा देने की आज्ञा माँगते है।

अबुलआस हजरत मुहम्मद की न्यायपरायणता पर चकित हो गये। न्याय का इतना ऊँचा आदर्श! मर्यादा का इतना महत्व! आह, नीति पर अपना सन्तान-प्रेम तक न्यौछावर कर दिया! महात्मा, तुम धन्य हो। ऐसे ही ममता-हीन सद्पुरुषो से ससार का कल्याण होता है। ऐसे ही नीतिपालको के हाथो जातियाँ बनती है, सम्यताएँ परिष्कृत होती है।

मक्के आकर अबुलआस ने अपना हिसाब-किताब साफ़ किया, लोगों के माल लौटाये, ऋण चुकाये, और घर-बार त्यागकर हजरत मुहम्मद की सेवा मे पहुँच गये।

जैनब की मुराद पूरी हुई।

मंदिर और मसजिद

चौधरी इतरतअली 'कडे' के बड़े जागीरदार थे। उनके बुजुर्गों ने शाही जमाने में अंग्रेजी सरकार की बड़ी-बड़ी खिदमते की थी। उनके बदले में यह जागीर मिली थी। अपने सुप्रबन्ध से उन्होंने अपनी मिल्कियत और भी बढ़ा ली थी और अब उस इलाके में उनसे ज्यादा धनी-मानी कोई आदमी न था। अंग्रेज हुक्काम जब इलाके में दौरा करने जाते तो चौधरी साहब की मिर्जाजपुरसी के लिए जरूर आते थे। मगर चौधरी साहब खुद किसी हाकिम को सलाम करने न जाते, चाहे वह कमिश्नर ही क्यों न हो। उन्होंने कचहरियों में न जाने का बत-सा कर लिया था। किसी इजलास-दरबार में भी न जाते थे। किसी हाकिम के सामने हाथ बाँधकर खड़ा होना और उसकी हर एक बात पर 'जी हुजूर' करना अपनी शान के खिलाफ समझते थे। वह यथासाध्य किसी मामले-मुकदमे में न पड़ते थे, चाहे अपना नुकसान ही क्यों न होता हो। यह काम सोलहो आने मुखतारो के हाथ में था, वे एक के सौ करे या सौ का एक। फारसी और अरबी के आलिम थे, शरा के बड़े पाबंद, सूद को हाराम समझते, पाँचों वक्त की नमाज अदा करते, तीसो रोज़े रखते और नित्य कुरान की तलावत (पाठ) करते थे। मगर धार्मिक संकीर्णता कहीं छू तक नहीं गयी थी। प्रातःकाल गंगा-स्नान करना उनका नित्य का नियम था। पानी बरसे, पाला पड़े, पर पाँच बजे वह कोस भर चलकर गंगा तट पर अवश्य पहुँच जाते। लौटते वक्त अपनी चाँदी की सुराही गंगाजल से भर लेते और हमेशा गंगाजल पीते। गंगाजल के सिवा वह और कोई पानी पीते ही न थे। शायद कोई योगी-यती भी गंगाजल पर इतनी श्रद्धा न रखता होगा। उनका सारा घर, भीतर से बाहर तक, सातवे दिन गऊ के गोबर से लीपा जाता था। इतना ही नहीं, उनके यहाँ बगीचे में एक पण्डित बारहो मास दुर्गा पाठ भी किया करते थे। साधु-सन्ध्यासियों का आदर-सत्कार तो उनके यहाँ जितनी उदारता और भक्ति से किया जाता था, उस पर राजों को भी आश्चर्य होता था। यो कहिए कि सदाव्रत चलता था। उधर मुसलमान फकीरों का खाना बावर्चीखाने में पकता था और कोई सौ-सवा सौ आदमी नित्य एक दस्तरखान पर खाते थे। इतना दान-पुण्य करने पर भी

उन पर किसी महाजन का एक कौड़ी का भी कर्ज न था। नीयत की कुछ ऐसी बरकत थी कि दिन-दिन उन्नति ही होती थी। उनकी रियासत में आम हुकम था कि मुर्दों को जलाने के लिए, किसी यज्ञ या भोज के लिए, शादी-ब्याह के लिए सरकारी जंगल से जितनी लकड़ी चाहिए काट लो। चौधरी साहब से पूछने की जरूरत न थी। हिंदू असामियों की बारात में उनकी ओर से कोई न कोई जरूर शरीक होता था। नवेद के रूपये बँधे हुए थे, लड़कियों के विवाह में कन्यादान के रूपये मुकर्ररं थे, उनको हाथी, घोड़े, तबू, शामियाने, पालकी-नालकी, फर्श-जाजिमे, पक्के-चँवर, चाँदी के महफिली सामान उसके यहाँ से बिना किसी दिक्कत के मिल जाते थे, माँगने भर की देर रहती थी। इस दानी, उदार, यशस्वी आदमी के लिए प्रजा भी प्राण देने को तैयार रहती थी।

२

चौधरी साहब के पास एक राजपूत चपरासी था भजनसिंह। पूरे छः फुट का जवान था, चौड़ा सीना, बाने का लठैत, सैकड़ों के बीच से मारकर निकल आनेवाला। उसे भय तो छू भी नहीं गया था। चौधरी साहब को उस पर असीम विश्वास था, यहाँ तक कि हज करने गये तो उसे भी साथ लेते गये थे। उनके दुश्मनों की कमी न थी, आस-पास के सभी जमींदार उनकी शक्ति और कीर्ति से जलते थे। चौधरी साहब के खौफ के मारे वे अपने असामियों पर मनमाना अत्याचार न कर सकते थे, क्योंकि वह निबलों का पक्ष लेने के लिए सदा तैयार रहते थे। लेकिन भजनसिंह साथ ही, तो उन्हें दुश्मन के द्वार पर भी सोने में कोई शका न थी। कई बार ऐसा हुआ कि दुश्मनो ने उन्हें घेर लिया और भजनसिंह अकेला जान पर खेलकर उन्हें वेदाग निकाल लाया। ऐसा आग में कूद पडनेवाला आदमी भी किसी ने कम देखा होगा। वह कहीं बाहर जाता तो जब तक खैरियत से घर न पहुँच जाय, चौधरी साहब को शका बनी रहती थी कि कहीं किसी से लड़ न बैठा हो। बस पालतू मेढे की-सी दशा थी, जो जंजीर से छूटते ही किसी न किसी से टक्कर लेने दौड़ता है। तीनों लोक में चौधरी साहब के सिवा उसकी निगाही में और कोई था ही नहीं। बादशाह कहो, मालिक कहो, देवता कहो, जो कुछ थे चौधरी साहब थे।

मुसलमान लोग चौधरी साहब से जला करते थे। उनका खयाल था कि वह अपने दीन से फिर गये हैं। ऐसा विचित्र जीवन-सिद्धांत उनकी समझ में क्योंकर आता। मुसलमान, अगर सच्चा मुसलमान है तो गगाजल क्यों पिये, साधुओ का

आदर-सत्कार क्यों करे, दुर्गापाठ क्यों करावे ? मुल्लाओं में उनके खिलाफ हँडिया पकती रहती थी और हिन्दुओं को ज़क देने की तैयारियाँ होती रहती थी। आखिर यह राय तय पायी कि ठीक जन्माष्टमी के दिन ठाकुरद्वारे पर हमला किया जाय और हिन्दुओं का सिर नीचा कर दिया जाय, दिखा दिया जाय कि चौधरी साहब के बल पर फूले-फूले फिरना तुम्हारी भूल है। चौधरी साहब कर ही क्या लेंगे। अगर उन्होंने हिन्दुओं की हिमायत की, तो उनकी भी खबर ली जायगी, सारा हिन्दूपन निकल जायगा।

३

अँधेरी रात थी, कड़े के बड़े ठाकुरद्वारे में कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। एक वृद्ध महात्मा पोपले मुँह से तबूरे पर ध्रुपद अलाप रहे थे और भक्त-जन ढोल-मजीरे लिये बैठे थे कि इनका गाना बद हो, तो हम अपना कीर्तन शुरू करें। भडारी प्रसाद बना रहा था। सैकड़ों आदमी तमाशा देखने के लिए जमा थे।

सहसा मुसलमानों का एक दल लाठियाँ लिये हुए आ पहुँचा, और मंदिर पर पत्थर बरसाना शुरू किया। शोर मच गया — पत्थर कहाँ से आते हैं ! ये पत्थर कौन फेंक रहा है ! कुछ लोग मंदिर के बाहर निकलकर देखने लगे। मुसलमान लोग तो घात में बैठे ही थे, लाठियाँ जमानी शुरू की। हिन्दुओं के हाथ में उस समय ढोल-मजीरे के सिवा और क्या था। कोई मंदिर में आ छिपा, कोई किसी दूसरी तरफ भागा। चारों तरफ शोर मच गया।

चौधरी साहब को भी खबर हुई। भजनसिंह से बोले — ठाकुर, देखो तो क्या शोर-गुल है ? जाकर बदमाशों को समझा दो और न माने तो दो-चार हाथ चला भी देना, मगर खून-खच्चर न होने पाये।

ठाकुर यह शोर-गुल सुन-सुनकर दाँत पीस रहे थे, दिरु पर पत्थर की सिल रक्खे बैठे हुए थे। यह आदेश सुना तो मुँहमाँगी मुराद पायी। शत्रु-भजन डडा कंधे पर रक्खा और लपके हुए मंदिर पहुँचे। वहाँ मुसलमानों ने घोर उपद्रव मचा रक्खा था। कई आदमियों का पीछा करते हुए मंदिर में घुस गये थे, और शीशे के सामान तोड़-फोड़ रहे थे।

ठाकुर की आँखों में खून उतर आया, सिर पर खून सवार हो गया। ललकारते हुए मंदिर में घुस गया और बदमाशों को पीटना शुरू किया। एक तरफ तो वह अकेला और दूसरी तरफ पचासों आदमी ! लेकिन बाह रे शेर ! अकेले सबके

छक्के छुड़ा दिये, कई आदमियों को मार गिराया। गुस्से में उसे इस वक़्त कुछ न सूझता था, किसी के मरने-जीने की परवा न थी। मालूम नहीं, उसमें इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी थी। उसे ऐसा जान पड़ता था कि कोई दैवी शक्ति मेरी मदद कर रही है। कृष्ण भगवान स्वयं उसकी रक्षा करते हुए मालूम होते थे। धर्म-संग्राम में मनुष्यों से अलौकिक काम हो जाते हैं।

उधर ठाकुर के चले आने के बाद चौधरी साहब को भय हुआ कि कहीं ठाकुर किसी का खून न कर डाले, उसके पीछे खुद भी मंदिर में आ पहुँचे। देखा तो कुहराम मचा हुआ है। बदमाश लोग अपनी जान ले-लेकर बेतहाशा भागे जा रहे हैं, कोई पड़ा कराह रहा है, कोई हाय-हाय कर रहा है। ठाकुर को पुकारना ही चाहते थे कि सहसा एक आदमी भागा हुआ आया और उनके सामने आता-आता ज़मीन पर गिर पड़ा। चौधरी साहब ने उसे पहचान लिया, और दुनिया उनकी आँखों में अँधेरी हो गयी। यह उनका इकलौता दामाद और उनकी जायदाद का वारिस शाहिद हुसेन था !

चौधरी ने दौड़कर शाहिद को सँभाला और जोर से बोले — ठाकुर, इधर आओ — लालटेन लालटेन ! आह, यह तो मेरा शाहिद है !

ठाकुर के हाथ-पाँव फूल गये। लालटेन लेकर बाहर निकले। शाहिद हुसेन ही थे। उनका सिर कट गया था और रक्त उछलता हुआ निकल रहा था।

चौधरी ने सिर पीटते हुए कहा — ठाकुर, तुमने तो मेरा चिराग ही गुल कर दिया।

ठाकुर ने थरथर काँपते हुए कहा — मालिक, भगवान जानते हैं, मैंने पहचाना नहीं।

चौधरी — नहीं, मैं तुम्हारे ऊपर इलज़ाम नहीं रखता। भगवान के मंदिर में किसी को घुसने का अख़्तियार नहीं है। अफ़सोस यही है कि खानदान का निशान मिट गया, और तुम्हारे हाथों ! तुमने मेरे लिए हमेशा अपनी जान हथेली पर रक्खी, और खुदा ने तुम्हारे ही हाथों मेरा सत्यानास करा दिया।

चौधरी साहब रोते जाते थे और ये बातें कहते जाते थे। ठाकुर ग्लानि और पश्चात्ताप से गड़ा जाता था। अगर उसका अपना लडका मारा गया होता, तो उसे इतना दुःख न होता। आह ! मेरे हाथों मेरे मालिक का सर्वनाश हुआ ! जिसके पसीने की जगह वह खून बहाने को तैयार रहता था, जो उसका स्वामी ही नहीं, इष्ट था, जिसके ज़रा-से इशारे पर वह आग में कूद सकता था, उसी के वश

की उसने जड काट दी ! वह उसकी आस्तीन का साँप निकला ! हँसे हुए कठ से बोला — सरकार, मुझसे बढ़कर अभागा और कौन होगा। मेरे मुँह मे कालिख लग गयी।

यह कहते-कहते ठाकुर ने कमर से छुरा निकाल लिया। वह अपनी छाती में छुरा खोंसकर कालिमा को रक्त से धोना ही चाहते थे कि चौधरी साहब ने लपककर छुरा उनके हाथों से छीन लिया और बोले — क्या करते हो, होश सँभालो। ये तकदीर के करिश्मे हैं, इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं। खुदा को जो मजूर था वह हुआ। मैं अगर खुद शैतान के बहकाने में आकर मंदिर में घुमता और देवता की तौहीन करता, और तुम मुझे पहचानकर भी कत्ल कर देते, तो मैं अपना खून माफ कर देता। किसी के दीन की तौहीन करने से बड़ा और कोई गुनाह नहीं है। गो इस वक़्त मेरा कलेजा फटा जाता है, और यह सदमा मेरी जान ही लेकर छोड़ेगा, पर खुदा गवाह है कि मुझे तुमसे जरा भी मलाल नहीं है। तुम्हारी जगह मैं होता, तो मैं भी यही करता, चाहे मेरे मालिक का बेटा ही क्यों न होता। घरवाले मुझे तानों से छेदेगे, लड़की रो-रोकर मुझसे खून का बदला माँगेगी, सारे मुसलमान मेरे खून के प्यासे हो जायेंगे, मैं काफिर और बेदीन कहा जाऊँगा, शायद कोई दीन का पक्का नौजवान मुझे कत्ल करने पर भी तैयार हो जाय, लेकिन मैं हक से मुँह न मोड़ूँगा। अँधेरी रात है, इसी दम यहाँ से भाग जाओ, और मेरे इलाके में किसी छावनी में छिप जाओ। वह देखो, कई मुसलमान चले आ रहे हैं — मेरे घरवाले भी हैं — भागो, भागो !

४

साल भर भजनसिंह चौधरी साहब के इलाके में छिपा रहा। एक ओर मुसलमान लोग उसकी टोह में लगे रहते थे, दूसरी ओर पुलिस। लेकिन चौधरी उसे हमेशा छिपाते रहते थे। अपने समाज के ताने सहे, अपने घरवालों का तिरस्कार सहा, पुलिस के वार सहे, मुल्लाओं की धमकियाँ सही, पर भजनसिंह की खबर किसी को कानों-कान न होने दी। ऐसे वफादार स्वामिभक्त सेवक को वह जीते जी निर्दय कानून के पंजे में न देना चाहते थे। उनके इलाके की छावनियों में कई बार तन्नाशियाँ हुई, मुल्लाओं ने घर के नौकरो, मामाओ, लौडियों को मिलाया। लेकिन चौधरी ने ठाकुर को अपने एहसानों की भाँति छिपाये रक्खा।

लेकिन ठाकुर को अपने प्राणों की रक्षा के लिए चौधरी साहब को सकट में

पड़े देखकर असह्य वेदना होती थी। उसके जी में बार-बार आता था, चलकर मालिक से कह दूँ — मुझे पुलिस के हवाले कर दीजिए। लेकिन चौधरी साहब बार-बार उसे छिपे रहने की ताकीद करते रहते थे।

जाड़ो के दिन थे। चौधरी साहब अपने इलाके का दौरा कर रहे थे। अब वह मकान पर बहुत कम रहते थे। घरवालों के शब्द-बाणों से बचने का यही उपाय था। रात को खाना खाकर लेटे ही थे कि भजनसिंह आकर सामने खड़ा हो गया। उसकी सूरत इतनी बदल गयी थी कि चौधरी साहब देखकर चौक पड़े। ठाकुर ने कहा — सरकार अच्छी तरह है ?

चौधरी — हाँ, खुदा का फजल है। तुम तो बिलकुल पहचाने ही नहीं जाते। इस वक्त कहाँ से आ रहे हो ?

ठाकुर — मालिक, अब तो छिपकर नहीं रहा जाता। हुकम हो तो जाकर अदालत में हाजिर हो जाऊँ। जो भाग्य में लिखा होगा, वह होगा। मेरे कारन आपको इतनी हैरानी हो रही है, यह मुझसे नहीं देखा जाता।

चौधरी — नहीं ठाकुर, मेरे जीते-जी नहीं। तुम्हें जान-बूझकर भाड के मुँह में नहीं डाल सकता। पुलिस अपनी मर्जी के माफिक शहादते बना लेगी, और मुफ्त में तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा। तुमने मेरे लिए बड़े-बड़े खतरे सहे हैं। अगर मैं तुम्हारे लिए इतना भी न कर सकूँ, तो मुझसे बढ़कर एहसानफरामोश और कौन होगा ? इस बारे में अब फिर मुझसे कुछ मत कहना।

ठाकुर — कही किसी ने सरकार

चौधरी — इसका बिलकुल गम न करो। जब तक खुदा को मंजूर न होगा, कोई मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। तुम अब जाओ, यहाँ ठहरना खतरनाक है।

ठाकुर — सुनता हूँ, लोगो ने आपसे मिलना-जुलना छोड़ दिया है।

चौधरी — दुश्मनों का दूर रहना ही अच्छा।

लेकिन ठाकुर के दिल में जो बात जम गयी थी, वह न निकली। इस मुलाक़ात ने उसका इरादा और भी पक्का कर दिया। इन्हें मेरे कारन यो मारे-मारे फिरना पड़ रहा है। यहाँ इनका कौन अपना बैठा हुआ है ? जो चाहे आकर हमला कर सकता है। मेरी इस जिदगानी को धिक्कार !

प्रातःकाल ठाकुर जिला हाकिम के बँगले पर पहुँचा। साहब ने पूछा — तुम अब तक चौधरी के कहने से छिपा था ?

ठाकुर — नहीं हज़ूर, अपनी जान के ख़ौफ़ से ।

५

चौधरी साहब ने यह ख़बर सुनी, तो सन्नाटे में आ गये। अब क्या हो ? अगर मुकदमे की पैरवी न की गयी तो ठाकुर का बचना मुश्किल है। पैरवी करते हैं, तो इसलामी दुनिया में तहलका पड़ जाता है। चारों तरफ़ से फतवे निकलने लगेंगे। उधर मुसलमानों ने ठान ली कि इसे फाँसी दिलाकर ही छोड़ेंगे। आपस में चढ़ा किया गया। मुल्लाओं ने मसजिद में चढ़े की अपील की, द्वार-द्वार झोली बाँधकर घूमें। इस पर कौमी मुकदमे का रंग चढ़ाया गया। मुसलमान वकीलों को नाम लूटने का मौका मिला। आसपास के जिलों से जिहाद में शरीक होने के लिए आने लगे।

चौधरी साहब ने भी पैरवी करने का निश्चय किया, चाहे कितनी ही आपत्तें क्यों न सिर पर आ पड़े। ठाकुर उन्हें इसाफ़ की निगाह में बेकसूर मालूम होता था और बेकसूर की रक्षा करने में उन्हें किसी का ख़ौफ़ न था। घर से निकल खड़े हुए और शहर में जाकर डेरा जमा दिया।

छः महीने तक चौधरी साहब ने जान लड़ाकर मुकदमे की पैरवी की। पानी की तरह रुपये बहाये, आँधी की तरह दौड़े। वह सब किया जो जिन्दगी में कभी न किया था, और न पीछे कभी किया। अहलकारों की खुशामदे की, वकीलों के नाज़ उठाये, हाकिमों को नज़रे दी और ठाकुर को छुड़ा लिया। सारे इलाके में धूम मच गयी। जिसने सुना, दग रह गया। इसे कहते हैं शराफत ! अपने नौकर को फाँसी से उतार लिया।

लेकिन साम्प्रदायिक द्वेष ने इस सत्कार्य को और ही आँखों से देखा — मुसलमान झल्लाये, हिन्दुओं ने बगले बजायी। मुसलमान समझे, इनकी रहीं-सही मुसलमानी भी गायब हो गयी। हिन्दुओं ने खयाल किया, अब इनकी शुद्धि कर लेनी चाहिए, इसका मौका आ गया। मुल्लाओं ने और जोर-शोर से तबलीग की हाँक लगानी शुरू की, हिन्दुओं ने भी संगठन का झंडा उठाया। मुसलमानों की मुसलमानी जाग उठी और हिन्दुओं का हिंदुत्व। ठाकुर के कदम भी इस रेले में उखड़ गये। मनचले थे ही, हिन्दुओं के मुखिया बन बैठे। जिन्दगी में कभी एक लोटा जल तक शिव को न चढ़ाया था, अब देवी-देवतों के नाम पर लठ चलाने के लिए उद्यत हो गये। शुद्धि करने को कोई मुसलमान न मिला, तो दो-एक चमारों ही की शुद्धि करा

डाली। चौधरी साहब के दूसरे नौकरों पर भी असर पडा; जो मुसलमान कभी मसजिद के सामने खडे न होते थे, वे पाँचों वक्त की नमाज अदा करने लगे, जो हिन्दू कभी मदिरा मे झाँकते भी न थे, वे दोनो वक्त सध्या करने लगे।

वस्ती मे हिन्दुओ की सख्या अधिक थी। उस पर ठाकुर भजनसिंह बने उनके मुखिया, जिनकी लाठी का लोहा सब मानते थे। पहले मुसलमान, सख्या में कम होने पर भी, उन पर गालिब रहते थे, क्योंकि वे सगठित न थे, लेकिन अब वे सगठित हो गये थे, भला मुट्ठी भर मुसलमान उनके सामने क्या ठहरते।

एक साल और गुजर गया। फिर जन्माष्टमी का उत्सव आया। हिन्दुओं को अभी तक अपनी हार भूली न थी। गुप्त रूप से बराबर तैयारियाँ होती रहती थी। आज प्रातःकाल ही से भक्त लोग मंदिर मे जमा होने लगे। सबके हाथो मे लाठियाँ थी, कितने ही आदमियो ने कमर में छुरे छिपा लिये थे। छेडकर लडने की राय पक्की हो गयी थी। पहले कभी इस उत्सव मे जुलूस न निकला था। आज घूम-धाम से जुलूस भी निकलने की ठहरी।

दीपक जल चुके थे। मसजिदो मे शाम की नमाज होने लगी थी। जुलूस निकला। हाथी, घोडे, झडे-झडियाँ, बाजे-गाजे, सब साथ थे। आगे-आगे भजनसिंह अपने अखाडे के पट्ठों को लिये अकडते चले जाते थे।

जुमा मसजिद सामने दिखायी दी। पट्ठो ने लाठियाँ सँभाली, सब लोग सतर्क हो गये। जो लोग इधर-उधर बिखरे हुए थे, आकर सिमट गये। आपस में कुछ काना-फूसी हुई। बाजे और जोर से बजने लगे। जयजयकार की ध्वनि और जोर से उठने लगी। जुलूस मसजिद के सामने आ पहुँचा।

सहसा एक मुसलमान ने मसजिद से निकलकर कहा — नमाज का वक्त है, बाजे बंद कर दो।

भजनसिंह — बाजे न बंद होंगे।

मुसलमान — बंद करने पड़ेगे।

भजनसिंह — तुम अपनी नमाज क्यों नहीं बंद कर देते ?

मुसलमान — चौधरी साहब के बल पर मत फूलना। अबकी होश ठडे हो जायँगे।

भजनसिंह — चौधरी साहब के बल पर तुम फूलो, यहाँ अपने ही बल का भरोसा है। यह धर्म का मामला है।

इतने मे कुछ और मुसलमान निकल आये, और बाजे बंद करने का आग्रह करने

लगे, इधर और जोर से बाजे बजने लगे। बात बढ़ गयी। एक मौलवी ने भजन मिह को काफिर कह दिया। ठाकुर ने उसकी दाढी पकड़ ली। फिर क्या था। सूरमा लोग निकल पड़े, मार-पीट शुरू हो गयी। ठाकुर हल्ला मारकर मसजिद में घुस गये, और मसजिद के अंदर मार-पीट होने लगी। यह नहीं कहा जा सकता कि मैदान किसके हाथ रहा। हिन्दू कहते थे, हमने खदेड़-खदेड़कर मारा, मुसलमान कहते थे, हमने वह मार मारी कि फिर सामने नहीं आयेंगे। पर इन विवादों के बीच में एक बात सब मानते थे, और वह थी ठाकुर भजनसिंह की अलौकिक वीरता। मुसलमानों का कहना था कि ठाकुर न होता तो हम किसी को जिन्दा न छोड़ते, हिन्दू कहते थे कि ठाकुर सचमुच महावीर का अवतार है। इसकी लाठियों ने उन सबों के छक्के छुड़ा दिये।

उत्सव समाप्त हो चुका था। चौधरी साहब दीवानखाने में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। उनका मुख लाल था, त्योंरियाँ चड़ी हुई थी और आँखों से चिनगारियाँ-सी निकल रही थी। 'खुदा का घर' नापाक किया गया ! यह खयाल रह-रहकर उनके कलेजे को मसोसता था।

खुदा का घर नापाक किया गया ! ज्वालियों को लड़ने के लिए क्या नीचे मैदान में जगह काफी न थी ! खुदा के पाक घर में यह खून-खच्चर ! मसजिद की यह बेहुरमती ! मंदिर भी खुदा का घर है और मसजिद भी। मुसलमान किसी मंदिर को नापाक करने के लिए जिस सजा के लायक है, क्या हिन्दू मसजिद को नापाक करने के लिए उसी सजा के लायक नहीं ?

और यह हरकत ठाकुर ने की ! इसी कसूर के लिए तो उसने मेरे दामाद को कल किया था। मुझे मालूम होता कि उसके हाथों ऐसा फेल होगा, तो उसे फाँसी पर चढ़ने देता। क्यों उसके लिए इतना हैरान, इतना बदनाम, इतना ज़ेरबार होता। ठाकुर मेरा बफादार नौकर है। उसने बारहा मेरी जान बचायी है। मेरे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार रहता है। लेकिन आज उसने खुदा के घर को नापाक किया है, और उसे इसकी सजा मिलनी चाहिए। इसकी सजा क्या है ? जहन्नुम ! जहन्नुम की आग के सिवा इसकी और कोई सजा नहीं है। जिसने खुदा के घर को नापाक किया, उसने खुदा की तौहीन की। खुदा की तौहीन !

सहसा ठाकुर भजनसिंह आकर खड़े हो गये।

चौधरी साहब ने ठाकुर को क्रोधोन्मत्त आँखों से देखकर कहा — तुम मसजिद में घुसे थे ?

भजनसिंह — सरकार, मौलवी लोग हम लोगो पर टूट पड़े।

चौधरी — मेरी बात का जवाब दो जी — तुम मसजिद मे घुसे थे ?

भजनसिंह — जब उन लोगों ने मसजिद के भीतर से हमारे ऊपर पत्थर फेंकना शुरू किया तब हम लोग उन्हें पकड़ने के लिए मसजिद मे घुस गये।

चौधरी — जानते हो, मसजिद खुदा का घर है ?

भजनसिंह — जानता हूँ हुजूर, क्या इतना भी नहीं जानता।

चौधरी — मसजिद खुदा का वैसा ही पाक घर है, जैसे मदिर।

भजनसिंह ने इसका कुछ जवाब न दिया।

चौधरी — अगर कोई मुसलमान मदिर को नापाक करने के लिए गर्दनजदनी है तो हिन्दू भी मसजिद को नापाक करने के लिए गर्दनजदनी है।

भजनसिंह इसका भी कुछ जवाब न दे सका। उसने चौधरी साहब को कभी इतने गुस्से मे न देखा था।

चौधरी — तुमने मेरे दामाद को कत्ल किया, और मैंने तुम्हारी पैरवी की। जानते हो क्यों ? इसलिए कि मैं अपने दामाद को उस सजा के लायक समझता था जो तुमने उसे दी। अगर तुमने मेरे बेटे को, या मुझे को, उस कसूर के लिए मार डाला होता तो मैं तुमसे खून का बदला न माँगता। वही कसूर आज तुमने किया है। अगर किसी मुसलमान ने मसजिद मे तुम्हें जहन्नुम मे पहुँचा दिया होता तो मुझे सच्ची खुशी होती। लेकिन तुम बेइयाओ की तरह वहाँ से बचकर निकल आये। क्या तुम समझते हो खुदा तुम्हें इस फेल की सजा न देगा ? खुदा का हुक्म है कि जो उसकी तौहीन करे, उसकी गर्दन मार देनी चाहिए। यह हर एक मुसलमान का फर्ज है। चोर अगर सजा न पावे तो क्या वह चोर नहीं है ? तुम मानते हो या नहीं कि तुमने खुदा की तौहीन की ?

ठाकुर इस अपराध से इनकार न कर सके। चौधरी साहब के सत्सग ने हठधर्मी को दूर कर दिया था। बोले — हाँ साहब, यह कसूर तो हो गया।

चौधरी — इसकी जो सजा तुम दे चुके हो, वह सजा खुद लेने के लिए तैयार हो ?

ठाकुर — मैंने जान-बूझकर तो दूल्हा भियाँ को नहीं मारा था।

चौधरी — तुमने न मारा होता, तो मैं अपने हाथों से मारता, समझ गये ! अब मैं तुमसे खुदा की तौहीन का बदला लूँगा। बोलो मेरे हाथो चाहते हो या अदालत के हाथों। अदालत से कुछ दिनों के लिए सजा पा जाओगे। मैं क्रल करूँगा। तुम मेरे दोस्त हो, मुझे तुमसे मुतलक कीना नहीं है। मेरे दिल को कितना

रज है, यह खुदा के सिवा और कोई नहीं जान सकता। लेकिन मैं तुम्हें कल्ल करूंगा। मेरे दीन का यह हुक्म है।

यह कहते हुए चौधरी साहब तलवार लेकर ठाकुर के सामने खड़े हो गये। विचित्र दृश्य था। एक बूढ़ा आदमी, सिर के बाल पके, कमर झुकी, तलवार लिये एक देव के सामने खड़ा था। ठाकुर लाठी के एक ही वार से उनका काम तमाम कर सकता था। लेकिन उसने सिर झुका दिया। चौधरी के प्रति उसके रोम-रोम में श्रद्धा थी। चौधरी साहब अपने दीन के इतने पक्के हैं, इसकी उसने कभी कल्पना तक न की थी। उसे शायद धोखा हो गया था कि यह दिल से हिंदू है। जिस स्वामी ने उसे फाँसी से उतार लिया, उसके प्रति हिंसा या प्रतिकार का भाव उसके मन में क्योंकर आता? वह दिलेर था, और दिलेरो की भाँति निष्कपट था। उसे इस समय क्रोध न था, परचात्ताप था। मरने का भय न था, दुख था।

चौधरी साहब ठाकुर के सामने खड़े थे। दीन कहता था—मारो। सज्जनता कहती थी—छोड़ो। दीन और धर्म में सघर्ष हो रहा था।

ठाकुर ने चौधरी का असमजस देखा। गद्गद कंठ से बोला—मालिक, आपकी दया मुझ पर हाथ न उठाने देगी। अपने पाले हुए सेवक को आप मार नहीं सकते। लेकिन यह सिर आपका है, आपने इसे बचाया था, आप इसे ले सकते हैं, यह मेरे पास आपकी अमानत थी। वह अमानत आपको मिल जायगी। सबेरे मेरे घर किसी को भेजकर मँगवा लीजिएगा। यहाँ दूंगा, तो उपद्रव खड़ा हो जायगा। घर पर कौन जानेगा, किसने मारा। जो भूल-चूक हुई हो, क्षमा कीजिएगा।

यह कहता हुआ ठाकुर वहाँ से चला गया।

—माधुरी, अप्रैल १९२५

प्रेम-सूत्र

संसार में कुछ ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिन्हें दूसरों के मुख से अपनी स्त्री की सौंदर्य-प्रशंसा सुनकर उतना ही आनन्द होता है जितना अपनी कीर्ति की चर्चा सुनकर। पश्चिमी सभ्यता के प्रसार के साथ ऐसे प्राणियों की संख्या बढ़ती जा रही है। पशुपतिनाथ वर्मा इन्हीं लोगों में थे। जब लोग उनकी परम सुन्दरी स्त्री की तारीफ़ करते हुए कहते — ओहो! कितनी अनुपम रूप-राशि है, कितना अलौकिक सौन्दर्य है, तब वर्माजी मारे खुशी और गर्व के फूल उठते थे।

सन्ध्या का समय था। मोटर तैयार खड़ी थी। वर्माजी सैर करने जा रहे थे, किन्तु प्रभा जाने को उत्सुक नहीं मालूम होती थी। वह एक कुर्सी पर बैठी हुई कोई उपन्यास पढ़ रही थी।

वर्माजी ने कहा — तुम तो अभी तक बैठी पढ़ रही हो ?

‘मेरा तो इस समय जाने को जी नहीं चाहता।’

‘नहीं प्रिये, इस समय तुम्हारा न चलना सितम हो जायगा। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी इस मधुर छवि को घर से बाहर भी तो लोग देखें।’

‘जी नहीं, मुझे यह लालसा नहीं है। मेरे रूप की शोभा केवल तुम्हारे लिए है, और तुम्हीं को दिखाना चाहती हूँ।’

‘नहीं, मैं इतना स्वार्थान्ध नहीं हूँ। जब तुम सैर करने निकलो, मैं लोगों से यह सुनना चाहता हूँ कि कितनी मनोहर छवि है! पशुपति कितना भाग्यशाली पुरुष है!’

‘तुम चाहो, मैं नहीं चाहती। तो इसी बात पर आज मैं कहीं नहीं जाऊँगी। तुम भी मत जाओ। हम दोनों अपने ही बाग़ में टहलेंगे। तुम हौज के किनारे हरी घास पर लेट जाना, मैं तुम्हें वीणा बजाकर सुनाऊँगी। तुम्हारे लिए फूलों का हार बनाऊँगी, चाँदनी में तुम्हारे साथ आँख-मिचौनी खेलूँगी।’

‘नहीं प्रभा, आज हमें अवश्य चलना पड़ेगा। तुम कृष्णा से आज मिलने का वादा कर आयी हो। वह बैठी हमारा रास्ता देख रही होगी। हमारे न जाने से उसे कितना दुःख होगा!’

हाय ! वही कृष्णा ! बार बार वही कृष्णा ! पति के मुख से नित्य यह नाम चिनगारी की भाँति उडकर प्रभा को जलाकर भस्म कर देता था ।

प्रभा को अब मालूम हुआ कि आज ये बाहर जाने के लिए क्यों इतने उत्सुक है ! इसीलिए आज इन्होंने मुझसे केशों को सँवारने के लिए इतना आग्रह किया था । वह सारी तैयारी उसी कुलटा कृष्णा से मिलने के लिए थी ।

उसने दृढ़ स्वर में कहा — तुम्हे जाना हो जाओ, मैं न जाऊँगी ।

वर्माजी ने कहा — अच्छी बात है, मैं ही चला जाऊँगा ।

२

पशुपति के जाने के बाद प्रभा को ऐसा जान पडा कि वह वाटिका उसे काटने दौड रही है । ईर्ष्या की ज्वाला से उसका कोमल हृदय भस्म होने लगा । वे वहाँ कृष्णा के साथ बैठे विहार कर रहे होंगे — उसी नागिन के-से केशवाली कृष्णा के साथ, जिसकी आँखों में घातक विष भरा हुआ है ! मर्दों की बुद्धि क्यों इतनी स्थूल होती है ? इन्हें कृष्णा की चटक-मटक ने क्यों इतना मोहित कर लिया है । उसके मुख से मेरे पैर का तलवा कही सुन्दर है । हाँ, मैं एक बच्चे की माँ हूँ और वह नव-यौवना है ! जरा देखना चाहिए, उनसे क्या बाते हो रही है ।

यह सोचकर वह अपनी सास के पास आकर बोली — अम्माँ, इस समय अकेले जी घबराता है, चलिए कही घूम आवे ।

सास बहू पर प्राण देती थी । चलने पर राजी हो गयी । गाडी तैयार करा के दोनों घूमने चली । प्रभा का श्रृंगार देखकर भ्रम ही सकता था कि वह बहुत प्रसन्न है, किन्तु उसके अन्तस्तल मे एक भीषण ज्वाला दहक रही थी, उसे छिपाने के लिए वह मीठे स्वर में एक गीत गाती जा रही थी ।

गाडी एक सुरम्य उपवन मे उडी जा रही थी । सडक के दोनों ओर विशाल वृक्षों की सुखद छाया पड रही थी । गाडी के कीमती घोडे गर्व से पूँछ और सिर उठाये टप-टप करते जा रहे थे । अहा ! वह सामने कृष्णा का बैंगला आ गया, जिसके चारों ओर गुलाब की बेल लगी हुई थी । उसके फूल इस समय निर्दय काँटों की भाँति प्रभा के हृदय मे चुभने लगे । उसने उड़ती हुई निगाह से बैंगले की ओर ताका । पशुपति का पता न था, हाँ कृष्णा और उसकी बहन माया बगीचे में विचर रही थीं । गाडी बैंगले के सामने से निकल ही चुकी थी कि दोनों बहनों ने प्रभा को पुकारा और एक क्षण में दोनो बालिकाएँ हिरनियों की भाँति उछलती-कूदती फाटक की ओर दौडीं । गाडी रुक गयी ।

कृष्णा ने हँसकर सास से कहा — अम्माँ जी, आज आप प्रभा को एकाध घण्टे के लिए हमारे पास छोड़ जाइए। आप उधर से लौटे तब इन्हें लेती जाइएगा, यह कहकर दोनों ने प्रभा को गाडी से बाहर खींच लिया। सास कैसे इनकार करती। जब गाडी चली गयी तब दोनो बहनो ने प्रभा को बगीचे मे एक बेच पर ला बिठाया। प्रभा को इन दोनो के साथ बाते करते हुए बडी शिझक हो रही थी। वह उनसे हँसकर बोलना चाहती थी, अपनी किसी बात से मन का भाव प्रकट नहीं करना चाहती थी, किन्तु हृदय उनसे खिचा ही रहा।

कृष्णा ने प्रभा की साडी पर एक तीव्र दृष्टि डालकर कहा — बहन, क्या यह साडी अभी ली है। इसका गुलाबी रंग तो तुम पर नहीं खिलता। कोई और रंग, क्यों न लिया ?

प्रभा — उनकी पसन्द है, मैं क्या करती।

दोनों बहने ठट्ठा मारकर हँस पडी। फिर माया ने कहा — उन महाशय की सचि का क्या कहना, सारी दुनिया से निराली है। अभी इधर से गये है। सिर पर इससे भी अधिक लाल पगडी थी।

सहसा पशुपति भी सैर से लौटता हुआ सामने से निकला। प्रभा को दोनों बहनो के साथ देखकर उसके जी मे आया कि मोटर रोक ले। वह अकेले इन दोनो से मिलना शिष्टाचार के विरुद्ध समझता था। इसीलिए वह प्रभा को अपने साथ लाना चाहता था। जाते समय वह बहुत साहस करने पर भी मोटर से न उतर सका था। प्रभा को वहाँ देखकर इस सुअवसर से लाभ उठाने की उसकी बड़ी इच्छा हुई। लेकिन दोनों बहनों की हास्यध्वनि सुनकर वह सकोचवश न उतरा।

थोड़ी देर तक तीनो रमणियाँ चुपचाप बैठी रही। तब कृष्णा बोली — पशुपति बाबू यहाँ आना चाहते है पर शर्म के मारे नहीं आये। मेरा विचार है कि सबधियों को आपस में इतना संकोच न करना चाहिए। समाज का यह नियम कम से कम मुझे तो बुरा मालूम होता है। तुम्हारा क्या विचार है, प्रभा ?

प्रभा ने व्यंग्य भाव से कहा — यह समाज का अन्याय है।

प्रभा इस समय भूमि की ओर ताक रही थी। पर उसकी आँखो से ऐसा तिरस्कार निकल रहा था जिसने दोनों बहनो के परिहास को लज्जासूचक मौन मे परिणत कर दिया। उसकी आँखो से एक चिनगारी-सी निकली, जिसने दोनो युवतियो के आमोद-प्रमोद और उस कुवृत्ति को जला डाला जो प्रभा के पति-परायण हृदय को

वापों से वेच रही थी, उस हृदय को जिसमें अपने पति के सिवा और किसी को जगह न थी।

माया ने जब देखा कि प्रभा इस वक्त क्रोध से भरी बैठी है, तब बेच से उठ खड़ी हुई और बोली — आजो बहन जरा टहले, यहाँ बैठे रहने से तो टहलना ही अच्छा है।

प्रभा ज्यों की त्यों बैठी रही। पर वे दोनों बहने बाग में टहलने लगी। उस वक्त प्रभा का ध्यान उन दोनों के वस्त्राभूषण की ओर गया। माया बगल की गुलाबी रेशम की एक महीन साड़ी पहने हुए थी जिसमें न जाने कितनी चुन्नटे पड़ी हुई थी। उसके हाथ में एक रेशमी छतरी थी जिसे उसने सूर्य की अतिम किरणों से बचने के लिए खोल लिया था। कृष्णा के वस्त्र भी वैसे ही थे, हाँ, उसकी साड़ी पीले रंग की थी और उसके घूँघरवाले बाल साड़ी के नीचे से निकलकर माथे और गालों पर लहरा रहे थे।

प्रभा ने एक ही निगाह से ताड़ लिया कि इन दोनों युवतियों में किसी को उसके पति से प्रेम नहीं है। केवल आमोदलिप्सा के वशीभूत होकर यह स्वयं बदनाम होंगी और उसके सरल हृदय पति को भी बदनाम कर देगी। उसने ठान लिया कि मैं अपने भ्रमर को इन विषाक्त पुष्पो से बचाऊँगी और चाहे जो कुछ हो उसे इनके ऊपर मँडराने न दूँगी, क्योंकि यहाँ केवल रूप और बास है, रस का नाम नहीं।

प्रभा अपने घर लौटते ही उस कमरे में गयी, जहाँ उसकी लड़की शान्ति अपनी दाई की गोद में खेल रही थी। अपनी नन्हीं जीती-जागती गुड़िया की सूरत देखते ही प्रभा की आँखें सजल हो गयीं। उसने मातृस्नेह से विभोर होकर बालिका को गोद में उठा लिया, मानो किसी भयकर पशु से उसकी रक्षा कर रही है। उस दुस्सह वेदना की दशा में उसके मुँह से यह शब्द निकल गये — बच्ची, तेरे बाप को लोग तुझसे छीनना चाहते हैं! हाय तू क्या अनाथ हो जायगी? नहीं-नहीं, अगर मेरा बस चलेगा तो मैं इन निर्बल हाथों से उन्हें बचाऊँगी।

आज से प्रभा विषादमय भावनाओं में मग्न रहने लगी। आनेवाली विपत्ति की कल्पना करके कभी-कभी भयातुर होकर चिल्ला पड़ती, उसकी आँखों में उस विपत्ति की तसवीर खिंच जाती जो उसकी ओर कदम बढ़ाये चली आती थी, पर उस बालिका की तोतली बातें और उसकी आँखों की निःशक ज्योति प्रभा के विकल हृदय को शान्त कर देती। वह लड़की को गोद में उठा लेती और वह मधुर हास्य-छवि जो बालिका के पतले-पतले गुलाबी ओठों पर खेलती होती, प्रभा की सारी शंकाओं

और बाधाओं को छिन्न-भिन्न कर देती। उन विश्वासमय नेत्रों में आशा का प्रकाश उसे आश्चर्य कर देता।

हा ! अभागिनी प्रभा, तू क्या जानती है क्या होनेवाला है ?

३

ग्रीष्मकाल की चाँदनी रात थी। सप्तमी का चाँद प्रकृति पर अपना मन्द शीतल प्रकाश डाल रहा था। पशुपति मौलसिरी की एक डाली हाथ से पकड़े और तने से चिपटा हुआ माया के कमरे की ओर टकटकी लगाये ताक रहा था। कमरे का द्वार खुला हुआ था और शान्त निशा में रेशमी साडियों की सरसराहट के साथ दो रमणियों की मधुर हास्य-ध्वनि मिलकर पशुपति के कानों तक पहुँचते-पहुँचते आकाश में विलीन हो जाती थी। एकाएक दोनों बहने कमरे से निकली और उसी ओर चली जहाँ पशुपति खड़ा था। जब दोनों उस वृक्ष के पास पहुँची तब पशुपति की परछाईं देखकर कृष्णा चौक पड़ी और बोली — है बहन ! यह क्या है ?

पशुपति वृक्ष के नीचे से आकर सामने खड़ा हो गया। कृष्णा उन्हें पहचान गयी और कठोर स्वर में बोली — आप यहाँ क्या करते हैं ? बतलाइए, यहाँ आपका क्या काम है ? बोलिए जल्दी।

पशुपति की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। इस अवसर के लिए उसने जो प्रेम-वाक्य रटे थे वे सब विस्मृत हो गये। सशंक होकर बोला — कुछ नहीं प्रिये, आज सन्ध्या समय जब मैं आपके मकान के सामने से आ रहा था तब मैंने आपको अपनी बहन से कहते सुना कि आज रात को आप इस वृक्ष के नीचे बैठकर चाँदनी का आनन्द उठायेगी। मैं भी आपसे कुछ कहने के लिए आपके चरणों पर अपना . . . समर्पित करने के लिए

यह सुनते ही कृष्णा की आँखों से चंचल ज्वाला-सी निकली और उसके ओठों पर व्यग्यपूर्ण हास्य की झलक दिखायी दी। बोली — महाशय, आप तो आज एक विचित्र अभिनय करने लगे, कृपा करके पैरों पर से तो उठिए और जो कुछ कहना चाहते हों, जल्द कह डालिए और जितने आँसू गिराने हों एक सेकेण्ड में गिरा दीजिए, मैं रुक-रुककर और धिधिया-धिधियाकर बातें करनेवालों को पसन्द नहीं करती। हाँ, और ज़रा बातें और रोना साथ-साथ न हों। कहिए क्या कहना चाहते हैं आप न कहेंगे ? लीजिए समय बीत गया, मैं जाती हूँ।

कृष्णा वहाँ से चल दी। माया भी उसके साथ ही चली गयी। पशुपति एक क्षण तक वहाँ खड़ा रहा फिर वह भी उनके पीछे-पीछे चला। मानो वह सुई है जो चुम्बक के आकर्षण से आप ही आप खिंचा चला जाता है।

सहसा कृष्णा रुक गयी और बोली — सुनिए पशुपति बानू, आज सन्ध्या समय प्रभा की बातों से मालूम हो गया कि उन्हें आपका और मेरा मिलना-जुलना बिलकुल नहीं भाता

पशुपति — प्रभा की तो आप चर्चा ही छोड़ दीजिए।

कृष्णा — क्यों छोड़ दूँ? क्या वह आपकी स्त्री नहीं है? आप इस समय उसे घर में अकेली छोड़कर गुप्तसे क्या कहने के लिए आये है? यही कि उसकी चर्चा न करूँ?

पशुपति — जी नहीं, यह कहने के लिए कि अब यह विरहाग्नि नहीं सही जाती।

कृष्णा ने ठट्ठा मारकर कहा — आप तो इस कला में बहुत निपुण जान पड़ते हैं। प्रेम! समर्पण! विरहाग्नि! यह शब्द आपने कहां सीखे?

पशुपति — कृष्णा, मुझे तुमसे इतना प्रेम है कि मैं पागल हो गया हूँ।

कृष्णा — तुम्हें प्रभा से क्यों प्रेम नहीं है?

पशुपति — मैं तो तुम्हारा उपासक हूँ।

कृष्णा — लेकिन यह क्यों भूल जाते हो कि तुम प्रभा के स्वामी हो?

पशुपति — तुम्हारा तो दास हूँ।

कृष्णा — मैं ऐसी बातें नहीं सुनना चाहती।

पशुपति — तुम्हें मेरी एक-एक बात सुननी पड़ेगी। तुम जो चाहो वह करने को मैं तैयार हूँ।

कृष्णा — अगर यह बातें कही वह सुन ले तो?

पशुपति — सुन ले तो सुन ले। मैं हर बात के लिए तैयार हूँ। मैं फिर कहता हूँ, कि अगर तुम्हारी मुझ पर कृपादृष्टि न हुई तो मैं मर जाऊँगा।

कृष्णा — तुम्हें यह बातें करते समय अपनी पत्नी का ध्यान नहीं आता?

पशुपति — मैं उसका पति नहीं होना चाहता। मैं तो तुम्हारा दास होने के लिए बनाया गया हूँ। वह सुगन्ध जो इस समय तुम्हारी गुलाबी साड़ी से निकल रही है, मेरी जान है। तुम्हारे ये छोटे-छोटे सुन्दर पाँव मेरे प्राण हैं। तुम्हारी हँसी, तुम्हारी छवि, तुम्हारा एक-एक अंग मेरा प्राण है। मैं केवल तुम्हारे लिए पैदा हुआ हूँ।

कृष्णा — भई, अब तो सुनते-सुनते कान भर गये। यह व्याख्यान और यह गद्य-काव्य सुनने के लिए मेरे पास समय नहीं है। आओ माया, मुझे तो सर्दी लग रही है। चलकर अन्दर बैठे।

यह निष्ठुर शब्द सुनकर पशुपति की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मगर अब भी उसका मन यही चाहता था कि कृष्णा के पैरों पर गिर पड़े और इससे भी करुण शब्दों में अपनी प्रेम-कथा सुनाये। किन्तु दोनों बहने इतनी देर में अपने कमरे में पहुँच चुकी थी और द्वार बन्द कर लिया था। पशुपति के लिए निराश घर लौट आने के सिवा कोई चारा न रह गया।

कृष्णा अपने कमरे में जाकर थकी हुई-सी एक कुर्सी पर बैठ गयी और सोचने लगी — कही प्रभा सुन ले तो बात का बतगड़ हो जाय, सारे शहर में इसकी चर्चा होने लगे और हमें कही मुँह दिखाने को जगह न रहे। और यह सब एक जरा-सी दिल्लगी के कारण ! पर पशुपति का प्रेम सच्चा है, इसमें सन्देह नहीं। वह जो कुछ कहता है, अन्तःकरण से कहता है। अगर मैं इस वक्त ज़रा-सा सकेत कर दूँ तो वह प्रभा को भी छोड़ देगा। अपने आपे में नहीं है। जो कुछ कहूँ वह करने को तैयार है। लेकिन नहीं, प्रभा, डरो मत, मैं तुम्हारा सर्वनाश न करूँगी। तुम मुझसे बहुत नीचे हो। यह मेरे अनुपम सौन्दर्य के लिए गौरव की बात नहीं कि तुम जैसी रूप-विहीना से बाज़ी मार ले जाऊँ। अभागे पशुपति, तुम्हारे भाग्य में जो कुछ लिखा था वह हो चुका। तुम्हारे ऊपर मुझे दया आती है, पर क्या किया जाय !

४

एक खत पहले हाथ पड़ चुका था। यह दूसरा पत्र था, जो प्रभा को पतिदेव के कोट की जेब में मिला। कैसा पत्र था ? आह ! इसे पढ़ते ही प्रभा की देह में एक ज्वाला-सी उठने लगी। तो यों कहिए कि ये अब कृष्णा के हो चुके, अब इसमें कोई सन्देह नहीं रहा। अब मेरे जीने को धिक्कार है ! जब जीवन में कोई सुख ही नहीं रहा, तो क्यों न इस बोझ को उतारकर फेंक दूँ। वही पशुपति, जिसे कविता से लेशमात्र भी रुचि न थी, अब कवि हो गया था और कृष्णा को छन्दों में पत्र लिखता था। प्रभा ने अपने स्वामी को उधर से हटाने के लिए वह सब कुछ किया जो उससे हो सकता था, पर प्रेम का प्रवाह उसके रोके न रुका और आज उस प्रवाह में उसके जीवन की नौका निराधार बही चली जा रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रभा को अपने पति से सच्चा प्रेम था, लेकिन आत्मसमर्पण

की तुष्टि आत्मसमर्पण से ही होती है। वह उपेक्षा और निष्ठुरता को सहन नहीं कर सकता। प्रभा के मन में विद्रोह का भाव जाग्रत होने लगा। उसका आत्माभिमान जाता रहा। उसके मन में न जाने कितने भीषण सकल्प होते, किन्तु अपनी असमर्थता और दीनता पर आप ही आप रोने लगती। आह ! उसका सर्वस्व उससे छीन लिया गया और अब ससार में उसका कोई मित्र नहीं, कोई साथी नहीं !

पशुपति आजकल नित्य बनाव-सँवार में मग्न रहता, नित्य नये-नये सूट बदलता। उसे आइने के सामने अपने बालों को सँवारते देखकर प्रभा की आँखों से आँसू बहने लगते। यह सारी तैयारी उसी दुष्टा के लिए हो रही है। यह चिन्ता ज़हरीले साँप की भाँति उसे डस लेती थी; वह अब अपने पति की प्रत्येक बात, प्रत्येक गति को सूक्ष्म दृष्टि से देखती। कितनी ही बातें जिन पर वह पहले ध्यान भी न देती थी, अब उसे रहस्य से भरी हुई जान पड़तीं। वह रात को न सोती, कभी पशुपति की जेब टटोलती, कभी उसकी मेज पर रखे हुए पत्रों को पढ़ती। इसी टोह में वह रात-दिन पड़ी रहती।

वह सोचने लगी — मैं क्या प्रेम-वचिता बनी बैठी रहूँ ? क्या मैं प्राणेश्वरी नहीं बन सकती। जीवन अमर नहीं है और यौवन भी थोड़े ही दिनों का मेहमान होता है। क्या इसे परित्यक्ता बनकर ही काटना होगा ! आह निर्दयी, तूने मुझे धोखा दिया। मुझसे आँखें फेर लीं। पर सबसे बड़ा अनर्थ यह किया कि मुझे जीवन का कलुषित मार्ग दिखा दिया। मैं भी विश्वासघात करके तुझे धोखा देकर क्या कलुषित प्रेम का आनन्द नहीं उठा सकती ? अश्रुवारा से सीचकर ही सही, पर क्या अपने लिए कोई बाटिका नहीं लगा सकती ? वह सामने के मकान में घुँघराले बालवाला युवक रहता है और जब मौका पाता है, मेरी ओर सचेष्ट नेत्रों से देखता है। क्या केवल एक प्रेम-कटाक्ष से मैं उसके हृदय पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकती ? अगर मैं इस भाँति इस निष्ठुरता का बदला लूँ तो क्या अनुचित होगा ? आखिर मैंने अपना जीवन अपने पति को किसलिए सौंपा था ? इसीलिए तो कि सुख से जीवन व्यतीत करूँ। चाहूँ और चाही जाऊँ और इस प्रेम-साम्राज्य की अधीश्वरी बनी रहूँ। मगर आह ! वे सारी अभिलाषाएँ धूल में मिल गयीं ! अब मेरे लिए क्या रह गया है ? आज यदि मैं मर जाऊँ तो कौन रोयेगा ? नहीं, घी के चिराग जलाये जायँगे। कृष्णा हँसकर कहेगी — अब बस हम है और तुम। हमारे बीच में कोई बाधा, कोई कटक नहीं है।

आखिर प्रभा इन कञ्चुषित भावनाओं के प्रवाह में बह चली। उसके हृदय में

पर रखकर अपने पीले मुख को काँपते हुए हाथों से छिपा लिया। पशुपति ने फिर भी सब कुछ कह ही डाला। लालसाग्नि अब अन्दर न रह सकती थी, उसकी ज्वाला बाहर निकल ही पड़ी। तात्पर्य यह था कि पशुपति ने कृष्णा के साथ विवाह करना निश्चय कर लिया था। वह उसे दूसरे घर में रखेगा और प्रभा के यहाँ दो रात और एक रात उसके यहाँ रहेगा।

ये बातें सुनकर प्रभा रोयी नहीं, वरन् स्तम्भित होकर खड़ी रह गयी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके गले में कोई चीज़ अटकी हुई है और वह साँस नहीं ले सकती।

पशुपति ने फिर कहा — प्रभा, तुम नहीं जानती कि जितना प्रेम तुमसे मुझे आज है उतना पहले कभी नहीं था। मैं तुमसे अलग नहीं हो सकता। मैं जीवन-पर्यन्त तुम्हें इसी भाँति प्यार करता रहूँगा। पर कृष्णा मुझे मार डालेगी। केवल तुम्ही मेरी रक्षा कर सकती हो। मुझे उसके हाथ मत छोड़ो, प्रिये!

अभागिनी प्रभा! तुझसे पूछ-पूछ कर तेरी गर्दन पर छुरी चलायी जा रही है! तू गर्दन झुका देगी या आत्मगौरव से सिर उठाकर कहेगी — मैं यह नीच प्रस्ताव नहीं सुन सकती!

प्रभा ने इन दो बातों में एक भी न की। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी। जब होश आया, कहने लगी — बहुत अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा! लेकिन मुझे छोड़ दो, मैं अपनी माँ के घर जाऊँगी, मेरी शान्ता मुझे दे दो।

यह कहकर वह रोती हुई वहाँ से शान्ता को लेने चली गयी और उसे गोद में लेकर कमरे से बाहर निकली। पशुपति लज्जा और ग्लानि से सिर झुकाये उसके पीछे-पीछे आता रहा और कहता रहा — जैसी तुम्हारी इच्छा हो प्रभा, वह करो, और मैं क्या कहूँ, किन्तु मेरी प्यारी प्रभा, वादा करो कि तुम मुझे क्षमा कर दोगी। किन्तु प्रभा ने उसको कुछ जवाब न दिया और बराबर द्वार की ओर चलती रही। तब पशुपति ने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया और उसके मुरझाये हुए पर अशु-सिंचित कपोलों को चूम-चूमकर कहने लगा — प्रिये, मुझे भूल न जाना, तुम्हारी याद मेरे हृदय में सदैव बनी रहेगी। अपनी अँगूठी मुझे देती जाओ, मैं उसे तुम्हारी निशानी समझ कर रखूँगा और उसे हृदय से लगाकर इस दाह को शीतल करूँगा। ईश्वर के लिए प्रभा, मुझे छोड़ना मत, मुझसे नाराज न होना. . . एक सप्ताह के लिए अपनी माता के पास जाकर रहो। फिर मैं तुम्हें जाकर लाऊँगा।

प्रभा ने पशुपति के कर-पाश से अपने को छुड़ा लिया और अपनी लड़की का हाथ

पकड़े हुए गाड़ी की ओर चली। उसने पशुपति को न कोई उत्तर दिया और न यह सुना कि वह क्या कह रहा है।

६

‘अम्माँ, आप क्यों हँस रही है?’

‘कुछ तो नहीं बेटी।’

‘वह पीले-पीले पुराने कागज तुम्हारे हाथ में क्या है?’

‘ये उस ऋण के पुर्जे हैं जो वापस नहीं मिला।’

‘ये तो पुराने खत मालूम होते हैं?’

‘नहीं बेटी।’

बात यह थी कि प्रभा अपनी चौदह वर्ष की युवती पुत्री के सामने सत्य का पर्दा नहीं खोलना चाहती थी। हाँ, वे कागज वास्तव में एक ऐसे कर्ज के पुर्जे थे जो वापस नहीं मिला। ये वही पुराने पत्र थे जो आज एक किताब में रक्खे हुए मिले थे और ऐसे फूल की पंखुडियों की भाँति दिखायी देते थे जिनका रंग और गन्ध किताब में रक्खे-रक्खे उड़ गयी हो, तथापि वे सुख के दिनों की याद दिला रहे थे और इस कारण प्रभा की दृष्टि में वे बहुमूल्य थे।

शान्ता समझ गयी कि अम्माँ कोई ऐसा काम कर रही हैं जिसकी खबर मुझे नहीं करना चाहती और इस बात से प्रसन्न होकर कि मेरी दुखी माता आज अपना शोक भूल गयी है और जितनी देर वह इस आनन्द में मग्न रहे उतना ही अच्छा है, एक बहाने से बाहर चली गयी। प्रभा जब कमरे में अकेली रह गयी तब उसने उन पत्रों को फिर पढना शुरू किया।

आह! इन चौदह वर्षों में क्या कुछ नहीं हो गया! इस समय उस विरहिणी के हृदय में कितनी ही पूर्व स्मृतियाँ जाग्रत हो गयी, जिन्होंने हर्ष और शोक के स्रोत एक साथ ही खोल दिये।

प्रभा के चले आने के बाद पशुपति ने बहुत चाहा कि कृष्णा से उसका विवाह हो जाय पर वह राजी न हुई। इसी नैराश्य और क्रोध की दशा में पशुपति एक कम्पनी का एजेण्ट होकर योरोप चला गया। तब फिर उसे प्रभा की याद आयी। कुछ दिनों तक उसके पास से क्षमाप्रार्थना-पूर्ण पत्र आते रहे, जिनमें वह बहुत जल्द घर आकर प्रभा से मिलने के वादे करता रहा और प्रेम के इस नये प्रवाह में पुरानी कटुताओं को जलमग्न कर देने के आशामय स्वप्न देखता रहा। पति-परायणा

प्रभा के सतप्त हृदय में फिर आशा की हरियाली लहराने लगी, मुरझायी हुई आशा-लताएँ फिर पल्लवित होने लगी! किन्तु यह भी भाग्य की एक क्रीड़ा ही थी। थोड़े ही दिनों में रसिक पशुपति एक नये प्रेम-जाल में फँस गया और तब से उसके पत्र आने बन्द हो गये। इस वक्रत प्रभा के हाथ में वही पत्र थे जो उसके पति ने योरोप से उस समय भेजे थे जब नैराश्य का घाव हरा था। कितनी चिकनी-बुपड़ी बातें थीं। कैसे-कैसे दिल खुश करनेवाले वादे थे! इसके बाद ही मालूम हुआ कि पशुपति ने एक अंग्रेज लड़की से विवाह कर लिया है। प्रभा पर वज्र-सा गिर पडा — उसके हृदय के टुकड़े हो गये — सारी आशाओं पर पानी फिर गया। उसका निर्बल शरीर इस आघात को सहन न कर सका। उसे ज्वर आने लगा और किसी को उसके जीवन की आशा न रही। वह स्वयं मृत्यु की अभिलाषिणी थी और मालूम भी होता था कि मौत किसी सर्प की भोंति उसकी देह से लिपट गयी है। लेकिन बुलाने से मौत भी नहीं आती। ज्वर शान्त हो गया और प्रभा फिर वही आगाविहीन जीवन व्यतीत करने लगी।

७

एक दिन प्रभा ने सुना कि पशुपति योरोप से लौट आया है और वह योरोपीय स्त्री उसके साथ नहीं है। बल्कि उसके लौटने का कारण वही स्त्री हुई है। वह औरत बारह साल तक उसकी सहयोगिनी रही पर एक दिन एक अंग्रेज युवक के साथ भाग गयी। इस भीषण और अत्यन्त कठोर आघात ने पशुपति की कमर तोड़ दी। वह नौकरी छोड़कर घर चला आया। अब उसकी सूरत इतनी बदल गयी थी कि उसके मित्र लोग उससे बाजार में मिलते तो उसे पहचान न सकते थे — मालूम होता था, कोई बूढ़ा कमर झुकाये चला जाता है। उसके बाल तक सफ़द हो गये।

घर आकर पशुपति ने एक दिन शान्ता को बुला भेजा। इस तरह शान्ता उसके घर आने-जाने लगी। वह अपने पिता की दशा देखकर मन ही मन कुढ़ती थी।

इसी बीच में शान्ता के विवाह के सन्देश आने लगे, लेकिन प्रभा को अपने वैवाहिक जीवन में जो अनुभव हुआ था वह उसे इस सन्देशों को लौटाने पर मजबूर करता था। वह सोचती, कहीं इस लड़की की भी वही गति न हो जो मेरी हुई है। उसे ऐसा मालूम होता था कि यदि शान्ता का विवाह हो गया तो इस अन्तिम अवस्था में भी मुझे चैन न मिलेगा और मरने के बाद भी मैं पुत्री का शोक लेकर जाऊँगी। लेकिन अन्त में एक ऐसे अच्छे घराने से सन्देश आया कि प्रभा उसे 'ताही' न

कर सकी। घर बहुत ही सम्पन्न था, वर भी बहुत ही सुयोग्य। प्रभा को स्वीकार ही करना पड़ा। लेकिन पिता की अनुमति भी आवश्यक थी। प्रभा ने इस विषय में पशुपति को एक पत्र लिखा और शान्ता के ही हाथ भेज दिया। जब शान्ता पत्र लेकर चली गयी तब प्रभा भोजन बनाने चली गयी। भाँति-भाँति की अमगल कल्पनाएँ उसके मन में आने लगी और चूल्हे से निकलते हुए धुएँ में उसे एक चित्र-सा दिखायी दिया कि शान्ता के पतले-पतले होंठ सूखे हुए हैं और वह काँप रही है और जिस तरह प्रभा पतिगृह से आकर माता की गोद में गिर गयी थी उसी तरह शान्ता भी आकर माता की गोद में गिर पड़ी है।

८

पशुपति ने प्रभा का पत्र पढ़ा तो उसे चुप-सी लग गयी। उसने अपना सिगरेट जलाया और जोर-जोर से खींचने लगा।

फिर वह उठ खड़ा हुआ और कमरे में टहलने लगा। कभी मूँछों को दाँतों से काटता कभी खिचड़ी दाढ़ी को नीचे की ओर खींचता।

सहसा वह शान्ता के पास आकर खड़ा हो गया और काँपते हुए स्वर में बोला — बेटी, जिस घर को तेरी माँ स्वीकार करती है उसे मैं कैसे 'नाही' कर सकता हूँ। उन्होंने बहुत सोच-समझकर हामी भरी होगी। ईश्वर करे तुम सदा सौभाग्यवती रहो। मुझे दुःख है तो इतना ही कि जब तू अपने घर चली जायगी तब तेरी माता अकेली रह जायगी। कोई उसके आँसू पोंछनेवाला न रहेगा। कोई ऐसा उपाय सोच कि तेरी माता का क्लेश दूर हो और मैं भी इस तरह मारा-मारा न फिहूँ। ऐसा उपाय तू ही निकाल सकती है। सम्भव है लज्जा और सकोच के कारण मैं अपने हृदय की बात तुझसे कभी न कह सकता, लेकिन अब तू जा रही है और मुझे सकोच का त्याग करने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। तेरी माँ तुझे प्यार करती है और तेरा अनुरोध कभी न टालेगी। मेरी दशा जो तू अपनी आँखों से देख रही है यही उनसे कह देना। जा, तेरा सौभाग्य अमर हो।

शान्ता रोती हुई पिता की छाती से लिपट गयी और यह समय से पहले बूढ़ा हो जानेवाला मनुष्य अपनी दुर्वासनाओं का दण्ड भोगने के बाद पश्चात्ताप और ग्लानि के आँसू बहा-बहाकर शान्ता की केशराशि को भिगोने लगा।

पतिपरायणा प्रभा क्या शान्ता का अनुरोध टाल सकती थी? इस प्रेम-सूत्र ने दोनों भग्न-हृदयों को सदैव के लिए मिला दिया।

तांगेवाले की बड़

लेखक को इलाहाबाद में एक बार तांगे में लम्बा सफर करने का सयोग हुआ। तांगेवाले मियाँ जुम्मन बड़े बातूनी थे। उनकी उम्र पचास के करीब थी, उनकी बड़ से रास्ता इस आसानी से तय हुआ कि कुछ मालूम ही न हुआ। मैं पाठकों के मनोरंजन के लिए उनकी जीवनी और बड़ पेश करता हूँ।

१

जुम्मन — कहिए बाबूजी, तांगा . . वह तो इस तरफ देखते ही नहीं शायद इक्का लेगे। मुबारक। कमखर्च बालानशीन, मगर कमर रह जायगी बाबूजी, सड़क खराब है, इक्के में तकलीफ होगी। अखबार में पढ़ा होगा कल चार इक्के इसी सड़क पर उलट गये। चुगी (म्युनिस्पल्टी) सलामत रहे, इक्के बिलकुल बन्द हो जायेंगे। मोटर, लारी तो सड़क खराब करे और नुकसान हो हम गरीब इक्केवालों का। कुछ दिनों में हवाई जहाज में सवारियाँ चलेगी, तब हम इक्केवालों को सड़क मिल जायगी। देखेगे उस वक्त इन लारियों को कौन पूछता है, अजायबघरो में देखने को मिले तो मिले। अभी तो उनके दिमाग ही नहीं मिलते। अरे साहब, रास्ता निकलना दुश्वार कर दिया है, गोया कुल सड़क उन्हीं के वास्ते है और हमारे वास्ते पटरी और धूल! अभी ऐठते है, हवाई जहाजों को आने दीजिए। क्यों हुजूर, इन मोटरवालों की आधी आमदनी लेकर सरकार सड़क की मरम्मत में क्यों नहीं खर्च करती? या पेट्रोल पर चौगुना टैक्स लगा दे। यह अपने को टैक्सी कहते है, इसके माने तो टैक्स देनेवाले के है। ऐ हुजूर, मेरी बुढिया कहती है कि इक्का छोड़ तांगा लिया, मगर अब तांगे में भी कुछ नहीं रहा, मोटर लो। मैंने जवाब दिया कि अपने हाथ-पैर की सवारी रखोगी या दूसरे के। बस हुजूर वह चुप हो गयी। और सुनिए, कल की बात है, कललन ने मोटर चलाया, मियाँ एक दरस्त से टकरा गये, वही शहीद हो गये। एक बेवा और दस बच्चे यतीम छोड़े। हुजूर, मैं गरीब आदमी हूँ, अपने बच्चों को पाल लेता हूँ, और क्या चाहिए। आज कुछ कम चालीस साल से इक्केवानी करता हूँ, थोड़े दिन और रहे वह भी इसी

तरह चाबुक लिये कट जायेंगे। फिर हुजूर देखे, तो इक्का-तांगा और घोडा गिरे पर भी कुछ-न-कुछ दे ही जायगा। बरअक्स इसके मोटर बन्द हो जाय तो हुजूर उसका लोहा दो रुपये मे भी कोई न लेगा। हुजूर घोड़ा घोडा ही है, हर हालत मे आपको मजिल तक पहुँचा ही देगा, मोटर जब देखिए रास्ते मे घरा है, सवारियाँ पैदल जा रही है, या हाथी की लाश खीच रही है। हुजूर, घोडे पर हर तरह का काबू और हर सूरत मे नफा। मोटर मे कोई आराम थोड़े ही है। तांगे मे सवारी भी सो रही है, हम भी सो रहे है और घोड़ा भी सो रहा है मगर मजिल तय हो रही है। मोटर के शोर से तो कान के पर्दे फटते है और हाँकनेवाले को तो जैसे चक्की पीसना पडता है।

२

ऐ हुजूर, औरतें भी इक्के-तांगे को बड़ी बेदर्दी से इस्तेमाल करती है। कल की बात है, सात-आठ औरते आयी और पूछने लगी कि तिरबेनी का क्या लगे। हुजूर, हमारे निर्ख तो तय है, कोई त्वाइटवे की दुकान तो है नही कि साल मे चार बार सेल हो। निर्ख से हमारी मजदूरी चुका दो और दुआएँ लो। यो तो हुजूर मालिक है, चाहे एक बार कुछ न दे मगर सरकार, यह औरते एक रुपये का काम हो तो आठ ही आना देती है। हुजूर, हम तो साहब लोगो का काम करते है। शरीफ हमेशा शरीफ रहते है और हुजूर औरत हर जगह औरत ही रहेगी। एक तो पर्दे के बहाने से हम लोग हटा दिये जाते है। इक्के-तांगे में दर्जनो सवारियाँ और बच्चे बैठ जाते हैं। एक बार इक्के की कमानी टूटी तो उससे एक न दो पूरी तेरह औरते निकल आयी। मै गरीब आदमी मर गया। हुजूर सबको हैरत होती है कि किस तरह ऊपर-नीचे बैठ लेती है कि कँची मारकर बैठती है। तांगे मे भी जान नही बचती। दोनो घुटनों पर एक-एक बच्चा बैठा लेती है और उनके ऊपर एक-एक और, और उन्हीं मे से एक नन्हे बच्चे को भी ले लेती है। इस तरह हुजूर तांगे के अन्दर सर्कस का-सा नक्शा हो जाता है। इस पर भी पूरी-पूरी मजदूरी यह देना जानती नही। पहले तो पर्दे का जोर था। मर्दों से बातचीत हुई और मजदूरी मिल गयी। जब से नुमाइश हुई, पर्दा उखड़ गया और औरते बाहर आने-जाने लगी। हम गरीबों का सरासर नुकसान होता है। हुजूर हमारा भी अल्लाह मालिक है। साल मे मै भी बराबर हो रहता हूँ। सौ सुनार की तो एक लोहार की भी हो जाती है। पिछले महीने दो घंटे सवारी के बाद आठ आने पैसे देकर बी अन्दर भागीं। मेरी निगाह जो तांगे पर पडी तो क्या देखता हूँ कि एक सोने का झुमका गिरकर रह

गया। मैं चिल्लाया, माई यह क्या, तो उन्होने कहा अब एक हब्बा और न मिलेगा और दरवाजा बन्द। मैं दो-चार मिनट तक तो तकता रह गया मगर फिर वापस चला आया। मेरी मजदूरी माई के पास रह गयी और उनका झुमका मेरे पास।

३

कल की बात है, चार स्वराजियों ने मेरा ताँगा क्रिया, कटरे से स्टेशन चले, हुकुम मिला कि तेज चलो। रास्ते भर गाँधीजी की जय! गाँधीजी की जय! पुकारते गये। कोई साहब बाहर से आ रहे थे और बड़ी भीड़े और जुलूस थे। कठपुतली की तरह रास्ते भर उछलते-कूदते गये। स्टेशन पहुँचकर मुश्किल से चार आने दिये। मैंने पूरा किराया माँगा, मगर वहाँ गाँधीजी की जय! गाँधीजी की जय के सिवाय क्या था! मैं चिल्लाया मेरा पेट! मेरा पेट! मेरा ताँगा थिएटर का स्टेज था, आप नाचे-कूदे और अब मजदूरी नहीं देते! मगर मैं चिल्लाता ही रहा, वह भीड़ में गायब हो गये। मैं तो समझता हूँ कि लोग पागल हो गये हैं, स्वराज माँगते हैं, इन्ही हरकतों पर स्वराज मिलेगा! ऐ हुजूर, अजब हवा चल रही है। सुधार तो करते नहीं, स्वराज माँगते हैं। अपने करम तो पहले दुरुस्त हो ले। मेरे लडके को बरगलाया, उसने सब कपडे इकट्ठे किये और लगा जिद करने कि आग लगा दूँगा। पहले तो मैंने समझाया कि मैं गरीब आदमी हूँ, कहाँ से और कपडे लाऊँगा, मगर जब वह न माना तो मैंने गिराकर उसको खूब मारा। फिर क्या था होश ठिकाने हो गये। हुजूर, जब वक्त्र आयेगा तो हमीं इक्के-ताँगेवाले स्वराज हाँककर लायेगे, मोटर पर स्वराज हर्गिज न आयेगा। पहले हमको पूरी मजदूरी दो फिर स्वराज माँगो। हुजूर औरते तो औरते, हम उनसे न जबान खोल सकते हैं न कुछ कह सकते हैं, वह जो कुछ दे देती है, लेना पडता है। मगर कोई-कोई नकली शरीफ लोग औरतों के भी कान काटते हैं। सवार होने से पहले हमारे नम्बर देखते हैं, अगर कोई चीज रास्ते में उनकी लापरवाही से गिर जाय तो वह भी हमारे सिर ठोंकते हैं और मजा यह कि किराया कम दें तो हम उफ् तक न करे। एक बार का जिक्र सुनिए, एक नकली साहब 'विल वेल' करके लाट साहब के दफ्तर गये, मुझको बाहर छोड़ा और कहा कि एक मिनट में आते हैं, वह दिन है कि आज तक इन्तजार ही कर रहा हूँ। अगर यह हजरत कहीं दिखायी दिये तो एक बार तो दिल खोलकर बदला ले लूँगा फिर चाहे जो कुछ हो।

४

अब न पहले के-से मेहरबान रहे न पहले की-सी हालत। खुदा जाने शराफत कहां गायब हो गयी। मोटर के साथ हवा हुई जाती है। ऐ हुजूर, आप ही जैसे साहब लोग हम इक्केवालों की कद्र करते थे, हमसे भी इज्जत से पेश आते थे। अब वह वक्त है कि हम लोग छोटे आदमी है, हर बात पर गाली मिलती है, गुस्सा सहना पडता है। कल दो बाबू लोग जा रहे थे, मैंने पूछा तांगा . . . तो एक ने कहा नहीं, हमको जल्दी है। शायद यह मजाक होगा। आगे चलकर एक साहब पूछते हैं कि टैक्सी कहां मिलेगी ? अब कहिए, यह छोटा शहर है, हर जगह जल्द से जल्द हम लोग पहुँचा देते हैं। इस पर भी हमी बतलाएँ कि टैक्सी कहां मिलेगी। अन्धेर है अन्धेर ! खयाल तो कीजिए, यह नन्ही-सी जान घोड़ों की, हम और हमारे बाल-बच्चे और चौदह आने घटा। हुजूर, चौदह आने मे तो घोड़ी को एक कमची भी लगाने को जी नहीं चाहता। हुजूर हमे तो कोई चौबीस घंटे के वास्ते मोल ले ले।

कोई-कोई साहब हमीं से नियारियापन करते हैं। चालीस साल से हुजूर, यही काम कर रहा हूँ। सवारी को देखा और भाँप गये कि क्या चाहते हैं। पैसा मिला और हमारी घोड़ी के पर निकल आये। एक साहब ने बड़े तूम तड़ाक के बाद घटों के हिसाब से तांगा तय किया और वह भी सरकारी रेट से कम। आप देखे कि चूगी ही ने रेट मुकर्रर करते वक्त जान निकाल ली है लेकिन कुछ लोग बगैर तिलो के तेल निकालना चाहते हैं। खैर मैंने भी बेकारी मे कम रेट ही मान लिया। फिर जनाब थोड़ी दूर चलकर हमारा तांगा भी जनाजे की चाल चलने लगा। वह कह रहे हैं कि भाई जरा तेज चलो, मैं कहता हूँ कि रोजे का दिन है, घोड़ी का दम न टूटे। तब वह फ़रमाते हैं, हमें क्या तुम्हारा ही घटा देर में होगा। सरकार, मुझे तो इसमे खुशी है कि आप ही सवार रहे और गुलाम आपको फिराता रहे।

५

लाट साहब के दफ़्तर मे एक बड़े बाबू थे। कटरे में रहते थे। खुदा झूठ न बुलवाये उनकी कमर तीन गज से कम न होगी। उनको देखकर इक्के-तांगिवाले आगे हट जाते थे। कितने ही इक्के वह तोड चुके थे। इतने भारी होने पर भी इस सफ़ाई से कूदते थे कि खुद कभी चोट न खायी। यह गुलाम ही की हिम्मत थी कि उनको ले जाता था। खुदा उनको खुश रखे, मजदूरी भी अच्छी देते थे। एक बार मैं ईद का इक्का लिये जा रहा था, बाबू मिल गये और कहा कि दफ़्तर तक

पहुँचा दोगे ? आज देर हो गई है, तुम्हारे घोड़े में सिर्फ ढाँचा ही रह गया है। मैंने जवाब दिया यह मेरा घोड़ा नहीं है, हुजूर तो डबल मजदूरी देते हैं, हुकुम दें तो दो इक्के एक साथ बाँध लूँ और फिर चलूँ।

६

और सुनिए, एक सेठजी ने इक्का भाडा किया। सब्जी मंडी में सब्जी बगैरह ली और भगाते हुए स्टेशन आये। इनाम की लालच में मैं घोड़ी पीटता लाया। खुदा जानता है उस रोज जानवर पर बड़ी मार पड़ी। मेरे हाथ दर्द करने लगे। रेल का वक्त्र सचमुच बहुत ही तग था। स्टेशन पर पहुँचे तो मेरे लिए वही चवन्नी। मैं बोला, यह क्या ? सेठ जी कहते हैं, तुम्हारा भाडा तख्ती दिखाओ। मैंने कहा देर करे आप और मेरा घोड़ा मुफ्त पीटा जाय। सेठजी जवाब देते हैं कि भई, तुम भी तो जल्दी फरागत पा गये और चोट तुम्हारे तो लगी नहीं। मैंने कहा कि महाराज, इस जानवर पर तो दया कीजिए। तब सेठजी ढीले पडे और कहा, हाँ इस गरीब का जरूर लिहाज होना चाहिए और अपनी टोकरी से चार पत्ते गोभी के निकाले और घोड़ी को खिलाकर चल दिये। यह भी शायद मजाक होगा। मगर मैं गरीब मुफ्त मरा। उस वक्त्र से घोड़ी का हाजमा बदल गया।

अजब वक्त्र आ गया है, पब्लिक अब दूसरो का तो लिहाज ही नहीं करती। रग-डग, तौर-तरीका, सभी कुछ बदल गये हैं। जब हम अपनी मजदूरी माँगते हैं तो जवाब मिलता है कि तुम्हारी अमलदारी है, खुली सडक पर लूट लो ! अपने जानवरों को सेठजी हलुआ-जलेबी खिलायेगे, मगर हमारी गर्दन मारेंगे। कोई दिन ये, कि हमको किराये के अलावा मालपूए भी मिलते थे।

७

अब भी, इस गिरे जमाने में भी, कभी-कभी शरीफ रईस नज़र आ ही जाते हैं। एक बार का जिन्न सुनिए, मेरे ताँगे में सवारियाँ बैठी। कश्मीरी होटल से निकलकर कुछ थोड़ी-सी चढी थी। कीटगंज पहुँचकर सामनेवाले ने चौरस्ता आने से पहले ही चौदह आने दिये और उतर गये। फिर पिछली एक सवारी ने उतरकर चौदह आने दिये। अब तीसरी उतरती नहीं। मैंने कहा कि हज़रत चौराहा आ गया। जवाब नदारद। मैंने कहा कि बाबू इन्हे भी उतार लो। बाबू ने देखा-भाला, मगर वह नशे में चूर हैं, उतरे कौन ! बाबू बोले, अब क्या

करे। मैंने कहा — क्या करोगे। मामला तो बिलकुल साफ़ है। थाने ले जाइए और अगर दस मिनट में कोई वारिस न पैदा हो तो माल आपका।

बस हुजूर, इस पेशे में भी नित नये तमाशे देखने में आते हैं। इन आँखों सब कुछ देखा है हुजूर। पर्दे पड़ते थे, जाजिमें बाँधी जाती थीं, घटाटोप लगाये जाते थे, तब जनानी सवारियाँ बैठती थी। अब हुजूर अजब हालत है, पर्दा गया हवा के बहाने से। इक्का कुछ सुखो थोड़े ही छोड़ा है। जिसको देखो यही कहता था कि इक्का नहीं ताँगा लाओ, आराम को न देखा। अब जान को नहीं देखते और मोटर-मोटर, टैक्सी-टैक्सी पुकारते हैं। हुजूर हमें क्या, हम तो दो दिन के मेहमान रह गये हैं, खुदा जो दिखायेगा देख लेंगे।

— ज़माना, सितम्बर १९२६

शादी की वजह

यह सवाल ठेका है कि लोग क्यों शादी करते हैं ? औरत और मर्द को प्रकृत्या एक-दूसरे की जरूरत होती है लेकिन मौजूदा हालात में आम तौर पर शादी की यह मन्ची वजह नहीं होती बल्कि शादी सभ्य जीवन की एक रस्म-सी हो गयी है। बहरहाल, मैंने अक्सर शादीशुदा लोगों से इस बारे में पूछा तो लोगों ने इतनी तरह के जवाब दिये कि मैं दग रह गया। उन जवाबों को पाठकों के मनोरंजन के लिए नीचे लिखा जाता है —

एक साहब का तो बयान है कि मेरी शादी बिलकुल कमसिनी में हुई और उसकी जिम्मेदारी पूरी तरह मेरे माँ-बाप पर है। दूसरे साहब को अपनी खूबसूरती पर बड़ा नाज है। उनका खयाल है कि उनकी शादी उनके सुन्दर रूप की बदौलत हुई। तीसरे साहब फ़रमाते हैं कि मेरे पड़ोस में एक मुशी साहब रहते थे जिनके एक ही लडकी थी। मैंने सहानुभूतिवश खुद ही बातचीत करके शादी कर ली। एक साहब को अपने उत्तराधिकारी के रूप में एक लड़के की जरूरत थी। चुनाचे आपने इसी धुन में शादी कर ली। मगर बदकिस्मती से अब तक उनकी सात लड़कियाँ हो चुकी हैं और लडके का कहीं पता नहीं। आप कहते हैं कि मेरा खयाल है कि यह शरारत मेरी बीवी की है जो मुझे इस तरह कुढाना चाहती है। एक साहब बड़े पैसेवाले हैं और उनको अपनी दौलत खर्च करने का कोई तरीका ही मालूम न था इसलिए उन्होंने अपनी शादी कर ली। एक और साहब कहते हैं कि मेरे आत्मीय और स्वजन हर वज्रत मुझे घेरे रहा करते थे इसलिए मैंने शादी कर ली। और इसका नतीजा यह हुआ कि अब मुझे शान्ति है। अब मेरे यहाँ कोई नहीं आता। एक साहब तमाम उम्र दूसरों की शादी-ब्याह पर व्यवहार और भेट देते-देते परेशान हो गये तो आपने उनकी वापसी की गरज से आखिरकार खुद अपनी शादी कर ली।

और साहबों से जो मैंने दर्याफ्त किया तो उन्होंने निम्नलिखित कारण बतलाये। यह जवाब उन्हीं के शब्दों में नम्बरवार नीचे दर्ज किये जाते हैं —

१ — मेरे ससुर एक दौलतमन्द आदमी थे और उनकी यह इकलौती बेटी थी, इसलिए मेरे पिता ने शादी की।

२ — मेरे बाप-दादा सभी शादी करते चले आये हैं इसलिए मुझे भी शादी करना पड़ी।

३ — मैं हमेशा से खामोश और कम बोलनेवाला रहा हूँ, इनकार न कर सका।

४ — मेरे ससुर ने शुरू में अपने धन-दौलत का बहुत प्रदर्शन किया इसलिए मेरे माँ-बाप ने फौरन मेरी शादी मजूर कर ली।

५ — नौकर अच्छे नहीं मिलते थे और अगर मिलते भी थे तो ठहरते नहीं थे। खास तौर पर खाना पकानेवाला अच्छा नहीं मिलता। शादी के बाद इस मुसीबत से छुटकारा मिल गया।

६ — मैं अपना जीवन-बीमा कराना चाहता था और खानापूरी के वास्ते विधवा का नाम लिखना जरूरी था।

७ — मेरी शादी जिद में हुई। मेरे ससुर शादी के लिए रजामन्द न होते थे मगर मेरे पिता को जिद हो गयी। इसलिए मेरी शादी हुई। आखिरकार मेरे ससुर को मेरी शादी करना ही पड़ी।

८ — मेरे ससुरालवाले बड़े ऊँचे खानदान के हैं इसलिए मेरे माता-पिता ने कोशिश करके मेरी शादी की।

९ — मेरी शिक्षा की कोई उचित व्यवस्था न थी इसलिए मुझे शादी करना पड़ी।

१० — मेरे और मेरी बीवी के जनम के पहले ही हम दोनों के माँ-बाप में शादी की बातचीत पक्की हो गयी थी।

११ — लोगो के आग्रह से पिता ने शादी कर दी।

१२ — नस्ल और खानदान चलाने के लिए शादी की।

१३ — मेरी माँ का देहान्त हो गया था और कोई घर को देखनेवाला न था इसलिए मजबूरन शादी करना पड़ी।

१४ — मेरी बहने अकेली थी, इस वास्ते शादी कर ली।

१५ — मैं अकेला था, दफतर जाते वक़्त मकान में ताला लगाना पड़ता था इसलिए शादी कर ली।

१६ — मेरी माँ ने कसम दिलायी थी इसलिए शादी की।

१७ — मेरी पहली बीवी की औलाद को परवरिश की जरूरत थी, इसलिए शादी की।

१८ — मेरी माँ का खयाल था कि वह जल्द मरनेवाली है और मेरी शादी

अपने ही सामने कर देना चाहती थीं, इसलिए मेरी शादी हो गयी। लेकिन शादी को दस साल हो रहे हैं और भगवान की दया से माँ के आशीष की छाया अभी तक कायम है।

१९ — तलाक देने को जी चाहता था इसलिए शादी की।

२० — मैं मरीज रहता हूँ और कोई तीमारदार नहीं है इसलिए मैंने शादी कर ली।

२१ — केवल सयोग से मेरा विवाह हो गया।

२२ — जिस साल मेरी शादी हुई उस साल बहुत बड़ी सहालग थी। सबकी शादी होती थी, मेरी भी हो गयी।

२३ — बिला शादी के कोई अपना हाल पूछनेवाला न था।

२४ — मैंने शादी नहीं की है, एक आफत मोल ले ली है।

२५ — पैसेवाले चर्चा की अवज्ञा न कर सका।

२६ — मैं बुड्ढा होने लगा था, अगर अब शादी न करता तो कब करता।

२७ — लोक-हित के ख्याल से शादी की।

२८ — पड़ोसी बुरा समझते थे इसलिए निकाह कर लिया।

२९ — डाक्टरों ने शादी के लिए मजबूर किया।

३० — मेरी कविताओं की कोई दाद न देता था। ✓^३

३१ — मेरे दाँत गिरने लगे थे और बाल सफेद हो गये थे इसलिए शादी कर ली।

३२ — फ़ौज में शादीशुदा लोगों को तनख्वाह ज्यादा मिलती थी इसलिए मैंने भी शादी कर ली।

३३ — कोई मेरा गुस्सा बर्दाश्त न करता था इसलिए मैंने शादी कर ली।

३४ — बीबी से ज्यादा कोई अपना समर्थक नहीं होता इसलिए मैंने शादी कर ली।

३५ — मैं खुद हैरान हूँ कि शादी क्यों की।

३६ — शादी भाग्य में लिखी थी इसलिए कर ली।

इसी तरह जितने मुँह उतनी बातें सुनने में आयीं।

मोटेराम जी शास्त्री

१

पण्डित मोटेराम जी शास्त्री को कौन नहीं जानता ? आप अधिकारियों का रुख देखकर काम करते हैं। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में आपने उस आन्दोलन का खूब विरोध किया था। स्वराज्य आन्दोलन के दिनों में भी आपने अधिकारियों से राजभक्ति की सनद हासिल की थी। मगर जब इतनी उछल-कूद पर भी उनकी तकदीर की मीठी नींद न टूटी, और अध्यापन-कार्य से पिण्ड न छूटा, तो अन्त में आपने एक नयी तदबीर सोची। घर में जाकर धर्मपत्नी जी से बोले — इन बूढ़े तोतों को रटाते-रटाते मेरी खोपड़ी पच्ची हुई जाती है। इतने दिनों विद्या-दान देने का क्या फल मिला जो और आगे कुछ मिलने की आशा करूँ ?

धर्मपत्नी ने चिंतित होकर कहा — भोजनों का भी तो कोई सहारा चाहिए ?

मोटेराम — तुम्हें जब देखो, पेट ही की फिक्र पड़ी रहती है। कोई ऐसा विरला ही दिन जाता होगा कि निमंत्रण न मिलते हो, और चाहे कोई निन्दा ही करे, पर मैं परोसा लिये बिना नहीं आता हूँ। क्या आज ही सब यजमान मरे जाते हैं ? मगर जन्म भर पेट ही जिलाया तो क्या किया। ससार का कुछ सुख भी तो भोगना चाहिए। मैंने वैद्य बनने का निश्चय किया है।

स्त्री ने आश्चर्य से कहा — वैद्य कैसे बनोगे, कुछ वैद्यकी पढ़ी भी है ?

मोटे० — वैद्यक पढ़ने से कुछ नहीं होता, संसार में विद्या का इतना महत्व नहीं जितना बुद्धि का। दो-चार सीधे-सादे लटके हैं, बस और कुछ नहीं है। आज ही अपने नाम के आगे भिषगाचार्य बड़ा लूंगा, कौन पूछने आता है, तुम भिषगाचार्य हो या नहीं। किसी को क्या गरज पड़ी है जो मेरी परीक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूंगा। उस पर यह शब्द लिखे होंगे — 'यहाँ स्त्री-पुरुषों के गुप्त रोगों की चिकित्सा विशेष रूप से की जाती है।' दो-चार पैसे का हड़-बहेड़ा-आँवला कूट-छानकर रख लूंगा। बस इस काम के लिए इतना सामान पर्याप्त है। हाँ, समाचारपत्रों में विज्ञापन दूंगा और नोटिस बँटवाऊँगा। उसमें लका, मद्रास, रंगून, कराची आदि दूरस्थ स्थानों के सज्जनों की चिट्ठियाँ दर्ज की जायेंगी।

ये मेरे चिकित्सा-कौशल के साक्षी होंगे। जनता को क्या पड़ी है कि वह इस बात का पता लगाती फिरे कि उन स्थानों में इन नामों के मनुष्य रहते भी हैं, या नहीं। फिर देखो वैद्यक कैसी चलती है।

स्त्री — लेकिन बिना जाने-बूझे दवा दोगे, तो फायदा क्या करेगी ?

मोटे० — फायदा न करेगी, मेरी बला से। वैद्य का काम दवा देना है, वह मृत्यु को परास्त करने का ठेका नहीं लेता, और फिर जितने आदमी बीमार पड़ते हैं, सभी तो नहीं मर जाते। मेरा तो यह कहना है कि जिन्हें कोई औषधि नहीं दी जाती, वे विकार शान्त हो जाने पर आप ही अच्छे हो जाते हैं। वैद्यों को बिना माँगे यश मिलता है। पाँच रोगियों में एक भी अच्छा हो गया, तो उसका यश मुझे अवश्य ही मिलेगा। शेष चार जो मर गये, वे मेरी निन्दा करने थोड़े ही आवेंगे। मैंने बहुत विचार करके देख लिया, इससे अच्छा कोई काम नहीं है। लेख लिखना मुझे आता ही है, कवित्त बना ही लेता हूँ, पत्रों में आयुर्वेद-महत्व पर दो-चार लेख लिख दूँगा, उनमें जहाँ-तहाँ दो-चार कवित्त भी जोड़ दूँगा और लिखूँगा भी ज़रा चटपटी भाषा में। फिर देखो कितने उल्लू फँसते हैं। यह न समझो कि मैं इतने दिनों केवल बूढ़े तोते ही रटाता रहा हूँ। मैं नगर के सफल वैद्यों की चालों का अवलोकन करता रहा हूँ और इतने दिनों के बाद मुझे उनकी सफलता के मूल-मंत्र का ज्ञान हुआ है। ईश्वर ने चाहा तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक सोने से लदी होगी।

स्त्री ने अपने मनोल्लास को दबाते हुए कहा — मैं इस उम्र में भला क्या गहने पहनूँगी, न अब वह अभिलाषा ही है, पर यह तो बताओ कि तुम्हें दवाएँ बनानी भी तो नहीं आती, कैसे बनाओगे, रस कैसे बनेंगे, दवाओं को पहचानते भी तो नहीं हो ?

मोटे० — प्रिये ! तुम वास्तव में बड़ी मूर्खा हो। अरे वैद्यों के लिए इन बातों में से एक की भी आवश्यकता नहीं। वैद्य की चुटकी की राख ही रस है, भस्म है, रसायन है, बस आवश्यकता है कुछ ठाट-बाट की। एक बड़ा-सा कमरा चाहिए, उसमें एक दरि हो, ताखों पर दस-पाँच शीशियों-बोतलें हो। इसके सिवा और कोई चीज दरकार नहीं, और सब कुछ बुद्धि आप ही आप कर लेती है। मेरे साहित्य-मिश्रित लेखों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा, तुम देख लेना। अलकारों का मुझे कितना ज्ञान है, यह तो तुम जानती ही हो। आज इस भूमण्डल पर मुझे ऐसा कोई नहीं दीखता जो अलकारों के विषय में मुझसे पेश पा सके। आखिर इतने दिनों घास तो नहीं खोदी है ! दस-पाँच आदमी तो कवि-चर्चा के नाते ही मेरे यहाँ आया-जाया

करेगे। बस वही मेरे दल्लाल होंगे। उन्हीं की मार्फत मेरे पास रोगी आवेंगे। मैं आयुर्वेद-ज्ञान के बल पर नहीं, नायिका-ज्ञान के बल पर धडल्ले से वैद्यक करूँगा, तुम देखती तो जाओ।

स्त्री ने अविश्वास के भाव से कहा — मुझे तो डर लगता है कि कहीं यह विद्यार्थी भी तुम्हारे हाथ से न जायें। न इधर के रहो न उधर के। तुम्हारे भाग्य में तो लडके पढ़ाना लिखा है, और चारों ओर से ठोकर खाकर फिर तुम्हें वही तोते रटाने पड़ेगे।

मोटे० — तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास क्यों नहीं आता ?

स्त्री — इसलिए कि तुम वहाँ भी धूर्तता करोगे। मैं तुम्हारी धूर्तता से चिढ़ती हूँ। तुम जो कुछ नहीं हो और नहीं हो सकते, वह क्यों बनना चाहते हो ? तुम लीडर न बन सके, न बन सके, सिर पटककर रह गये। तुम्हारी धूर्तता ही फलीभूत होती है और इसी से मुझे चिढ़ है। मैं चाहती हूँ कि तुम भले आदमी बनकर रहो। निष्कपट जीवन व्यतीत करो। मगर तुम मेरी बात कब सुनते हो ?

मोटे० — आखिर मेरा नायिका-ज्ञान कब काम आवेगा ?

स्त्री — किसी रईस की मुसाहिबी क्यों नहीं कर लेते ? जहाँ दो-चार सुन्दर कवित्त सुना दोगे वह खुश हो जायगा और कुछ न कुछ दे ही मरेगा। वैद्यक का ढोग क्यों रचते हो !

मोटे० — मुझे ऐसे-ऐसे गुर मालूम है जो वैद्यों के बाप-दादों को भी न मालूम होंगे। और सभी वैद्य एक-एक, दो-दो रुपये पर मारे-मारे फिरते हैं, मैं अपनी फीस पाँच रुपये रक्खूँगा, उस पर सवारी का किराया अलग। लोग यही समझेंगे कि यह कोई बड़े वैद्य है नहीं तो इतनी फ्रीस क्यों होती ?

स्त्री को अबकी कुछ विश्वास आया, बोली — इतनी देर में तुमने एक बात मतलब की कही है। मगर यह समझ लो, यहाँ तुम्हारा रग न जमेगा, किसी दूसरे शहर को चलना पड़ेगा।

मोटे० — (हँसकर) क्या मैं इतना भी नहीं जानता। लखनऊ में अड्डा जमेगा अपना। साल भर में वह धाक बाँध दूँ कि सारे वैद्य गर्द हो जायें। मुझे और भी कितने ही मत्र आते हैं। मैं रोगी को दो-तीन बार देखे बिना उसकी चिकित्सा ही न करूँगा। कहूँगा, मैं जब तक रोगी की प्रकृति को भलीभाँति पहचान न लूँ, उसकी दवा नहीं कर सकता। बोलो कैसी रहेगी ?

स्त्री की बाँछें खिल गयीं, बोली — अब मैं तुम्हें मान गयी। अवश्य चलेगी

तुम्हारी वैद्यकी, अब मुझे कोई सदेह नहीं रहा। मगर गरीबों के साथ यह मंत्र न चलाना नही तो धोखा खाओगे।

२

साल भर गुजर गया।

भ्रिषगाचार्य पण्डित मोटेराम जी शास्त्री की लखनऊ में धूम मच गयी। अलंकारो का ज्ञान तो उन्हें था ही, कुछ गा-बजा भी लेते थे। उस पर गुप्त रोगो के विशेषज्ञ, रसिकों के भाग्य जागे। पण्डित जी उन्हें कवित्त सुनाते, हँसाते और बलकारक औषधियाँ खिलाते, और वह रईसो में, जिन्हे पुष्टिकारक औषधियों की विशेष चाह रहती है, उनकी तारीफो के पुल बाँधते। साल ही भर में वैद्यजी का वह रंग जमा, कि बायद व शायद। गुप्त रोगों के चिकित्सक लखनऊ में एकमात्र वही थे। गुप्त रूप से चिकित्सा भी करते। विलासिनी विधवा रानियों और शौकीन अदूरदर्शी रईसो में आपकी खूब पूजा होने लगी। किसी को अपने सामने समझते ही न थे।

मगर स्त्री उन्हें बराबर समझाया करती कि रानियो के झमेले में न फँसो, नही एक दिन पछताओगे।

मगर भावी तो होकर ही रहती है, कोई लाख समझाये-बुझाये। पण्डितजी के उपासको में बिड़हल की रानी भी थीं। राजा साहब का स्वर्गवास हो चुका था, रानी साहिबा न जाने किस जीर्ण रोग में ग्रस्त थी। पण्डितजी उनके यहाँ दिन में पाँच-पाँच बार जाते। रानी साहिबा उन्हें एक क्षण के लिए भी अपने पास से हटने न देना चाहती थी। पण्डितजी के पहुँचने में ज़रा भी देर हो जाती तो बेचैन हो जाती। एक मोटर नित्य उनके द्वार पर खडी रहती थी। अब पण्डित जी ने खूब केचुल बदली थी। तजेब की अचकन पहनते, बनारसी साफा बाँधते और पप जूता डाटते थे। मित्रगण भी उनके साथ मोटर पर बैठकर दनदनाया करते थे। कई मित्रों को रानी साहिबा के दरबार में नौकर रखा दिया। रानी साहिबा भला अपने मसीहा की बात कैसे टालती।

मगर चर्खे जफाकार और ही षड्यन्त्र रच रहा था।

एक दिन पण्डितजी, रानी साहिबा की गोरी-गोरी कलाई पर एक हाथ रखे नब्ब देख रहे थे, और दूसरे हाथ से उनके हृदय की गति की परीक्षा कर रहे थे कि इतने में कई आदमी सोटे लिये हुए कमरे में घुस आये और पण्डितजी पर टूट पड़े। रानी ने भागकर दूसरे कमरे की शरण ली और किवाड़ बन्द कर लिये।

पण्डितजी पर बेभाव पडने लगी। यों तो पण्डितजी भी दमखम के आदमी थे, एक गुप्ती सदैव साथ रखते थे। पर जब धोखे मे कई आदमियो ने घर दबाया तो क्या करते? कभी इसका पैर पकड़ते, कभी उसका। हाय! हाय! का शब्द निरन्तर मुँह से निकल रहा था पर उन बेरहमो को उन पर जरा भी दया न आती थी। एक आदमी ने एक लात जमाकर कहा — इस दुष्ट की नाक काट लो।

दूसरा बोला — इसके मुँह मे कालिख और चूना लगाकर छोड़ दो।

तीसरा — क्यों वैद्यजी महाराज, बोलो क्या मजूर है? नाक कटवाओगे या मुँह मे कालिख लगवाओगे?

पण्डित — हाय, हाय, मर गया और जो चाहे करो, मगर नाक न काटो!

एक — अब तो फिर इधर न आवेगा?

पण्डित — भूलकर भी नहीं, सरकार। हाय मर गया!

दूसरा — आज ही लखनऊ से रफ़ूँट हो जाओ नहीं तो बुरा होगा।

पण्डित — सरकार, मैं आज ही चला जाऊँगा। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूँ। आप यहाँ मेरी सूरत न देखेंगे।

तीसरा — अच्छा भाई, सब कोई इसे पाँच-पाँच लाते लगाकर छोड़ दो।

पण्डित — अरे सरकार, मर जाऊँगा, दया करो।

चौथा — तुम जैसे पाखंडियों का मर जाना ही अच्छा है। हाँ तो शुरू हो।

पँचलत्ती पडने लगी, धमाधम की आवाजे आने लगी। मालूम होता था नगाड़े पर चोट पड़ रही है। हर धमाके के बाद एक बार हाय की आवाज निकल आती थी, मानो उसकी प्रतिध्वनि हो।

पँचलत्ती पूजा समाप्त हो जाने पर लोगों ने मोटेराम जी को घसीटकर बाहर निकाला और मोटर पर बैठाकर घर भेज दिया। चलते-चलते चेतावनी दे दी, कि प्रातःकाल से पहले भाग खड़े होना, नहीं तो और ही इलाज किया जायगा।

३

मोटोराम जी लँगड़ते, कराहते, लकड़ी टेकते घर मे गये और धम से चारपाई पर गिर पड़े। स्त्री ने घबराकर पूछा—कैसा जी है? अरे तुम्हारा क्या हाल है? हाय-हाय यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है!

मोटे० — हाय भगवन, मर गया।

स्त्री — कहीं दर्द है? इसी मारे कहती थी, बहुत रबड़ी न खाओ। लवण-भास्कर ले आऊँ?

मोटे० — हाय, दुष्टो ने मार डाला। उसी चाण्डालिनी के कारण मेरी दुर्गति हुई। मारते-मारते सबों ने भुरकुस निकाल लिया।

स्त्री — तो यह कहो कि पिटकर आये हो। हाँ पिटे तो हो। अच्छा हुआ। हो तुम लातों ही के देवता। कहती थी कि रानी के यहाँ मत आया-जाया करो। मगर तुम कब सुनते थे।

मोटे० — हाय, हाय! राँड, तुझे भी इसी दम कोसने की सूझी। मेरा तो बुरा हाल है और तू कोस रही है। किसी से कह दे, ठेला-वेला लावे, रातों-रात लखनऊ से भाग जाना है। नहीं तो सबेरे प्राण न बचेगे।

स्त्री — नहीं, अभी तुम्हारा पेट नहीं भरा। अभी कुछ दिन और यहाँ की हवा खाओ! कैसे मजे से लडके पढ़ाते थे, हाँ, नहीं तो वैद्य बनने की सूझी। बहुत अच्छा हुआ, अब उम्र भर न भूलोगे। रानी कहाँ थी कि तुम पिटते रहे और उसने तुम्हारी रक्षा न की?

पण्डित — हाय, हाय, वह चुडैल तो भाग गयी। उसी के कारण! क्या जानता था कि यह हाल होगा, नहीं तो उसकी चिकित्सा ही क्यों करता?

स्त्री — हो तुम तकदीर के खोटे। कौसी वैद्यकी चल गयी थी। मगर तुम्हारी करतूतों ने सत्यानाश मार दिया। आखिर फिर वही पढौनी करना पड़ी। हो तकदीर के खोटे।

×

×

×

प्रातःकाल मोटेराम जी के द्वार पर ठेला खड़ा था और उस पर असबाब लद रहा था। मित्रों से एक भी नजर न आता था। पण्डितजी पड़े कराह रहे थे और स्त्री सामान लदवा रही थी।

— माधुरी, जनवरी १९२८

पर्वत-यात्रा

प्रातःकाल मुं० गुलबाजखॉ ने नमाज पढी, कपडे पहने और महरी से किराये की गाड़ी लाने को कहा। शीरी बेगम ने पूछा—आज सबेरे-सबेरे कहाँ जाने का इरादा है?

गुल — जरा छोटे साहब को सलाम करने जाना है।

शीरी — तो पैदल क्यों नहीं चले जाते? कौन बड़ी दूर है।

गुल — जो बात तुम्हारी समझ में न आये, उसमें जबान न खोला करो।

शीरी — पूछती तो हूँ पैदल चले जाने में क्या हरज है? गाड़ीवाला एक रुपये से कम न लेगा।

गुल — (हँसकर) हुक्काम किराया नहीं देते। उसकी हिम्मत है कि मुझसे किराया माँगे! चालान करवा दूँ।

शीरी — तुम तो हाकिम भी नहीं हो, तुम्हें वह क्यों ले जाने लगा।

गुल — हाकिम कैसे नहीं हूँ? हाकिम के क्या सीग-पूँछ होती है, जो मेरे नहीं है? हाकिम का दोस्त हाकिम से कम रोब नहीं रखता। अहमक नहीं हूँ कि सौ काम छोड़कर हुक्काम की सलामी बजाया करता हूँ। यह इसी की बरकत है कि पुलिस, माल, दीवानी के अहलकार मुझे झुक-झुककर सलाम करते हैं। थानेदार ने कल जो सौगात भेजी थी, वह किसलिए? मैं उनका दामाद तो नहीं हूँ! सब मुझसे डरते हैं।

इतने में महरी एक ताँगा लायी। खॉ साहब ने फौरन साफ़ा बाँधा और चले। शीरी ने कहा — अरे तो, पान तो खाते जाओ!

गुल—हाँ, लाओ हाथ में मेहदी भी लगा दो। अरी नेकबख्त, हुक्काम के सामने पान खाकर जाना बेअदबी है।

शीरी — आओगे कब तक? खाना तो यहीं खाओगे!

गुल — तुम मेरे खाने की फिक्र न करना, शायद कुँअर साहब के यहाँ चला जाऊँ। कोई मुझे पूछे तो कहला देना, बड़े साहब से मिलने गये हैं।

खॉ साहब आकर ताँगे पर बैठे। ताँगेवाले ने पूछा—हुजूर कहाँ चलूँ?

गुल — छोटे साहब के बँगले पर। सरकारी काम से जाना है।

तांगे० — हुजूर को वहाँ कितनी देर लगेगी ?

गुल — यह मैं कैसे बता दूँ, यह तो हो नहीं सकता कि साहब मुझसे बार-बार बैठने को कहे, और मैं उठकर चला आऊँ। सरकारी काम है, न जाने कितनी देर लगे। बड़े अच्छे आदमी हैं बेचारे। मजाल नहीं कि जो बात कह दूँ, उससे इनकार कर दें। आदमी को ग़रूर न करना चाहिए। ग़रूर करना शैतान का काम है। मगर कई थानेदारों से जवाब तलब करा चुका हूँ। जिसको देखा कि रिखाया को ईजा पहुँचाता है, उसके पीछे पड़ जाता हूँ।

तांगे० — हुजूर, पुलिस बड़ा अघेर करती है। जब देखो बेगार, कभी आधी रात को बुला भेजा, कभी फजिर को। मरे जाते हैं हुजूर। उस पर हर मोड़ पर सिपाहियों को पैसे चाहिए। न दें, तो झूठा चालान कर दे।

गुल — सब जानता हूँ जी, अपनी झोपड़ी में बैठा सारी दुनिया की सैर किया करता हूँ। वही बैठे-बैठे बदमाशों की खबर लिया करता हूँ। देखो, तांगे को बँगले के भीतर न ले जाना। बाहर फाटक पर रोक देना।

तांगे० — अच्छा हुजूर। अच्छा अब देखिए वह सिपाही मोड़ पर खड़ा है। पैसे के लिए हाथ फैलायेगा। न दूँ तो ललकारेगा। मगर आज कसम कुरान की, टका-सा जवाब दे दूँगा। हुजूर बैठे हैं, तो क्या कर सकता है।

गुल — नहीं, नहीं, जरा-जरा-सी बात पर मैं इन छोटे आदमियों से नहीं लड़ता। पैसे दे देना। मैं तो पीछे से बचा की खबर लूँगा। मुअत्तल न करा दूँ तो सही। दूबहू गाली-गलौज करना, इन छोटे आदमियों के मुँह लगना मेरी आदत नहीं।

तांगेवाले को भी यह बात पसन्द आयी। मोड़ पर उसने सिपाही को पैसे दे दिये। तांगा साहब के बँगले पर पहुँचा। खाँ साहब उतरे, और जिस तरह कोई शिकारी पैर दबा-दबाकर चौकन्नी आँखों से देखता हुआ चलता है, उसी तरह आप बँगले के बरामदे में जाकर खड़े हो गये। बैरा बरामदे में बैठा था। आपने उसे देखते ही सलाम किया।

बैरा — हुजूर तो अघेर करते हैं। सलाम हमको करना चाहिए और आप पहले ही हाथ उठा देते हैं।

गुल, — अजी इन बातों में क्या रक्खा है। खुदा की निगाह में सब इन्सान बराबर हैं।

बैरा — हुजूर को अल्लाह सलामत रखे, क्या बात कही है। हक तो यही है, पर आदमी अपने को कितना भूल जाता है! यहाँ तो छोटे-छोटे अमले भी इतज़ार करते रहते हैं कि यह हाथ उठावे। साहब को इत्तला कर दूँ?

गुल — आराम में हों तो रहने दो, अभी ऐसी कोई जल्दी नहीं।

बैरा — जी नहीं हुजूर, हाजिरी पर से तो कभी उठ चुके, कागज़-वागज़ पढते होंगे।

गुल — अब इसका तुम्हें अख्तियार है, जैसा मौका हो वैसा करो। मौका-महल पहचानना तुम्ही लोगों का काम है। क्या हुआ, तुम्हारी लडकी तो खैरियत से है न?

बैरा — हाँ हुजूर, अब बहुत मजे में है। जब से हुजूर ने उसके घरवालों को बुलाकर डॉट दिया है, तब से किसी ने चूँ भी नहीं किया। लडकी हुजूर की जान-माल को दुआ देती है।

बैरे ने साहब को खॉँ साहब की इत्तला की, और एक क्षण में खॉँ साहब जूते उतारकर साहब के सामने जा खड़े हुए और सलाम करके फर्श पर बैठ गये। साहब का नाम काटन था।

काटन — ओ! ओ! यह आप क्या करता है, कुर्सी पर बैठिए, कुर्सी पर बैठिए।

खॉँ — बहुत मजे में बैठा हूँ हुजूर। आपके बराबर भला बैठ सकता हूँ! आप बादशाह, मैं रैयत।

काटन — नहीं, नहीं आप हमारा दोस्त है।

खॉँ — हुजूर चाहे मेरे को आफताब बना दे, पर मैं तो अपनी हकीकत समझता हूँ। बदा उन लोगों में नहीं है जो हुजूर के करम से चार हरफ पढ़कर ज़मीन पर पाँव नहीं रखते और हुजूर लोगों की बराबरी करने लगते हैं।

काटन — खॉँ साहब, आप बहुत अच्छा आदमी हैं। हम आज के पाँचवे दिन नैनीताल जा रहा है। वहाँ से लौटकर आपसे मुलाकात करेगा। आप तो कई बार नैनीताल गया होगा। अब तो सब रईस लोग वहाँ जाता है।

खॉँ साहब नैनीताल क्या, बरेली तक भी न गये थे, पर इस समय कैसे कह देते कि मैं वहाँ कभी नहीं गया। साहब की नज़रो से गिर न जाते। साहब समझते कि यह रईस नहीं, कोई चरकटा है। बोले — हाँ हुजूर, कई बार हो आया हूँ।

काटन — आप कई बार ही आया है? हम तो पहली दफा जाता है। सुना बहुत अच्छा शहर है?

खाँ — बहुत बड़ा शहर है हुजूर, मगर कुछ ऐसा बड़ा भी नहीं है।

काटन — आप कहाँ ठहरता है। वहाँ होटलो मे तो बहुत पैसा लगता है।

खाँ — मेरी हुजूर न पूछे, कभी कही ठहर गया, कभी कही ठहर गया। हुजूर के अकबाल से सभी जगह दोस्त है।

काटन — आप वहाँ किसी के नाम चिट्ठी दे सकता है कि मेरे ठहरने का बंदोबस्त कर दे। हम किफायत से काम करना चाहता है। आप तो हर साल जाता है, हमारे साथ क्यों नहीं चलता।

खाँ साहब बड़ी मुश्किल मे फँसे। अब बचाव का कोई उपाय न था। कहना पडा — जैसा हुजूर का हुक्म, हुजूर के साथ ही चला चलूँगा। मगर मुझे अभी ज़रा देर है हुजूर।

काटन — ओ कुछ परवाह नहीं, हम आपके लिए एक हफ़ता ठहर सकता है। अच्छा सलाम। आज ही आप अपने दोस्त को जगह का इंतजाम करने को लिख दे। आज के सातवे दिन हम और आप साथ चलेगा। हम आपको रेलवे स्टेशन पर मिलेगा।

खाँ साहब ने सलाम किया, और बाहर निकले। ताँगेवाले से कहा — कुँअर शमशेरसिंह की कोठी पर चलो।

२

कुँअर शमशेरसिंह खानदानी रईस थे। उन्हे अभी तक अँग्रेजी रहन-सहन की हवा न लगी थी। दस बजे दिन तक सोना, फिर दोस्तों और मुसाहिबों के साथ गपशप करना, दो बजे खाना खाकर फिर सोना, शाम को चौक की हवा खाना और घर आकर बारह-एक बजे रात तक किसी परी का मुजरा देखना, यही उनकी दिनचर्या थी। दुनिया मे क्या होता है, इसकी उन्हे कुछ खबर न होती थी। या हुई भी तो सुनी-सुनायी। खाँ साहब उनके दोस्तों मे थे।

जिस वक़्त खाँ साहब कोठी में पहुँचे दस बज गये थे, कुँअर साहब बाहर निकल आये थे, मित्रगण जमा थे। खाँ साहब को देखते ही कुँअर साहब ने पूछा — कहिए खाँ साहब, किधर से?

खाँ साहब — ज़रा साहब से मिलने गया था। कई दिन बुला-बुला भेजा,

मगर फुसंत ही न मिलती थी। आज उनका आदमी जबर्दस्ती खींच ले गया। क्या करता, जाना ही पड़ा। कहाँ तक बेखली कल्ले।

कुँअर — यार, तुम न जाने अफसरो पर क्या जादू कर देते हो कि जो आता है तुम्हारा दम भरने लगता है। मुझे वह मंत्र क्यों नहीं सिखा देते।

खाँ — मुझे खुद ही नहीं मालूम कि क्योहुक्काम मुझ पर इतने मेहरबान रहते हैं। आपको यक्रीन न आवेगा, मेरी आवाज सुनते ही कमरे के दरवाजे पर आकर खड़े हो गये और ले जाकर अपनी खास कुर्सी पर बैठा दिया।

कुँअर — अपनी खास कुर्सी पर ?

खाँ — हाँ साहब, हैरत में आ गया, मगर बैठना ही पड़ा। फिर सिगार मँगवाया, इलाइची, मेवे, चाय सभी कुछ आ गये। यों कहिए कि खासी दावत हो गयी। यह मेहमानदारी देख कर मैं दंग रह गया।

कुँअर — तो वह सब दोस्ती भी करना जानते हैं।

खाँ — अजी दूसरा क्या खा के दोस्ती करेगा। अब हद हो गयी कि मुझे अपने साथ नैनीताल चलने को मजबूर किया।

कुँअर — सच !

खाँ — कसम कुरान की। हैरान था कि क्या जवाब दूँ। मगर जब देखा कि किसी तरह नहीं मानते, तो वादा करना ही पड़ा। आज ही के दिन कूच है।

कुँअर — क्यों यार, मैं भी चला चलूँ तो क्या हरज है ?

खाँ — सुमानअल्लाह, इससे बढ़कर क्या बात होगी।

कुँअर — भई, लोग तरह-तरह की बातें करते हैं, इससे जाते डर लगता है। आप तो हो आये होंगे ?

खाँ — कई बार हो आया हूँ। हाँ, इधर कई साल से नहीं गया।

कुँअर — क्यों साहब, पहाड़ों पर चढ़ते-चढ़ते दम फूल जाता होगा ?

राधाकान्त व्यास बोले — धर्मावतार, चढ़ने को तो किसी तरह चढ भी जाइए, पर पहाड़ों का पानी ऐसा खराब होता है कि एक बार लग गया तो प्राण ही लेकर छोड़ता है। बदरीनाथ की यात्रा करने जितने यात्री जाते हैं, उनमें बहुत कम जीते लौटते हैं और सग्रहणी तो प्रायः सभी को ही जाती है।

कुँअर — हाँ, सुना तो हमने भी है कि पहाड़ों का पानी बहुत लगता है।

लाला सुखदयाल ने हामी भरी — गोसाईं जी ने भी तो पहाड़ के पानी की निन्दा की है —

लागत अति पहाड़ कर पानी।

बड़ दुख होत न जाइ बखानी॥

खाँ — तो यह इतने अँग्रेज वहाँ क्यों जाते हैं साहब ? ये लोग अपने वक्त के लुकमान हैं। इनका कोई काम मसलहत से खाली नहीं होता। पहाड़ों की सैर से कोई फायदा न होता तो क्यों जाते, ज़रा यह तो सोचिए।

व्यास — यही सोच-सोचकर तो हमारे रईस अपना सर्वनाश कर रहे हैं। उनकी देखा-देखी धन का नाश, धर्म का नाश, बल का नाश होता चला जाता है, फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलती।

लाला — मेरे पिता जी एक बार किसी अँग्रेज के साथ पहाड़ पर गये। वहाँ से लौटे तो मुझे वसीयत की कि खबरदार कभी पहाड़ पर न जाना। आखिर कोई बात देखी होगी, जभी तो यह वसीयत की।

वाजिद — हुजूर, खाँ साहब जाते हैं जाने दीजिए, आपको मैं जाने की सलाह न दूँगा। ज़रा सोचिए, कोसों की चढाई, फिर रास्ता इतना खतरनाक कि खुदा की पनाह ! ज़रा-सी पगडंडी और दोनों तरफ कोसों का खड्ड। नीचे देखा और थरथराकर आदमी गिर पड़ा और जो कहीं पत्थरों में आग लग गयी, तो चलिए वारा-न्यारा हो गया। जल-भुन के कबाब हो गये।

खाँ — और जो लाखों आदमी पहाड़ों पर रहते हैं ?

वाजिद — उनकी और बात है भाई साहब।

खाँ — और बात कैसी ? क्या वे आदमी नहीं हैं ?

वाजिद — लाखों आदमी दिनभर हल जोतते हैं, फावडे चलाते हैं, लकड़ी फाड़ते हैं, आप करोगे ? है आपमें इतना दम ? हुजूर उस चढाई पर चढ सकते हैं ?

खाँ — क्यों नहीं टट्टुओं पर जायँगे।

वाजिद — टट्टुओं पर छ. कोस की चढाई ! होश की दवा कीजिए।

कुँअर — टट्टू पर ! भई हमसे न जाया जायगा। कहीं टट्टू भडके तो कहीं के न रहे।

लाला — गिरे तो हड्डियाँ तक न मिले !

व्यास — प्राण तक चूर-चूर हो जाय।

वाजिद — खुदावद, एक ज़रा-सी अँचाई पर से आदमी देखता है, तो काँपने लगता है, न कि पहाड़ की चढाई।

कुँअर — वहाँ सड़कों पर इधर-उधर ईंट या पत्थर की मुँडेर नहीं बनी हुई है ?

वाजिद — खुदावद, मजिलों के रास्ते में मुंडेर कैसी !

कुँअर — आदमी का काम तो नहीं है।

लाला — सुना वहाँ घेघा निकल आता है।

कुँअर — अरे भई, यह बुरा रोग है। तब मैं वहाँ जाने का नाम भी न लूँगा।

खाँ — आप लाला साहब से पूछे कि साहब लोग जो वहाँ रहते हैं, उनको घेघा क्यों नहीं हो जाता।

लाला — वह लोग ब्रांडी पीते है। हम और आप उनकी बराबरी कर सकते है भला। फिर उनका अकबाल !

वाजिद — मुझे तो यकीन नहीं आता कि खाँ साहब कभी नैनीताल गये हों। इस वक़्त डींग मार रहे है। क्यों साहब, आप कितने दिन वहाँ रहे ?

खाँ — कोई चार बरस तक रहा था।

वाजिद — आप वहाँ किस मुहल्ले में रहते थे ?

खाँ — (गड़बड़ाकर) जी—मै।

वाजिद — आखिर आप चार बरस कहाँ रहे ?

खाँ — देखिए याद आ जाय तो कहूँ।

वाजिद — जाइए भी। नैनीताल की सूरत तक तो देखी नहीं, गप हाँक दी कि वहाँ चार बरस तक रहे !

खाँ — अच्छा साहब, आप ही का कहना सही। मै कभी नैनीताल नहीं गया। बस अब तो खुश हुए।

कुँअर — आखिर आप क्यों नहीं बताते कि नैनीताल में आप कहाँ ठहरे थे।

वाजिद — कभी गये हों, तब न बताये।

खाँ — कह तो दिया कि मैं नहीं गया, चलिए छुट्टी हुई। अब आप फ़रमाइए कुँअर साहब, आपको चलना है या नहीं ? ये लोग जो कहते है सब ठीक। वहाँ घेघा निकल आता है, वहाँ का पानी इतना खराब कि खाना बिलकुल नहीं हज़म होता, वहाँ हर रोज़ दस-पाँच आदमी खड्ड में गिरा करते है। अब आप क्या फ़ैसला करते है ? वहाँ जो मजे है वह यहाँ ख़ाब मे भी नहीं मिल सकते। जिन हुक्काम के दरवाज़े पर घटों खड़े रहने पर भी मुलाकात नहीं होती, उनसे वहाँ चौबीसो घटो का साथ रहेगा। मिसो के साथ झील मे सैर करने का मञ्चा अगर मिल सकता है तो वहीं। अजी सैकड़ों अँग्रेज़ों से दोस्ती हो जायगी। तीन महीने वहाँ

रहकर आप इतना नाम हासिल कर सकते हैं जितना यहाँ जिन्दगी भर भी न होगा। बस, और क्या कहूँ।

कुँअर — वहाँ बड़े बड़े अँग्रेजों से मुलाकात हो जायगी ?

खाँ — जनाब, दावतो के मारे आपको दम मारने की मोहलत न मिलेगी।

कुँअर — जी तो चाहता है कि एक बार देख ही आये।

खाँ — तो बस तैयारी कीजिए।

सभाजन ने जब देखा कि कुँअर साहब नैनीताल जाने के लिए तैयार हो गये तो सब के सब हाँ में हाँ मिलाने लगे।

व्यास — पर्वत-कदराओं में कभी-कभी योगियों के दर्शन हो जाते हैं।

लाला — हाँ साहब, सुना है — दो-दो सौ साल के योगी वहाँ मिलते हैं। जिसकी ओर एक बार आँख उठाकर देख लिया, उसे चारों पदार्थ मिल गये।

वाजिद — मगर हज़ूर चले, तो इस ठाठ से चले कि वहाँ के लोग भी कहें कि लखनऊ के कोई रईस आये है।

लाला — लक्ष्मी हथिनी को जरूर ले चलिए। वहाँ कभी किसी ने हाथी की सूरत काहे को देखी होगी। जब सरकार सवार होकर निकलेंगे और गगा-जमुनी हौदा चमकेगा तो लोग दग हो जायँगे।

व्यास — एक डका भी हो, तो क्या पूछना।

कुँअर — नहीं साहब, मेरी सलाह डंके की नहीं है। देश देखकर भेस बनाना चाहिए।

लाला — हाँ, डंके की सलाह तो मेरी भी नहीं है। पर हाथी के गले में घटा जरूर हो।

खाँ — जब तक वहाँ किसी दोस्त को तार दे दीजिए कि एक पूरा बँगला ठीक कर रखे। छोटे साहब को भी उसी में ठहरा लगे।

कुँअर — वह हमारे साथ क्यों ठहरने लगे। अफ़सर है।

खाँ — उनको लाने का जिम्मा हमारा। खीच-खाँचकर किसी न किसी तरह ले ही आऊँगा।

कुँअर — अगर उनके साथ ठहरने का मौका मिले, तब तो मैं समझूँ नैनीताल का जाना पारस हो गया।

का खत आया कि आप हमारे यहाँ आयेगे या मुझसे स्टेशन पर मिलेगे। कुँअर साहब ने जवाब लिखवाया कि आप इधर ही आ जाइएगा। स्टेशन का रास्ता इसी तरफ से है। मैं तैयार रहूँगा। यह खत लिखवाकर कुँअर साहब अन्दर गये तो देखा कि उनकी बड़ी साली रामेश्वरी देवी बैठी हुई है। उन्हे देखकर बोली—क्या आप सचमुच नैनीताल जा रहे है ?

कुँअर — जी हाँ, आज रात को तैयारी है।

रामेश्वरी—अरे ! आज ही रात को ! यह नहीं हो सकता। कल बच्चा का मुडन है। मैं एक न मानूँगी। आप ही न होंगे तो और लोग आकर क्या करेगे।

कुँअर — तो आपने पहले ही क्यों न कहला दिया, पहले से मालूम होता तो मैं कल जाने का इरादा ही क्यों करता।

रामेश्वरी — तो इसमें लाचारी की कौन-सी बात है, कल न सही दो-चार दिन बाद सही।

कुँअर साहब की पत्नी सुशीला देवी बोली — हाँ और क्या, दो-चार दिन बाद ही जाना, क्या साइत टली जाती है।

कुँअर — आह ! छोटे साहब से वादा कर चुका हूँ, वह रात ही को मुझे लेने आयेंगे। आखिर वह अपने दिल में क्या कहेंगे ?

रामेश्वरी — ऐसे-ऐसे वादे हुआ ही करते है। छोटे साहब के हाथ कुछ बिक तो गये नहीं हो।

कुँअर — मैं क्या कहूँ कि कितना मजबूर हूँ ! बहुत लज्जित होना पड़ेगा।

रामेश्वरी — तो गोया जो कुछ है वह छोटे साहब ही है, मैं कुछ भी नहीं।

कुँअर — आखिर साहब से क्या कहूँ, कौन बहाना करूँ ?

रामेश्वरी — कह दो कि हमारे भतीजे का मुडन है, हम एक सप्ताह तक नहीं चल सकते। बस, छुट्टी हुई।

कुँअर — (हँसकर) कितना आसान कर दिया है आपने इस समस्या को। ऐसा हो सकता है कही। कही मुँह दिखाने लायक न रहूँगा।

सुशीला — क्यों, हो सकने को क्या हुआ ? तुम उसके गुलाम तो नहीं हो ?

कुँअर — तुम लोग बाहर तो निकलती-पैठती नहीं हो, तुम्हे क्या मालूम कि अँग्रेजों के विचार कैसे होते है।

रामेश्वरी — अरे भगवान ! आखिर उसके कोई लडका-बाला है, या निगोड़ा नाठ है ? त्योहार और ब्योहार हिन्दू-मुसलमान सबके यहाँ होते है।

कुँअर — भई हमसे कुछ करते-धरते नहीं बनता ।

रामेश्वरी — हमने कह दिया, हम जाने नहीं देगे । अगर तुम चले गये तो मुझे बड़ा रज होगा । तुम्ही लोगो से तो महफ़िल की शोभा होगी और अपना कौन बैठा हुआ है ।

कुँअर — अब तो साहब को लिख भेजने का भी मौका नहीं है । वह दफ़तर चले गये होंगे । मेरा सब असबाब बँध चुका है । नौकरों को पेशगी रुपया दे चुका कि चलने की तैयारी करे । अब कैसे रुक सकता हूँ ।

रामेश्वरी — कुछ भी हो, जाने न पाओगे ।

मुशीला — दो-चार दिन बाद जाने मे ऐसी कौन-सी बडी हानि हुई जाती है ? वहाँ कौन लड्डू धरे हुए है ?

कुँअर साहब बडे धर्म-संकट मे पड़े, अगर नहीं जाते तो छोटे साहब से झूठे पडते है । वह अपने दिल में कहेंगे कि अच्छे वेहूदे आदमी के साथ पाला पडा । अगर जाते है तो स्त्री से बिगाड़ होता है, साली मुँह फुलाती है । इसी चक्कर में पडे हुए बाहर आये तो मियाँ वाजिद बोले — हुजूर इस वक़्त कुछ उदास मालूम होते है ।

व्यास — मुद्रा तेजहीन हो गयी है ।

कुँअर — भई, कुछ न पूछो, बडे संकट मे हूँ ।

वाजिद — क्या हुआ हुजूर, कुछ फरमाइए तो ?

कुँअर — यह भी एक विचित्र ही देश है ।

व्यास — धर्मावतार, प्राचीन काल से यह ऋषियों की तपोभूमि है ।

लाला — क्या कहना है, ससार मे ऐसा देश दूसरा नहीं ।

कुँअर — जी हाँ, आप जैसे गौखे और किस देश मे होंगे । बुद्धि तो हम लोगो को छू भी नहीं गयी ।

वाजिद — हुजूर, अक्ल के पीछे तो हम लोग लट्ट लिये फिरते है ।

व्यास — धर्मावतार, कुछ कहते नहीं बनता । बडी हीन दशा है ।

कुँअर — नैनीताल जाने को तैयार था । अब बडी साली कहती है कि मेरे बच्चे का मुंडन है, मैं न जाने दूँगी, चले जाओगे तो मुझे रंज होगा । बतलाइए, अब क्या करूँ । ऐसी मूर्खता और कहाँ देखने में आयेगी । पूछो मुंडन नाई करेगा, नाच-तमाशा देखनेवालों की शहर में कमी नहीं, एक मैं न हूँगा न सही, मगर उनको कौन समझावे ।

व्यास — दीनबन्धु, नारि-हठ तो लोकप्रसिद्ध ही है।

कुँअर — अब यह सोचिए कि छोटे साहब से क्या बहाना किया जायगा।

वाजिद — बडा नाजुक मुआमला आ पडा हुजूर।

लाला — हाकिम का नाराज हो जाना बुरा है।

वाजिद — हाकिम मिट्टी का भी हो, फिर भी हाकिम ही है।

कुँअर — मैं तो बडी मुसीबत मे फँस गया।

लाला — हुजूर अब बाहर न बैठें। मेरी तो यही सलाह है। जो कुछ सिर पर पड़ेगी, हम ओढ़ लेंगे।

वाजिद — अजी, पसीने की जगह खून गिरा देगे। नमक खाया है कि दिल्लगी है।

कुँअर — हाँ, मुझे भी यही मुनासिब मालूम होता है। आप लोग कह दीजिए बीमार हो गये है।

अभी यही बातें हो रही थी कि खिदमतगार ने आकर हाँफते हुए कहा — सरकार कोऊ आवा है, तौन सरकार का बलावत है।

कुँअर — कौन है पूछा नहीं ?

खिद० — कोऊ रँगरेज है सरकार, लाल-लाल मुँह है, घोड़ा पर सवार है।

कुँअर — कहीं छोटे साहब तो नहीं है, भई मैं तो भीतर जाता हूँ। अब आबरू तुम्हारे हाथ है।

कुँअर साहब ने तो भीतर घुसकर दरवाजा बन्द कर लिया। वाजिदअली ने खिडकी से झाँककर देखा, तो छोटे साहब खडे थे। हाथ-पाँव फूल गये। अब साहब के सामने कौन जाय ? किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। एक दूसरे को ठेल रहा है।

लाला — बढ जाओ वाजिदअली। देखो क्या कहते है ?

वाजिद — आप ही क्यों नहीं चले जाते ?

लाला — आदमी ही तो वह भी है, कुछ खा तो न जायगा।

वाजिद — तो चले क्यों नहीं जाते !

काटन साहब दो-तीन मिनट खडे रहे। जब यहाँ से कोई न निकला तो बिगड़-कर बोले — यहाँ कौन आदमी है ? कुँअर साहब से बोलो, काटन साहब खड़ा है।

मियाँ वाजिद बौखलाये हुए आगे बढ़े और हाथ बाँधकर बोले — खुदाबद, कुँअर साहब ने आज बहुत देर से खाना खाया, तो तबियत कुछ भारी हो गयी है। इस वक्त आराम में है, बाहर नहीं आ सकते।

काटन — ओह ! तुम यह क्या बोलता है। वह तो हमारे साथ नैनीताल जाने-वाला था। उसने हमको खत लिखा था।

वाजिद — हाँ, हुजूर, जानेवाले तो थे, पर बीमार हो गये।

काटन — बहुत रज हुआ।

वाजिद — हुजूर इत्फाक है।

काटन — हमको बहुत अफसोस है। कुँअर साहब से जाकर बोलो, हम उनको देखना माँगता है।

वाजिद — हुजूर, बाहर नहीं आ सकते।

काटन — कुछ परवा नहीं, हम अदर जाकर देखेगा।

कुँअर साहब दरवाजे से चिमटे हुए काटन साहब की बातें सुन रहे थे। नीचे की साँस नीचे थी, ऊपर की ऊपर। काटन साहब को घोड़े से उतरकर दरवाजे की तरफ आते देखा, तो गिरते-पड़ते दौड़े और सुशीला से बोले — दुष्ट मुझे देखने घर में आ रहा है। मैं चारपाई पर लेट जाता हूँ, चटपट लिहाफ निकलवाओ और मुझे ओढ़ा दो। दस पाँच शीशियाँ लाकर इस गोलमेज पर रखवा दो।

इतने में वाजिदअली ने द्वार खटखटाकर कहा — महरी, जरा दरवाजा खोल दो, साहब बहादुर कुँअर साहब को देखना चाहते हैं। सुशीला ने लिहाफ माँगा, घर गर्मी के दिन थे, जाड़े के कपड़े सन्दूकों में बन्द पड़े थे। चटपट सन्दूक खोलकर दो-तीन मोटे-मोटे लिहाफ लाकर कुँअर साहब को ओढ़ा दिये। फिर आलमारी से कई शीशियाँ और कई बोतल निकालकर मेज पर चुन दिये और महरी से कहा — जाकर किवाड खोल दो, मैं ऊपर चली जाती हूँ।

काटन साहब ज्यों ही कमरे में पहुँचे, कुँअर साहब ने लिहाफ से मुँह निकाल लिया और कराहते हुए बोले — बड़ा कष्ट है हुजूर। सारा शरीर फूँका जाता है।

काटन — आप दोपहर तक तो अच्छा था, खॉ साहब हमसे कहता था कि आप तैयार हैं, कहाँ दर्द है ?

कुँअर — हुजूर, पेट में बहुत दर्द है। बस यही मालूम होता है कि दम निकल जायगा।

काटन — हम जाकर सिविल सर्जन को भेज देता है। वह पेट का दर्द अभी अच्छा कर देगा। आप घबरायें नहीं, सिविल सर्जन हमारा दोस्त है।

काटन चला गया तो कुँअर साहब फिर बाहर आ बैठे। रोजा बह्शाने गये थे, नमाज गले पड़ी। अब यह फिक्क पैदा हुई कि सिविल सर्जन को कैसे टाला जाय।

कुँअर — भई, यह तो नयी बला गले पड़ी।

वाजिद — यहाँ तो हुजूर, हमारी अक्ल भी काम नहीं करती।

कुँअर — कोई जाकर खाँ साहब को बुला लाओ। कहना, अभी चलिए।
ऐसा न हो कि वह देर करे और सिविल सर्जन यहाँ सिर पर सवार हो जाय।

लाला — सिविल सर्जन की फीस भी बहुत होगी ?

कुँअर — अजी तुम्हे फीस की पड़ी है, यहाँ जान आफत में है। अगर सौ दो सौ देकर गला छूट जाय तो अपने को भाग्यवान समझूँ।

वाजिदअली ने फिटन तैयार करायी और खाँ साहब के घर पहुँचे। देखा तो वह असबाब बँववा रहे है। उनसे सारा किस्सा बयान किया और कहा — अभी चलिए। आपको बुलाया है।

खाँ — मामला बहुत टेढा है। बडी दौड़-धूप करनी पडेगी। कसम खुदा की, तुम सबके सब गर्दन मार देने के लायक हो। जरा देर के लिए मैं टल क्या गया कि सारा खेल ही बिगाड दिया।

वाजिद — खाँ साहब हमसे तो उड़िए नहीं। कुँअर साहब बौखलाये हुए है। दो-चार सौ का वारा-न्यारा है। चलकर सिविल सर्जन को मना कर दीजिए।

खाँ — चलो, शायद कोई तदबीर सूझ जाय।

दोनों आदमी सिविल सर्जन के बँगले की तरफ चले। वहाँ मालूम हुआ कि साहब कुँअर साहब के मकान पर गये है। फौरन फिटन घुमा दी, और कुँअर साहब की कोठी पर पहुँचे। देखा तो सर्जन साहब एनेमा लिये हुए कुँअर साहब की चारपाई के सामने बैठे हुए है।

खाँ — मैं तो हुजूर के बँगले से चला आ रहा हूँ। कुँअर साहब का क्या हाल है ?

डाक्टर — पेट मे दर्द है। अभी पिचकारी लगाने से अच्छा हो जायगा।

कुँअर — हुजूर, अब दर्द बिलकुल नहीं है। मुझे कभी-कभी यह मर्ज हो जाता है और आप ही आप अच्छा हो जाता है।

डाक्टर — ओ, आप डरता है। डरने का कोई बात नहीं है। आप एक मिनट मे अच्छा हो जायगा।

कुँअर — हुजूर मैं बिलकुल अच्छा हूँ। अब कोई शिकायत नहीं है।

डाक्टर — डरने की कोई बात नहीं, यह सब आदमी यहाँ से हट जाय, हम एक मिनट मे अच्छा कर देगा।

खाँ साहब ने डाक्टर के कान मे कहा — हुजूर, अपनी रात की डबल फ्रीस और

गाड़ी का किराया लेकर चले जायें, इन रईसों के फेर में न पड़े, यह लोग बारहों महीने इसी तरह बीमार रहते हैं। एक हफ्ते तक आकर एक बार देख लिया कीजिए।

डाक्टर साहब की समझ में यह बात आ गयी। कल फिर आने का वादा करके चले गये। लोगों के सिर से बला टली। खाँ साहब की कारगुजारी की तारीफें होने लगी।

कुँअर — खाँ साहब आप बड़े वक़्त पर काम आये। जिन्दगी भर आपका एहसान मानूँगा।

खाँ — जनाब, दो सौ चटाने पड़े। कहता था छोटे साहब का हुकम है। मैं बिला पिचकारी लगाये न जाऊँगा। अग्रेजों का हाल तो आप जानते हैं। बात के पक्के होते हैं।

कुँअर — यह भी कह दिया न कि छोटे साहब को मेरी बीमारी की इत्तला कर दे और कह दे, वह सफर करने लायक नहीं है।

खाँ — हाँ साहब, और रुपये दिये किसलिए, क्या मेरा कोई रिश्तेदार था? मगर छोटे साहब को होगी बड़ी तकलीफ। बेचारे ने आपके बँगले के आसरे पर होटल का इतजाम भी न किया था। मामला बेढब हुआ।

कुँअर — तो भई, मैं क्या करता, आप ही सोचिए।

खाँ — यह चाल उल्टी पड़ी। जिस वक़्त काटन साहब यहाँ आये थे, आपको उनसे मिलना चाहिए था। साफ कह देते, आज एक सख्त जरूरत से रुकना पड़ा। लेकिन खैर मैं साहब के साथ रहूँगा, कोई न कोई इंतजाम ही जायगा।

कुँअर — क्या अभी आप जाने का इरादा कर ही रहे हैं। हल्फ़ से कहता हूँ, मैं आपको न जाने दूँगा, यहाँ न जाने कौसी पड़े, कौसी न पड़े। मियाँ वाजिद देखो, आपके घर कहला दो, बाहर न जायेंगे।

खाँ — आप अपने साथ मुझे भी डुबाना चाहते हैं। छोटे साहब आपसे नाराज भी हो जायें तो क्या कर लेंगे, लेकिन मुझसे नाराज हो गये, तो खराब ही कर डालेंगे।

कुँअर — जब तक हम जिन्दा हैं भाई साहब, आपको कोई तिर्छी नजर से नहीं देख सकता। जाकर छोटे साहब से कहिए, कुँअर साहब की हालत अच्छी नहीं, मैं अब नहीं जा सकता। इसमें मेरी तरफ से भी उसका दिल साफ़ हो जायगा और आपकी दोस्ती देखकर आपकी और भी इज्जत करने लगेगा।

खाँ — अब वह इज्जत करे या न करे, जब आप इतना इसरार कर रहे हैं तो मैं भी इतना बे-मुरौबत नहीं हूँ कि आपको छोड़कर चला जाऊँ। यह तो हो ही

नहीं सकता। जरा देर के लिए घर चला गया, उसका तो इतना तावान देना पड़ा। नैनीताल चला जाऊँ तो शायद कोई आपको उठा ही ले जाय।

कुँअर — मजे से दो-चार दिन जल्से देखेगे, नैनीताल में यह मजे कहीं मिलते। व्यास जी, अब तो यो नहीं बैठा जाता। देखिए, आपके भंडार में कुछ है, दो-चार बोतले निकालिए, कुछ रग जमे।^१

— माधुरी, अप्रैल १९२९

^१ रतननाथ सरशार-वृत्त 'सैरे कोहसार' के आधार पर।

बहुत दिनों की बात है, मैं एक बड़ी रियासत का एक विश्वस्त अधिकारी था। जैसी मेरी आदत है, मैं रियासत की घडेबन्दियों से पृथक् रहता, न डगर, न उधर, अपने काम से काम रखता। काजी की तरह शहर के अदेशे से दुबला न होता था। महल में आये दिन नये-नये शिगूफे खिलते रहते थे, नये-नये तमाशे होते रहते थे, नये-नये षड्यन्त्रों की रचना होती रहती थी, पर मुझे किसी पक्ष से सरोकार न था। किसी की बात में दखल न देता था, न किसी की शिकायत करता, न किसी की तारीफ। शायद इसीलिए राजा साहब की मुझ पर कृपादृष्टि रहती थी। राजा साहब शीलवान, दयालु, निर्भीक, उदार और कुछ स्वेच्छाचारी थे। रेजीडेंट की खुशामद करना उन्हें पसन्द न था। जिन समाचारपत्रों से दूसरी रियासतें भयभीत रहती थीं और अपने इलाके में उन्हें आने न देती थीं, वे सब हमारी रियासत में बेरोक-टोक आते थे। एक-दो बार रेजीडेंट ने इस बारे में कुछ इशारा भी किया था, लेकिन राजा साहब ने इसकी बिलकुल परवा न की। अपने आन्तरिक शासन में वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप न चाहते थे, इसीलिए रेजीडेंट भी उनसे मन ही मन द्वेष करता था।

लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि राजा साहब प्रजावत्सल, दूरदर्शी, नीति-कुशल या मितव्ययी शासक थे। यह बात न थी। वे बड़े ही विलासप्रिय, रसिक और दुर्व्यसनी थे। उनका अधिकांश समय विषय-वासना की ही भेंट होता था। रनवास में दर्जनों रानियाँ थीं, फिर भी आये दिन नयी-नयी चिड़ियाँ आती रहती थीं। इस मद में लेशमात्र भी किफायत या कजूसी न की जाती थी। सौन्दर्य की उपासना उनका गौण स्वभाव-सा हो गया था। इसके लिए वह दीन और ईमानतक की हत्या करने को तैयार रहते थे। वे स्वच्छन्द रहना चाहते थे, और चूँकि सरकार उन्हें बन्धनों में डालना चाहती थी, वे उन्हें चिढ़ाने के लिए ऐसे मामले में असाधारण अनुराग और उत्साह दिखाते थे, जिनमें उन्हें प्रजा की सहायता और सहानुभूति का पूरा विश्वास होता था, इसीलिए प्रजा उनके दुर्गुणों को भी सद्गुण समझती थी, और अखबारवाले भी सदैव उनकी निर्भीकता और प्रजा-प्रेम के राग अलापते रहते थे।

इधर कुछ दिनों से एक पजाबी औरत रनवास में दाखिल हुई थी। उसके विषय में तरह-तरह की अफवाहे फैली हुई थी। कोई कहता था, मामूली वैश्य है, कोई ऐक्ट्रेस बतलाता था, कोई भले घर की लडकी। न वह बहुत रून्वती थी, न बहुत तरहदार, फिर भी राजा साहब उस पर दिलोजान से फिदा थे। राज-काज से उन्हें यों ही बहुत प्रेम न था, मगर अब तो वे उसी के हाथों बिक गये थे, वही उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गयी थी। उसके लिए एक नया राज-प्रासाद बन रहा था। नित नये-नये उपहार आते रहते थे। भवन की सजावट के लिए योरोप से नयी-नयी सामग्रियाँ मँगवायी थी। उसे गाना और नाचना सिखाने के लिए इटली, फ्रांस, और जर्मनी के उस्ताद बुलाये गये थे। सारी रियासत में उसी का डका बजता था। लोगों को आश्चर्य होता था कि इस रमणी में ऐसा कौन-सा गुण है, जिसने राजा साहब को इतना आसक्त और आकर्षित कर रखा है।

एक दिन रात को मैं भोजन करके लेटा ही था कि राजा साहब ने याद फर्माया। मन में एक प्रकार का सशय हुआ कि इस समय ख़िलाफ़ मामूल क्यों मेरी तलबी हुई! मैं राजा साहब के अन्तरंग मन्त्रियों में से न था, इसलिए भय हुआ कि कहीं कोई विपत्ति तो नहीं आनेवाली है। रियासती में ऐसी दुर्घटनाएँ अक्सर होती रहती हैं। जिसे प्रातः काल राजा साहब की बगल में बैठे हुए देखिए, उसे सध्या समय अपनी जान लेकर रियासत के बाहर भागते हुए भी देखने में आया है। मुझे सन्देह हुआ, किसी ने मेरी शिकायत तो नहीं कर दी! रियासती में निष्पक्ष रहना भी खतरनाक है। ऐसे आदमी का अगर कोई शत्रु नहीं होता तो कोई मित्र भी नहीं होता। मैंने तुरन्त कपड़े पहने और मन में तरह-तरह की दुष्कल्पनाएँ करता हुआ राजा साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। लेकिन पहली ही निगाह में मेरे सारे सशय मिट गये। राजा साहब के चेहरे पर क्रोध की जगह विषाद और नैराश्य का गहरा रंग झलक रहा था। आँखों में एक विचित्र याचना झलक रही थी। मुझे देखते ही उन्होंने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया, और बोले — 'क्यों जी सरदार साहब, तुमने कभी प्रेम किया है? किसी के प्रेम में अपने आप को खो बैठे हो?'

मैं समझ गया कि इस वक्त्र अदब और लिहाज़ की जरूरत नहीं। राजा साहब किसी व्यक्तिगत विषय में मुझसे सलाह करना चाहते हैं। निःसंकोच होकर बोला — 'दीनबन्धु, मैं तो कभी इस जाल में नहीं फँसा।'

राजा साहब ने मेरी तरफ़ खासदान बढ़ाकर कहा — 'तुम बड़े भाग्यवान हो,

अच्छा हुआ कि तुम इस जाल में नहीं फँसे। यह आँखों को लुभानेवाला सुनहरा जाल है, यह मीठा किन्तु घातक विष है, यह वह मधुर संगीत है जो कानों को तो भला मालूम होता है, पर हृदय को चूर-चूर कर देता है, यह वह मायामृग है, जिसके पीछे आदमी अपने प्राण ही नहीं, अपनी इज्जत तक खो बैठता है।'

उन्होंने गिलास में शराब उँडेली और एक चुस्की लेकर बोले — जानते हो मैंने इस सरफराज के लिए कैसी-कैसी परेशानियाँ उठायी? मैं उसके भौहों के एक इशारे पर अपना यह सिर उसके पैरो पर रख सकता था, यह सारी रियासत उसके चरणों पर अर्पित कर सकता था। इन्हीं हाथों से मैंने उसका पलग बिछाया है, उसे हुक्का भर-भरकर पिलाया है, उसके कमरे में झाड़ू लगायी है। वह पलंग से उतरती थी, तो मैं उसकी जूती सीधी करता था। इस खिदमतगुजारी में मुझे कितना आनन्द प्राप्त होता था, तुमसे बयान नहीं कर सकता। मैं उसके सामने जाकर उसके इशारों का गुलाम हो जाता था। प्रभुता और रियासत का गुरू मेरे दिल से लुप्त हो जाता था। उसकी सेवा-शुश्रूषा में मुझे तीनों लोक का राज मिल जाता था, पर इस जालिम ने हमेशा मेरी उपेक्षा की। शायद वह मुझे अपने योग्य ही नहीं समझती थी। मुझे यह अभिलाषा ही रह गयी कि वह एक बार अपनी उन मस्ताना रसीली आँखों से, एक बार उन ईगुर भरे हुए होठों से मेरी तरफ मुस्कराती। मैंने समझा था शायद वह उपासना की ही वस्तु है, शायद वह प्रकृति ही से निष्ठुर है, शायद वह प्रणय के भाव से ही वंचित है, शायद उसे इन रहस्यों का ज्ञान ही नहीं। हाँ, मैंने समझा था, शायद अभी अल्हडपन उसके प्रेमोद्गारों पर मुहर लगाये हुए है। मैं इस आशा से अपने व्यथित हृदय को तसकीन देता था कि कभी तो मेरी अभिलाषाएँ पूरी होंगी, कभी तो उसकी सोयी हुई कल्पना जागेगी।

राजा साहब एकाएक चुप हो गये। फिर कदे आदम शीशे की तरफ देखकर शान्त भाव से बोले — मैं इतना कुरूप तो नहीं हूँ कि कोई रमणी मुझसे इतनी घृणा करे।

राजा साहब बहुत ही रूपवान आदमी थे। ऊँचा कद था, भरा हुआ बदन, सेब का-सा रंग, चेहरे से तेज झलकता था।

मैंने निर्भीक होकर कहा — इस विषय में तो प्रकृति ने हुआ के साथ बड़ी उदारता के साथ काम लिया है।

राजा साहब के चेहरे पर एक क्षीण उदास मुस्कराहट दौड़ गयी, मगर फिर वही नैराश्य छा गया। बोले — सरदार साहब, मैंने इस बाजार की खूब सैर की है।

सम्मोहन और वशीकरण के जितने लटके हैं, उन सबों से परिचित हूँ, मगर जिन मन्त्रों से मैंने अब तक हमेशा विजय पायी है, वे सब इस अवसर पर निरर्थक सिद्ध हुए। अन्त को मैंने यही निश्चय किया कि यह कुआँ ही अन्धा है, इसमें प्यास को शान्त करने की सामर्थ्य नहीं। मगर शोक, कल मुझ पर इस निष्ठुरता और उपेक्षा का रहस्य खुल गया। आह! काश, यह रहस्य कुछ दिन और मुझे छिपा रहता, कुछ दिन और मैं इसी भ्रम, इसी अज्ञान अवस्था में पड़ता रहता।

राजा साहब का उदास चेहरा एकाएक कठोर हो गया, उन शीतल नेत्रों में ज्वाला-सी चमक उठी, बोले — 'देखिए, ये वह पत्र है, जो कल गुप्त रूप से मेरे हाथ लगे है। मैं इस वक्त इस बात की जाँच-पड़ताल करना व्यर्थ समझता हूँ कि ये पत्र मेरे पास किसने भेजे? उसे ये कहाँ मिले? अवश्य ही ये सरफराज की अहित कामना के इरादे से भेजे गये होंगे। मुझे तो केवल यह निश्चय करना है कि ये पत्र असली है या नकली, मुझे तो उनके असली होने में अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। मैंने सरफराज की लिखावट देखी है, उसकी बातचीत के अन्दाज़ से अनभिज्ञ नहीं हूँ, उसकी ज़बान पर जो वाक्य चढ़े हुए हैं, उन्हें खूब जानता हूँ। इन पत्रों में वही लिखावट है, बाल बराबर भी फ़र्क नहीं, वही अन्दाज़ है, वही शैली है, वही वाक्य है। कितनी भीषण परिस्थिति है। इधर मैं तो एक मधुर मुस्कान, एक मीठी अदा के लिए तरसता हूँ, उधर प्रेमियों के नाम प्रेमपत्र लिखे जाते हैं, वियोग-वेदना का वर्णन किया जाता है। मैंने इन पत्रों को पढ़ा है, पत्थर-सा दिल करके पढ़ा है, खून का घूँट पी-पीकर पढ़ा है और अपनी बोटियों को नोच-नोचकर पढ़ा है। आँखों से रक्त की बूँदे निकल-निकल आयी है। यह दगा! यह त्रिया-चरित्र!! मेरे महल में रहकर, मेरी कामनाओं को पैरों से कुचलकर, मेरी आशाओं को ठुकराकर ये क्रीड़ाएँ होती हैं! मेरे लिए खारे पानी की एक बूँद भी नहीं, दूसरे पर सुधा-जल की वर्षा हो रही है! मेरे लिए एक चुटकी भर आटा नहीं, दूसरे के लिए षट्स पदार्थ परसे जा रहे हैं। तुम अनुमान नहीं कर सकते कि इन पत्रों को पढ़कर मेरी क्या दशा हुई।

'पहला उद्वेग जो मेरे हृदय में उठा, वह यह था कि इसी वक्त तलवार लेकर जाऊँ और उस बेदर्द के सामने यह कटार अपनी छाती में भोक लूँ। उसी की आँखों के सामने एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मर जाऊँ। शायद मेरे बाद मेरे प्रेम की क्रूर करे, शायद मेरे खून के गर्म छीटे उसके वज्र-कठोर हृदय को द्रवित करते, लेकिन अन्तस्तल के न मालूम किस प्रदेश से आवाज आयी — यह सरासर नादानी

है। तुम मर जाओगे और यह छलनी तुम्हारे प्रेमोपहारो से दामन भरे, दिल मे तुम्हारी मूर्खता पर हँसती हुई, दूसरे ही दिन अपने प्रियतम के पास चली जायगी। दोनो तुम्हारी दौलत के मजे उड़ायेगे और तुम्हारी वचित-दलित आत्मा को नडपायेगे।

‘सरदार साहब, विश्वास मानिए, यह आवाज मुझे अपने ही हृदय के किसी स्थल से मुनायी दी। मैंने उसी वक्त तलवार निकालकर कमर से रख दी। आत्म-हत्या का विचार जाता रहा, और एक ही क्षण में बदले का प्रबल उद्वेग हृदय मे चमक उठा। देह का एक-एक परमाणु एक आन्तरिक ज्वाला से उत्पन्न हो उठा। एक-एक रोएँ से आग-सी निकलने लगी। इसी वकन जाकर उसकी कपट-लीला का अन्त कर दूँ। जिन आँखो की एक निगाह के लिए अपने प्राण तक निछावर करता था, उन्हें सदैव के लिए ज्योतिहीन कर दूँ। उन विषाक्त अघरों को सदैव के लिए स्वरहीन कर दूँ। जिस हृदय मे इतनी निष्ठुरता, इतनी कठोरता और इतना कपट भरा हुआ हो, उसे चीरकर पैरो से कुचल डालूँ। खून-सा सिर पर सवार हो गया। सरफराज की सारी महत्ता, सारा माधुर्य, सारा भाव-विलास दूषित मालूम होने लगा। उस वकन अगर मुझे मालूम हो जाता कि सरफराज की किसी ने हत्या कर डाली है, तो शायद मैं उस हत्यारे के पैरो का चुम्बन करता। अगर सुनता कि वह मरणासन्न है, तो उसके दम तोडने का तमाशा करता। खून का दृढ सकल्प करके मैंने दुहरी तलवारे कमर मे लगायी और उसके शयनागार में दाखिल हुआ। जिस द्वार पर जाते ही आशा और भय का सग्राम होने लगता था, वहाँ पहुँचकर इस वकन मुझे वह आनन्द हुआ जो शिकारी को शिकार करने मे होता है। सरदार साहब, उन भावनाओं और उद्गारो का जिक्र न करूँगा, जो उस समय मेरे हृदय को आन्दोलित करने लगे। अगर वाणी मे इतनी सामर्थ्य हो भी, तो मन को इस चर्चा से उद्विग्न नहीं करना चाहता। मैंने दबे पाँव कमरे में कदम रखा। सरफराज विलासमय निद्रा मे मग्न थी। मगर उसे देखकर मेरे हृदय में एक विचित्र करुणा उत्पन्न हुई। जी हाँ, वह क्रोध और उत्ताप न जाने कहाँ गायब हो गया। उसका क्या अपराध है? यह प्रश्न आकस्मिक रूप से मेरे हृदय में पैदा हुआ। उसका क्या अपराध है? अगर उसका वही अपराध है, जो इस समय मैं कर रहा हूँ, तो मुझे उससे बदला लेने का क्या अधिकार है? अगर वह अपने प्रियतम के लिए उतनी ही विकल, उतनी ही अधीर, उतनी ही आतुर है, जितना मैं हूँ, तो उसका क्या दोष है? जिस तरह मैं अपने दिल से

मजबूर हूँ, क्या वह भी अपने दिल से मजबूर नहीं हो सकती? अगर मुझे कोई औरत बन्धन में डाल दे और बहुमूल्य रत्नों से मेरे प्रेम को विसाहना चाहे, तो क्या मैं उसके प्रेम में अनुरक्त हो जाऊँगा? शायद नहीं। मैं मौका पाते ही भाग निकलूँगा। यह मेरा अन्याय है। अगर मुझमें वह गुण होते, जो इसके अज्ञात प्रियतम में है, तो उसकी तबीयत क्यों मेरी ओर आकर्षित न होती? मुझमें वे बातें नहीं हैं कि मैं उसका जीवन-सर्वस्व बन सकूँ। अगर मुझे कोई कड़वी चीज अच्छी नहीं लगती, तो मैं स्वभावतः हलवाई की दुकान की तरफ जाऊँगा, जो मिठाइयाँ बेचता है। सम्भव है धीरे-धीरे मेरी रुचि बदल जाय और मैं कड़वी चीजें पसन्द करने लगूँ, लेकिन बलात् तलवार की नोक पर कोई कड़वी चीज मेरे मुँह में नहीं डाल सकता।

‘इन विचारों ने मुझे पराजित कर दिया। वह सूरत, जो एक क्षण पहले मुझे काटे खाती थी, उसमें पहले से शतगुणा आकर्षण था। अब तक मैंने उसको निद्रामग्न न देखा था। निद्रावस्था में उसका रूप और भी निष्कलक और अनिन्द्य मालूम हुआ। जागृति में निगाह कभी आँखों के दर्शन करती, कभी अवरो के, कभी कपोलों के। इस नदी में उसका रूप अपनी सम्पूर्ण कलाओं से चमक रहा था। रूप-छटा का एक दीपक जल रहा था।’

राजा साहब ने फिर प्याला मुँह से लगाया, और बोले — सरदार साहब, मेरा जोश ठण्डा हो गया। जिससे प्रेम हो गया, उससे द्वेष नहीं हो सकता, चाहे वह हमारे साथ कितना ही अन्याय क्यों न करे। जहाँ प्रेमिका प्रेमी के हाथों कल्ल हो, वहाँ समझ लीजिए कि प्रेम न था, केवल विषय-लालसा थी। मैं वहाँ से चला आया, लेकिन चित्त किसी तरह शान्त नहीं होता। तब से अब तक मैंने क्रोध को जीतने की भरसक कोशिश की, मगर असफल रहा। जब तक वह शैतान जिन्दा है, मेरे पहलू में एक काँटा-सा खटकता रहेगा, मेरी छाती पर साँप लोटता रहेगा। वही काला नाग फन उठाये हुए उस रत्न-राशि पर बैठा हुआ है, वही मेरे और सरफ़राज के बीच में लोहे की दीवार बना हुआ है, वही इस दूध की मक्खी है। उस साँप का सिर कुचलना होगा, उस दीवार को जड़ से खोदकर फेंक देना होगा, उस मक्खी को निकाल देना होगा, जब तक मैं अपनी आँखों से उसकी घञ्जियाँ बिखरते न देखूँगा, मेरी आत्मा को सतोष न होगा। परिणाम की कोई चिन्ता नहीं, कुछ भी हो, मगर उस नर-पिशाच को जहन्नुम वासिल करके दम लूँगा।

यह कहकर राजा साहब ने मेरी ओर पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा — बतलाइए आप मेरी क्या मदद कर सकते हैं ?

मैंने विस्मय से कहा — मैं ?

राजा साहब ने मेरा उत्साह बढ़ाते हुए कहा — हाँ, आप। आप जानते हैं, मैंने इतने आदमियों को छोड़कर आपको क्यों अपना विश्वासपात्र बनाया और क्यों आपसे यह भिक्षा माँगी ? यहाँ ऐसे आदमियों की कमी नहीं है, जो मेरा इशारा पाते ही उस दुष्ट के टुकड़े उड़ा देगे, सरे बाजार उसके रक्त से भूमि को रँग देगे। जी हाँ, एक इशारे से उसकी हड्डियों का बुरादा बना सकता हूँ, उसके नहो मे कीलें ठुकवा सकता हूँ, मगर मैंने सबको छोड़कर आपको छाँटा, जानते हो क्यों ? इसलिए कि मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास है। वह विश्वास, जो मुझे अपने निकटतम आदमियों पर भी नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय मे यह भेद उतना ही गुप्त रहेगा, जितना मेरे। मुझे विश्वास है कि प्रलोभन अपनी चरम शक्ति का उपयोग करके भी तुम्हें नहीं डिगा सकता। पाशविक अत्याचार भी तुम्हारे अघरों को नहीं खोल सकते। तुम बेवफाई न करोगे, दया न करोगे, इस अवसर से अनुचित लाभ न उठाओगे। जानते हो, इसका पुरस्कार क्या होगा ? इसके विषय मे तुम कुछ भी शका न करो। मुझमें और चाहे कितने ही दुर्गुण हो, कृतघ्नता का दोष नहीं है। बड़े से बड़ा पुरस्कार जो मेरे अधिकार मे है, वह तुम्हे दिया जायगा। मनसब, जागीर, धन, सम्मान — सब तुम्हारी इच्छानुसार दिये जायेंगे। इसका सम्पूर्ण अधिकार तुमको दिया जायगा, कोई दखल न देगा। तुम्हारी महत्वाकांक्षा को उच्चतम शिखर तक उड़ने की आज्ञा दी होगी। तुम खुद फ़रमान लिखोगे और मैं उस पर आँखे बन्द करके दस्तखत करूँगा। बोलो, कब जाना चाहते हो ? उसका नाम और पता इस कागज पर लिखा हुआ है, इसे अपने हृदय पर अंकित कर लो, और कागज फाड़ डालो। तुम खुद समझ सकते हो कि मैंने कितना बड़ा भार तुम्हारे ऊपर रखा है। मेरी आबरू, मेरी जान, तुम्हारी मुट्ठी मे है। मुझे विश्वास है कि तुम इस काम को सुचारु रूप से पूरा करोगे। जिन्हे अपना सहयोगी बनाओगे, वे भरोसे के आदमी होंगे। तुम्हें अधिकतम बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और धैर्य से काम लेना पड़ेगा। एक असयत शब्द, एक क्षण का विलम्ब, ज़रा-सी लापरवाही मेरे और तुम्हारे दोनों के लिए प्राणघातक होगी। दुश्मन घात में बैठे हुए हैं, 'कर तो डर, न कर तो डर' का मामला है। यों ही गद्दी से उतारने के मसूवे सोचे जा रहे हैं, इस रहस्य के खुल जाने पर क्या दुर्गति होगी, इसका अनुमान

तुम आप कर सकते हो। मैं बर्मा में नजरबन्द कर दिया जाऊँगा, रियासत गैरों के हाथ में चली जायगी और मेरा जीवन नष्ट हो जायगा। मैं चाहता हूँ कि आज ही चले जाओ। यह इम्पीरियल बैंक का चैक बुक है। मैंने चैकों पर दस्तखत कर दिये हैं, जब जितने रुपयों की जरूरत हो, ले लेना।

मैंने दिमाग सातबे आसमान पर जा पहुँचा। अब मुझे मालूम हुआ कि प्रलोभन में ईमान को बिगाड़ने की कितनी शक्ति होती है। मुझे जैसे कोई नशा हो गया। मैंने एक किताब में पढ़ा था कि अपने भाग्य-निर्माण का अवसर हर एक आदमी को मिलता है, और एक ही बार। जो इस अवसर को दोनों हाथों से पकड़ लेता है, वह मर्द है, जो आगा-पीछा में पड़कर उसे छोड़ देता है, वह कायर है। एक को धन, यश, गौरव नसीब होता है और दूसरा खेद, लज्जा और दुर्दशा में रो-रोकर ज़िन्दगी के दिन काटता है। फ़ैसला करने के लिए केवल एक क्षण का समय मिलता है। वह समय कितना बहुमूल्य होता है। मेरे जीवन में यह वही अवसर था। मैंने उसे दोनों हाथों से पकड़ने का निश्चय कर लिया। सौभाग्य अपनी सर्वोत्तम सिद्धियों का थाल लिये मेरे सामने हाज़िर है, वह सारी विभूतियाँ, जिनके लिए आदमी जीता-मरता है, मेरा स्वागत करने के लिए खड़ी है। अगर इस समय मैं उनकी ज़पेक्षा करूँ, तो मुझ जैसा अभाग आदमी ससार में न होगा। माना कि बड़े जोखिम का काम है, लेकिन पुरस्कार तो देखो। दरिया में गोता लगाने ही से तो मोती मिलता है, तख्त पर बैठे हुए कायरों के लिए कौडियों और घोषों के सिवा और क्या है? माना कि बेगुनाह के खून से हाथ रँगना पड़ेगा। क्या मुजायका! बलिदान से ही वरदान मिलता है। ससार समर भूमि है। यहाँ लाशों का जीना बनाकर उन्नति के शिखर पर चढ़ना पड़ता है। खून के नालों में तैरकर ही विजय-तट मिलता है। ससार का इतिहास देखो, सफल पुरुषों का चरित्र रक्त के अक्षरों में लिखा हुआ है। वीरों ने सदैव खून के दरिया में गोते लगाये हैं, खून की होलियाँ खेली हैं। खून का डर दुर्बलता और कमहिम्मती का चिह्न है। कर्मयोगी की दृष्टि लक्ष्य पर रहती है, मार्ग पर नहीं, शिखर पर रहती है, मध्यवर्ती चट्टानों पर नहीं। मैंने खड़े होकर अर्ज की — गुलाम इस खिदमत के लिए हाज़िर है।

राजा साहब ने सम्मान की दृष्टि से देखकर कहा — मुझे तुमसे यही आशा थी। तुम्हारा दिल कहता है कि यह काम पूरा कर आओगे ?

‘मुझे विश्वास है।’

‘मेरा भी यही विचार था। देखो, एक-एक क्षण का समाचार भेजते रहना।’

‘ईश्वर ने चाहा तो हुजूर को शिकायत का कोई मौका न मिलेगा।’

‘ईश्वर का नाम न लो, ईश्वर ऐसे मौके के लिए नहीं है। ईश्वर की मदद उस वक़्त माँगो, जब अपना दिल कमजोर हो। जिसकी बाँहों में शक्ति, मन मे सकल्प, बुद्धि मे बल, और साहस है, वह ईश्वर का आश्रय क्यों ले? अच्छा जाओ और जल्द सुखरू होकर लौटो, आँखे तुम्हारी तरफ लगी रहेंगी।’

२

मैने आत्मा की आलोचनाओं को सिर तक न उठाने दिया। उस दुष्ट को क्या अधिकार था कि वह सरफराज से ऐसा कुत्सित सम्बन्ध रखे, जब उसे मालूम था कि राजा साहब ने उसे अपने हरम मे दाखिल कर लिया है? यह लगभग उतना ही गर्हित अपराध है, जितना किसी विवाहिता स्त्री को भगा ले जाना। सरफराज एक प्रकार से विवाहिता है, ऐसी स्त्री से पत्र-व्यवहार करना और उस पर डोरे डालना किसी दशा में भी क्षम्य नहीं हो सकता। ऐसे सगीन अपराध की सज़ा भी उतनी ही सगीन होनी चाहिए। अगर मेरे हृदय मे उस वक़्त तक कुछ दुर्बलता, कुछ सशय, कुछ अविश्वास था, तो इस तर्क ने उसे दूर कर दिया। सत्य का विश्वास सत्-साहस का मात्र है। अब वह खून मेरी नजरो मे पापमय हत्या नहीं, जायज खून था और उससे मुँह मोडना लज्जाजनक कायरता।

गाडी के जाने में अभी दो घण्टे की देर थी। रात भर का सफ़र था, लेकिन भोजन की ओर बिलकुल रुचि न थी। मैंने सफर की तैयारी शुरू की। बाजार से एक नकली दाढ़ी लाया, ट्रक मे दो रिवालवर रख लिये, फिर सोचने लगा, किसे अपने साथ ले चलूँ? यहाँ से किसी को ले जाना तो नीति-विरुद्ध है। फिर क्या अपने भाई साहब को तार दूँ? हाँ, यही उचित है। उन्हें लिख दूँ कि मुझसे बम्बई मे आकर मिले, लेकिन नहीं, भाई साहब को क्यों फँसाऊँ? कौन जाने क्या हो? बम्बई में ऐसे आदमी की क्या कमी? एक लाख रुपये का लालच दूँगा। चुटकियों में काम हो जायगा। वहाँ एक से एक शातिर पडे है, जो चाहें तो फरिश्तो का भी खून कर आयें। बस, इन महाशय को किसी हिकमत से किसी वेश्या के कमरे में बुलाया जाय और वहीं उनका काम तमाम कर दिया जाय। या समुद्र के किनारे जब वह हवा खाने निकले, तो वही भारकर लाश समुद्र मे डाल दी जाय।

अभी चूँकि देर थी, मैने सोचा, लाओ सन्ध्या कर लूँ। ज्योही सन्ध्या के कमरे मे क़दम रखा, माता जी के तिरगे चित्र पर नजर पडी। मै मूर्तिपूजक नहीं

हूँ, धर्म की ओर मेरी प्रवृत्ति भी नहीं है, न कभी कोई व्रत रखता हूँ, लेकिन न जाने क्यों, उस चित्र को देखकर अपनी आत्मा में एक प्रकाश का अनुभव करता हूँ। उन आँखों में मुझे अब भी वही वात्सल्यमय ज्योति, वही दैवी आशीर्वाद मिलता है, जिसकी बाल-स्मृति अब भी मेरे हृदय को गद्गद कर देती है। वह चित्र मेरे लिए चित्र नहीं, बल्कि सजीव प्रतिमा है, जिसने मेरी सृष्टि की है और अब भी मुझे जीवन प्रदान कर रही है। उस चित्र को देखकर मैं यकायक चौक पड़ा, जैसे कोई आदमी उस वक्र चोर के कंधे पर हाथ रख दे जब वह सेध मार रहा हो। इस चित्र को रोज ही देखा करता था, दिन में कई बार उस पर निगाह पड़ती थी, पर आज मेरे मन की जो दशा हुई, वह कभी न हुई थी। मालूम हुआ कि वह आँखे मुझे धिक्कार रही है। उनमें कितनी वेदना थी, कितनी लज्जा और कितना क्रोध! मानो वह कह रही थी, मुझे तुझसे ऐसी आशा न थी। मैं उस तरफ़ ताक न सका। फौरन आँखे झुका ली। उन आँखों के सामने खड़े होने की हिम्मत मुझे न हुई। वह तसवीर की आँखे न थीं, सजीव, तीव्र और ज्वालामय, हृदय में पैठनेवाली, नोकदार भाले की तरह हृदय में चुभनेवाली आँखे थीं। मुझे ऐसा मालूम हुआ, गिर पड़ूँगा। मैं वहीं फर्श पर बैठ गया। मेरा सिर आप ही आप झुक गया। बिलकुल अज्ञातरूप से मानो किसी दैवी प्रेरणा से मेरे सकल्प में एक क्रान्ति-सी हो गयी। उस सत्य के पुतले, उस प्रकाश की प्रतिमा ने मेरी आत्मा को सजग कर दिया। मन में क्या-क्या भाव उत्पन्न हुए, क्या-क्या विचार उठे, इसकी मुझे खबर नहीं। मैं इतना ही जानता हूँ कि मैं एक सम्मोहित दशा में घर से निकला, मोटर तैयार करायी और दस बजे राजा साहब की सेवा में जा पहुँचा। मेरे लिए उन्होंने विशेषरूप से ताकीद कर दी थी कि जिस वक्त चाहूँ, उनसे मिल सकूँ। कोई अड़चन न पड़ी। मैं जाकर नम्र भाव से बोला — हुजूर, कुछ अर्ज करना चाहता हूँ।

राजा साहब अपने विचार में इस समस्या को सुलझाकर इस वक्त इत्मीनान की साँस ले रहे थे। मुझे देखकर उन्हें किसी नयी उलझन का सन्देह हुआ। त्योरियों पर बल पड़ गये, मगर एक ही क्षण में नीति ने विजय पायी, मुसकराकर बोले — हाँ हाँ, कहिए, कोई खास बात ?

मैंने निर्भीक होकर कहा — मुझे क्षमा कीजिए, मुझसे यह काम न होगा।

राजा साहब का चेहरा पीला पड़ गया, मेरी ओर विस्मय से देखकर बोले — इसका मतलब ?

‘मैं यह काम न कर सकूँगा।’

‘क्यो ?’

‘मुझमे वह सामर्थ्य नहीं है।’

राजा साहब ने व्यगपूर्ण नेत्रों से देखकर कहा — शायद आत्मा जागृत हो गयी, क्यो ? वही बीमारी, जो कायरों और नामदों को हुआ करती है। अच्छी बात है, जाओ।

‘हुजूर, आप मुझसे नाराज न हों, मैं अपने मे वह . . . ।’

राजा साहब ने सिंह की भाँति आग्नेय नेत्रों से देखते हुए गरजकर कहा — मत बको, नमक . . .

फिर कुछ नम्र होकर बोले — तुम्हारे भाग्य मे ठोकरें खाना ही लिखा है। मैंने तुम्हें वह अवसर दिया था, जिसे कोई दूसरा आदमी दैवी वरदान समझता, मगर तुमने उसकी कद्र न की। तुम्हारी तकदीर तुमसे फिरी हुई है। हमेशा गुलामी करोगे और धक्के खाओगे। तुम जैसे आदमियों के लिए गेरुए बाने है और कमण्डल तथा पहाड की एक गुफा। इस धर्म और अधर्म की समस्या पर विचार करने के लिए उम्मी वैराग्य की जरूरत है। ससार मर्दों के लिए है।

मैं पछता रहा था कि मैंने पहले ही क्यों न इनकार कर दिया।

राजा साहब ने एक क्षण के बाद फिर कहा — अब भी मौका है, फिर सोचो।

मैंने उसी निःशक तत्परता के साथ कहा — हुजूर, मैंने खूब सोच लिया है।

राजा साहब होंठ दाँतो से काटकर बोले — बेहतर है, जाओ और आज ही रात को मेरे राज्य की सीमा के बाहर निकल जाओ। शायद कल तुम्हे इसका अवसर न मिले। मैं न मालूम क्या समझकर तुम्हारी जान बख्शिश कर रहा हूँ। न जाने कौन मेरे हृदय मे बैठा हुआ तुम्हारी रक्षा कर रहा है। मैं इस वक्त अपने आप मे नहीं हूँ, लेकिन मुझे तुम्हारी शराफत पर भरोसा है। मुझे अब भी विश्वास है कि इस मामले को तुम दीवार के सामने भी जबान पर न लाओगे।

मैं चुपके से निकल आया, और रातों-रात राज्य के बाहर पहुँच गया। मैंने उस चित्र के सिवा और कोई चीज अपने साथ न ली।

इधर सूर्य ने पूर्व की सीमा मे पदार्पण किया, उधर मैं रियासत की सीमा से निकलकर अग्नेयी इलाके में आ पहुँचा।

— विशाल भारत, दिसबर १९२९

दूसरी शादी

जब मैं अपने चार साल के लडके रामसरूप को गौर से देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि उसमें वह भोलापन और आकर्षण नहीं रहा जो कि दो साल पहले था। वह मुझे अपनी सुर्ख और रजीदा आँखों से घूरता हुआ नज़र आता है। उसकी इस हालत को देखकर मेरा कलेजा काँप उठता है और मुझे वह वादा याद आ जाता है जो मैंने दो साल हुए उसकी माँ के साथ, जब कि वह मृत्यु-शैया पर थी, किया था। आदमी इतना स्वार्थी और अपनी इन्द्रियो का इतना गुलाम है कि अपना फर्ज किसी-किसी वक़्त ही महसूस करता है।

उस दिन जब कि डाक्टर नाउम्मीद हो चुके थे, उसने रोते हुए मुझसे पूछा था — क्या तुम दूसरी शादी कर लोगे ? ज़रूर कर लेना। फिर चौककर कहा — मेरे राम का क्या बनेगा ? उसका खयाल रखना, अगर हो सके।

मैंने कहा — हाँ-हाँ, मैं वादा करता हूँ कि मैं कभी दूसरी शादी न करूँगा और रामसरूप, तुम उसकी फिक्र न करो, क्या तुम अच्छी न होगी ?

उसने मेरी तरफ हाथ फेक दिया, जैसे कहा, लो अलविदा।

दो मिनट बाद दुनिया मेरी आँखों में अँधेरी हो गयी। रामसरूप बे माँ का हो गया। दो-तीन दिन उसको कलेजे से चिमटाये रखा।

आखिर छुट्टी पूरी होने पर उसको पिता जी के सुपुर्द करके मैं फिर अपनी ड्यूटी पर चला गया।

दो-तीन महीने दिल बहुत उदास रहा। नौकरी की, क्योंकि उसके सिवाय चारा न था। दिल में कई मसूबे बाँधता रहा। दो-तीन साल नौकरी करके रुपया लेकर दुनिया की सैर को निकल जाऊँगा, यह करूँगा, वह करूँगा, अब कहीं दिल नहीं लगता।

घर से ख़त बराबर आ रहे थे कि फ़लों जगह से नाते आ रहे हैं, आदमी बहुत अच्छे हैं, लड़की अकल की तेज और खूबसूरत है, फिर ऐसी जगह नहीं मिलेगी। आखिर करना है ही, कर लो। हर बात में मेरी राय पूछी जाती थी।

लेकिन मैं बराबर इन्कार किये जाता था। मैं हैरान था कि इसान किस तरह

दूसरी शादी पर आमादा हो सकता है! जब कि उसकी सुन्दर और पतिप्राणा स्त्री को, जो कि उसके लिए स्वर्ग की एक भेट थी, भगवान ने एक बार छीन लिया।

वक्रत बीतता गया। फिर यार-दोस्तों के तकाजे शुरू हो गये। कहने लगे, जाने भी दो, औरत पैर की जूती है, जब एक फट गयी, दूसरी बदल ली। स्त्री का कितना भयानक अपमान है, यह कहकर मैं उनका मुँह बन्द कर दिया करता था। जब हमारी सोसायटी जिसका इतना बड़ा नाम है, हिन्दू विधवा को दुबारा शादी कर लेने की इजाजत नहीं देती तो मुझको शोभा नहीं देता कि मैं दुबारा एक कुँवारी से शादी कर लूँ। जब तक यह कलक हमारी कौम से दूर नहीं हो जाता, मैं हर्गिज, कुँवारी तो दूर की बात है, किसी विधवा से भी ब्याह न करूँगा। खयाल आया, चलो नौकरी छोड़कर इसी बात का प्रचार करे। लेकिन मच पर अपने दिल के खयालालत जवान पर कैसे लाऊँगा। भावनाओं को व्यावहारिक रूप देने में, चरित्र मजबूत बनाने में, जो कहना उसे करके दिखाने में, हममें कितनी कमी है, यह मुझे उस वक्रत मालूम हुआ जब कि छ. माह बाद मैंने एक कुँवारी लड़की से शादी कर ली।

घर के लोग खुश हो रहे थे कि चलो किसी तरह माना। उधर उस दिन मेरी बिरादरी के दो-तीन पढ़े-लिखे रिश्तेदारों ने डाँट बतायी — तुम तो कहा करते थे मैं बेवा से ही शादी करूँगा, लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया करते थे, अब वह तमाम बाते किधर गयी? तुमने तो एक उदाहरण भी न रखा जिस पर हम चल सकते।

मुझ पर जैसे घड़ो पानी फिर गया। आँखे खुल गयीं। जवानी के जोश में क्या कर गुजरा। पुरानी भावनाएँ फिर उभर आयीं और आज भी मैं उन्हीं विचारों में डूबा हुआ हूँ।

सोचा था — नौकर लड़के को नहीं सम्हाल सकता, औरतें ही इस काम के लिए ठीक हैं। ब्याह कर लेने पर, जब औरत घर में आयेगी तो रामसरूप को अपने पास बाहर रख सकूँगा और उसका खास खयाल रखूँगा लेकिन वह सब कुछ गलत अक्षर की तरह मिट गया। रामसरूप को आज फिर वापस गाँव पिता जी के पास भेजने पर मजबूर हूँ। क्यों, यह किसी से छिपा नहीं। औरत का अपने सौतेले बेटे से प्यार करना एक असम्भव बात है। ब्याह के मौके पर सुना था लड़की बड़ी नेक है, स्वजनों का खास खयाल रखेगी और उसे अपने बेटे की तरह समझेगी

लेकिन सब झूठ। औरत चाहे कितनी नेकदिल हो वह कभी अपने सौतेले बच्चे से प्यार नहीं कर सकती।

और यह हार्दिक दुख वह वादा तोड़ने की सजा है जो कि मैंने एक नेक बीवी से उसके आखिरी वक़्त में किया था।

— चन्दन, सितम्बर १९३१

जब रजिया के दो-तीन बच्चे होकर मर गये और उम्र ढल चली, तो रामू का प्रेम उससे कुछ कम होने लगा और दूसरे ब्याह की धुन, सवार हुई। आये दिन रजिया से झकझक होने लगी। रामू एक-न-एक बहाना खोजकर रजिया पर बिगडता और उसे मारता। और अन्त को वह नयी स्त्री ले ही आया। इसका नाम था दासी। चम्पई रग था, बड़ी-बड़ी आँखें, जवानी की उम्र। पीली, कृशागी रजिया भला इस नवयौवना के सामने क्या जँचती! फिर भी वह जाते हुए स्वामित्व को, जितने दिन हो सके, अपने अधिकार में रखना चाहती थी। गिरते हुए छप्पर को धूनियो से सम्हालने की चेष्टा कर रही थी। इस घर को उसने मर-मरकर बनाया है। उसे सहज ही में नहीं छोड़ सकती। वह इतनी बेसमझ नहीं है कि घर छोड़कर चली जाय और दासी राज करे।

२

एक दिन रजिया ने रामू से कहा — मेरे पास साडी नहीं है, जाकर ला दो। रामू उसके एक दिन पहले दासी के लिए अच्छी-सी चुंदरी लाया था। रजिया की माँग सुनकर बोला — मेरे पास अभी रुपया नहीं है।

रजिया को साडी की उतनी चाह न थी, जितनी रामू और दसिया के आनन्द में विघ्न डालने की। बोली — रुपये नहीं थे, तो कल अपनी चहेती के लिए चुंदरी क्या लाये? चुंदरी के बदले उसी दाम में दो साड़ियाँ लाते, तो एक मेरे काम न आ जाती?

रामू ने स्वेच्छा भाव से कहा — मेरी इच्छा, जो चाहूँगा, कलूँगा, तू बोलने वाली कौन है? अभी उसके खाने-खेलने के दिन हैं। तू चाहती है, उसे अभी से नोन-तेल की चिन्ता में डाल दूँ। यह मुझसे न होगा। तुझे ओढने-पहनने की साध है तो काम कर, भगवान ने क्या हाथ-पैर नहीं दिये। पहले तो घडी रात उठकर काम-धधे में लग जाती थी। अब उसकी डाह में पहर दिन तक पडी रहती है। तो रुपये क्या आकाश से गिरेगे? मैं तेरे लिए अपनी जान थोड़े ही दे दूँगा!

रजिया ने कहा — तो क्या मैं उसकी लौडी हूँ कि वह रानी की तरह पडी

रहे और मैं घर का सारा काम करती रहूँ। इतने दिनों छाती फाड़कर काम किया, उसका यह फल मिला, तो अब मेरी बला काम करने जाती है।

‘मैं जैसे रखूँगा, वैसे ही तुझे रहना पड़ेगा।’

‘मेरी इच्छा होगी रहूँगी, नहीं अलग हो जाऊँगी।’

‘जो तेरी इच्छा हो, कर, मेरा गला छोड़।’

‘अच्छी बात है। आज से तेरा गला छोड़ती हूँ। समझ लूँगी, विधवा हो गयी।’

३

रामू दिल में इतना तो समझता था कि यह गृहस्थी रजिया की जोड़ी हुई है, चाहे उसके रूप में उसके लोचन-विलास के लिए आकर्षण न हो। सम्भव था, कुछ देर के बाद वह जाकर रजिया को मना लेता, पर दासी भी कूटनीति में कुशल थी। उसने गर्म लोहे पर चोटे जमाना शुरू की। बोली — आज देवी जी किस बात पर बिगड़ रही थी?

रामू ने उदास मन से कहा — तेरी चूंदरी के पीछे रजिया महाभारत मचाये हुए है। अब कहती है, अलग रहूँगी। मैंने कह दिया, तेरी जो इच्छा हो कर।

दसिया ने आँखें मटककर कहा — यह सब नखरे हैं कि आकर हाथ-पाँव जोड़े, मनावन करे, और कुछ नहीं। तुम चुपचाप बैठे रहो। दो चार दिन में आप ही गरमी उतर जायगी। तुम कुछ बोलना नहीं, नहीं उनका मिजाज और आसमान पर चढ़ जायगा।

रामू ने गम्भीर भाव से कहा — दासी, तुम जानती नहीं हो, वह कितनी घमड़िन है। वह मुँह से जो बात कहती है, उसे करके छोड़ती है।

रजिया को भी रामू से ऐसी कृतघ्नता की आशा न थी। वह अब पहले की-सी सुन्दरी नहीं, इसलिए रामू को अब उससे प्रेम नहीं है! पुरुष-चरित्र में यह कोई असाधारण बात न थी, लेकिन रामू उससे अलग रहेगा, इसका उसे विश्वास न आता था। यह घर उसी ने पैसा-पैसा जोड़कर बनवाया। गृहस्थी भी उसी की जोड़ी हुई है। अनाज का लेन-देन उसी ने शुरू किया। इस घर में आकर उसने कौन-कौन से कष्ट नहीं झेले, इसीलिए तो कि पौरुख थक जाने पर एक टुकड़ा चैन से खायगी और पड़ी रहेगी, और आज वह इतनी निर्दयता से दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेक दी गयी! रामू ने इतना भी नहीं कहा — तू अलग नहीं रहने पायेगी। मैं या खुद मर जाऊँगा या तुझे मार डालूँगा, पर तुझे अलग न होने दूँगा। तुझसे मेरा ब्याह हुआ है। हँसी-ठट्ठा नहीं है। तो जब रामू को उसकी परवाह

नहीं है, तो वह रामू की क्यों परवाह करे? क्या सभी स्त्रियों के पुरुष बैठे होते हैं? सभी के माँ-बाप, बेटे-पोते होते हैं? आज उसके लडके जीते होते, तो मजाल थी कि यह नयी स्त्री लाते, और मेरी यह दुर्गति करते? इस निर्दयी को मेरे ऊपर इतनी भी दया नहीं आयी!

नारी-हृदय की सारी परवशता इस अत्याचार से विद्रोह करने लगी। वही आग जो मोटी लकड़ी को स्पर्श भी नहीं कर सकती, फूस को जलाकर भस्म कर देती है।

४

दूसरे दिन रजिया एक दूसरे गाँव में चली गयी। उसने अपने साथ कुछ न लिया। जो साड़ी उसकी देह पर थी, वही उसकी सारी सम्पत्ति थी। विघाता ने उसके बालकों को पहले ही छीन लिया था! आज घर भी छीन लिया!

रामू उस समय दासी के साथ बैठा हुआ आमोद-विनोद कर रहा था। रजिया को जाते देखकर शायद वह समझ न सका कि वह चली जा रही है। रजिया ने यही समझा। इस तरह चोरो की भाँति वह जाना भी न चाहती थी। वह दासी को, उसके पति को और सारे गाँव को दिखा देना चाहती थी कि वह इस घर से घेले की भी चीज नहीं ले जा रही है। गाँववालों की दृष्टि में रामू का अपमान करना ही उसका लक्ष्य था। उसके चुपचाप चले जाने से तो कुछ भी न होगा। रामू उलटा सबसे कहेगा, रजिया घर की सारी सम्पदा उठा ले गयी।

उसने रामू को पुकारकर कहा — सम्हालो अपना घर। मैं जाती हूँ। तुम्हारे घर की कोई भी चीज अपने साथ नहीं ले जाती।

रामू एक क्षण के लिए कर्तव्य-भ्रष्ट हो गया। क्या कहे, उसकी समझ में न आया। उसे आशा न थी कि वह यों जायगी। उसने सोचा था, जब-वह घर ढोकर ले जाने लगेगी, तब वह गाँववालों को दिखाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करेगा। अब क्या करे।

दसिया बोली — जाकर गाँव में ढिंढोरा पीट आओ। यहाँ किसी का डर नहीं है। तुम अपने घर से ले ही क्या आयी थीं, जो कुछ लेकर जाओगी।

रजिया ने उसके मुँह न लगकर रामू ही से कहा — सुनते हो, अपनी चहेती की बातें। फिर भी मुँह नहीं खुलता। मैं तो जाती हूँ, लेकिन दस्सो रानी, तुम

भी बहुत दिन राज न करोगी। ईश्वर के दरबार में अन्याय नहीं फलता। वह बड़े-बड़े घमड़ियों का घमंड चूर कर देते हैं।

दसिया ठट्ठा मारकर हँसी, पर रामू ने सिर झुका लिया। रजिया चली गयी।

५

रजिया जिस नये गाँव में आयी थी, वह रामू के गाँव से मिला ही हुआ था, अतएव यहाँ के लोग उससे परिचित हैं। वह कैसी कुशल गृहिणी है, कैसी मेहनती, कैसी बात की सच्ची, यह यहाँ किसी से छिपा न था। रजिया को मजूरी मिलने में कोई बाधा न हुई। जो एक लेकर दो का काम करे, उसे काम की क्या कमी ?

तीन साल तक रजिया ने कैसे काटे, कैसे एक नयी गृहस्थी बनायी, कैसे खेती शुरू की, इसका बयान करने बैठें, तो पोथी हो जाय। सचय के जितने मन्त्र हैं, जितने साधन हैं, वे रजिया को खूब मालूम थे। फिर अब उसे लाग हो गयी थी और लाग में आदमी की शक्ति का वारापार नहीं रहता। गाँववाले उसका परिश्रम देखकर दाँतों उँगली दबाते थे। वह रामू को दिखा देना चाहती है— मैं तुझसे अलग होकर भी आराम से रह सकती हूँ। वह अब पराधीन नारी नहीं है। अपनी कमाई खाती है।

रजिया के पास बैलो की एक अच्छी जोड़ी है। रजिया उन्हें केवल खली-भूसी देकर नहीं रह जाती, रोज दो-दो रोटियाँ भी खिलाती है। फिर उन्हें घटों सहलाती है। कभी-कभी उनके कंधों पर सिर रखकर रोती है, और कहती है, अब बेटे हो तो, पति हो तो तुम्ही हो। मेरी लाज अब तुम्हारे ही हाथ है। दोनों बैल शायद रजिया की भाषा और भाव समझते हैं। वे मनुष्य नहीं, बैल हैं। दोनों सिर नीचा करके रजिया का हाथ चाटकर उसे आश्वासन देते हैं। वे उसे देखते ही कितने प्रेम से उसकी ओर ताकने लगते हैं, कितने हर्ष से कधा झुलाकर उस पर जुवा रखवाते हैं और कैसा जी तोड़ काम करते हैं, यह वे ही लोग समझ सकते हैं, जिन्होंने बैलों की सेवा की है और उनके हृदय को अपनाया है।

रजिया इस गाँव की चौघराइन है। उसकी बुद्धि जो पहिले नित्य आधार खोजती रहती थी और स्वच्छन्द रूप से अपना विकास न कर सकती थी, अब छाया से निकलकर प्रौढ़ और उन्नत हो गयी है।

एक दिन रजिया घर लौटी, तो एक आदमी ने कहा — तुमने नहीं सुना, चौधराइन, रामू तो बहुत बीमार है। सुना दस लघन हो गये है।

रजिया ने उदासीनता से कहा — जूडी है क्या ?

‘जूडी नहीं, कोई दूसरा रोग है। बाहर खाट पर पडा था। मैंने पूछा, कैसा जी है रामू ? तो रोने लगा। बुरा हाल है। घर में एक पैसा भी नहीं कि दवा-दारू करे। दसिया के एक लडका हुआ है। वह तो पहले भी काम-धन्धा न करती थी और अब तो लडकोरी है, कैसे काम करने जाय। सारी मार रामू के सिर जाती है। फिर गहने चाहिए, कपडे चाहिए, नयी दुलहिन यों कैसे रहे।’

रजिया ने घर में जाते हुए कहा — जो जैसा करेगा, आप भोगेगा।

लेकिन अन्दर उसका जी न लगा। वह एक क्षण में फिर बाहर आयी। शायद उस आदमी से कुछ पूछना चाहती थी और इस अन्दाज से पूछना चाहती थी, मानो उसे कुछ परवाह नहीं है।

पर वह आदमी चला गया था। रजिया ने पूरब-पच्छिम जा-जाकर देखा। वह कहीं न मिला। तब रजिया द्वार के चौखट पर बैठ गयी। उसे वे शब्द याद आये, जो उसने तीन साल पहले रामू के घर से चलते समय कहे थे। उस वक्त जलन में उसने वह शाप दिया था। अब वह जलन न थी। समय ने उसे बहुत कुछ शान्त कर दिया था। रामू और दासी की हीनावस्था अब ईर्ष्या के योग्य नहीं, दया के योग्य थी।

उसने सोचा, रामू को दस लघन हो गये हैं, तो अवश्य ही उसकी दशा अच्छी न होगी। कुछ ऐसा मोटा-ताजा तो पहले भी न था, दस लघन ने तो बिलकुल ही घुला डाला होगा। फिर इधर खेती-बारी में भी टोटा ही रहा। खाने-पीने को भी ठीक-ठीक न मिला होगा

पडोस की एक स्त्री ने आग लेने के बहाने आकर पूछा — सुना, रामू बहुत बीमार है। जो जैसा करेगा, वैसा पायेगा। तुम्हें इतनी बेदर्दी से निकाला कि कोई अपने बैरी को भी न निकालेगा।

रजिया ने टोका — नहीं दीदी, ऐसी बात न थी। वे तो बेचारे कुछ बोले ही नहीं। मैं चली तो सिर झुका लिया। दसिया के कहने में आकर वह चाहे जो कुछ कर बैठे हो, यो मुझे कभी कुछ नहीं कहा। किसी की बुराई क्यों करूँ। फिर कौन मर्द ऐसा है जो औरतों के बस नहीं हो जाता। दसिया के कारण उनकी यह दसा हुई है।

पडोसिन ने आग न माँगी, मुँह फेरकर चली गयी।

रजिया ने कलसा और रस्सी उठायी और कुएँ पर पानी खींचने लगी। बैलो को सानी-पानी देने की बेला आ गयी थी, पर उसकी आँखे उस रास्ते की ओर लगी हुई थी, जो मलसी (रामू का गाँव) को जाता था। कोई उसे बुलाने अवश्य आ रहा होगा। नहीं, बिना बुलाये वह कैसे जा सकती है। लोग कहेंगे, आखिर दौड़ी आयी न!

मगर रामू तो अचेत पडा होगा। दस लघन थोड़े नहीं होते। उसकी देह मे था ही क्या। फिर उसे कौन बुलायेगा? दसिया को क्या गरज पडी है। कोई दूसरा घर कर लेगी। जवान है। सौ गाहक निकल आवेंगे। अच्छा वह आ तो रहा है कोई। हाँ, आ रहा है। कुछ धबराया-सा जान पडता है। कौन आदमी है, इसे तो कभी मलसी मे नहीं देखा, मगर उस वक्त से मलसी कभी गयी भी तो नहीं। दो-चार नये आदमी आकर बसे ही होंगे।

बटोही चुपचाप कुएँ के पास से निकला। रजिया ने कलसा जगत पर रख दिया और उसके पास जाकर बोली — रामू महतो ने भेजा है तुम्हे? अच्छा तो चलो घर, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। नहीं, अभी मुझे कुछ देर है, बैलो को सानी-पानी देना है, दिया-वत्ती करनी है। तुम्हे रुपये दे दूँ, जाकर दसिया को दे देना। कह देना, कोई काम हो तो बुला भेजे।

बटोही रामू को क्या जाने। किसी दूसरे गाँव का रहनेवाला था। पहले तो चकराया, फिर समझ गया। चुपके से रजिया के साथ चला गया और रुपये लेकर लम्बा हुआ। चलते-चलते रजिया ने पूछा — अब क्या हाल है उनका?

बटोही ने अटकल से कहा — अब तो कुछ सम्हल रहे हैं।

‘दसिया बहुत रो-धो तो नहीं रही है?’

‘रोती तो नहीं थी।’

‘वह क्यों रोयेगी। मालूम होगा पीछे।’

बटोही चला गया, तो रजिया ने बैलो का सानी-पानी किया, पर मन रामू ही की ओर लगा हुआ था। स्नेह-स्मृतियाँ छोटी-छोटी तारिकाओं की भाँति मन में उदित होती जाती थी। एक बार जब वह बीमार पडी थी, वह बात याद आयी। दस साल हो गये। वह कैसे रात-दिन उसके सिरहाने बैठा रहता था। खाना-पीना तक भूल गया था। उसके मन मे आया क्यों न चलकर देख ही आवे। कोई क्या कहेगा? किसका मुँह है, जो कुछ कहे। चोरी करने नहीं जा रही हूँ। उस

आदमी के पास जा रही हूँ, जिसके साथ पन्द्रह-बीस साल रही हूँ। दसिया नाक सिकोड़ेगी। सिकोड़े। मुझे उससे क्या मतलब।

रजिया ने किवाड़ बंद किये, घर मजूर को सहेजा, और रामू को देखने चली, कौपती, झिझकती, क्षमा का दान लिये हुए।

६

रामू को थोड़े ही दिनों में मालूम हो गया कि उसके घर की आत्मा निकल गयी है, और वह चाहे कितना जोर करे, कितना ही सिर खपाये, उसमें स्फूर्ति नहीं आती। दासी सुन्दरी थी, शौकीन थी और फूहड़ थी। जब पहला नशा उतरा, तो ठाँय ठाँय शुरू हुई। खेती की उपज कम होने लगी, और जो होती भी थी, वह ऊटपटाँग खर्च होती थी। ऋण लेना पड़ता था। इसी चिन्ता और शोक में उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। शुरू में कुछ परवाह न की। परवाह करके ही क्या करता। पर मे पैसे न थे। अताइयों की चिकित्सा ने बीमारी की जड़ और मजबूत कर दी और आज दस-बारह दिन से उसका दाना-पानी छूट गया था। मौत के इंतज़ार में खाट पर पड़ा कराह रहा था। और अब वह दशा हो गयी थी जब हम भविष्य से निश्चिन्त होकर अतीत में विश्राम करते हैं, जैसे कोई गाड़ी आगे का रास्ता बन्द पाकर पीछे लौटे। रजिया को याद करके वह बार-बार रोता और दासी को कोसता — तेरे ही कारण मैंने उसे घर से निकाला। वह क्या गयी, लक्ष्मी चली गयी। मैं जानता हूँ, अब भी बुलाऊँ तो दौड़ी आयेगी, लेकिन बुलाऊँ किस मुँह से! एक बार वह आ जाती और उससे अपने अपराध क्षमा करा लेता, फिर मैं खुशी से मरता। और लालसा नहीं है।

सहसा रजिया ने आकर उसके माथे पर हाथ रखने हुए पूछा — कैसा जी है तुम्हारा? मुझे तो आज हाल मिला।

रामू ने सजल नेत्रों से उसे देखा, पर कुछ कह न सका। दोनों हाथ जोड़कर उभे प्रणाम किया, पर हाथ जुड़े ही रह गये, और आँख उलट गयी।

७

लाश घर में पड़ी थी। रजिया रोती थी, दसिया चिन्तित थी। घर में रुपये का नाम नहीं। लकड़ी तो चाहिए ही, उठानेवाले भी जलपान करेगे ही, कफ़न के बग़ैर लाश उठेगी कैसे। दस से कम का खर्च न था। यहाँ घर में दस पैसे

भी नहीं। डर रही थी कि आज गहनों पर आफ़त आयी। ऐसे कीमती भारी गहने ही कौन थे। किसान की बिसात ही क्या, दो-तीन नग बेचने से दस मिल जायेंगे। मगर और ही क्या सकता है। उसने चौधरी के लड़के को बुलाकर कहा — देवर जी, यह बेड़ा कैसे पार लगे! गाँव में कोई बेले का भी विश्वास करनेवाला नहीं। मेरे गहने हैं। चौधरी से कहो, इन्हें गिरों रखकर आज का काम चलाये, फिर भगवान मालिक है।

‘रजिया से क्यों नहीं माँग लेती?’

सहसा रजिया आँखें पोंछती हुई आ निकली। कान में भनक पड़ी। पूछा — क्या है जोखू, क्या सलाह कर रहे हो? अब मिट्टी उठाओगे कि सलाह की बेला है?

‘हाँ उसी का सराजाम कर रहा हूँ।’

‘रुपये-पैसे तो यहाँ होंगे नहीं। बीमारी में खर्च हो गये होंगे। इस बेचारी को तो उन्होंने बीच मँझघार में लाकर छोड़ दिया। तुम लपककर उस घर चले जाओ भैया! कौन दूर है, कुंजी लेते जाओ। मजूर से कहना, भंडार से पचास रुपया निकाल दे। कहना, ऊपर की पटरी पर रखे है।’

वह तो कुंजी लेकर उधर गया, इधर दसिया राजो के पैर पकड़कर रोने लगी। वहनापे के ये शब्द उसके हृदय में बैठ गये। उसने देखा, रजिया में कितनी दया, कितनी क्षमा है।

रजिया ने उसे छाती से लगाकर कहा — क्यों रोती है बहन? वह चला गया। मैं तो हूँ। किसी बात की चिन्ता न कर। इसी घर में हम और तुम दोनों उसके नाम पर बैठेगी। मैं वहाँ भी देखूँगी यहाँ भी देखूँगी। घाप भर की बात ही क्या? कोई तुमसे गहने-पाते माँगे तो मत देना।

दसिया का जी होता था सिर पटककर मर जाय। इसे उसने कितना जलाया, कितना हलाया और घर से निकालकर छोड़ा।

रजिया ने पूछा — जिस-जिस के रुपये हों, सुरत करके मुझे बता देना। मैं झगड़ा नहीं रखना चाहती। बच्चा दुबला क्यों हो रहा है?

दसिया बोली — मेरे दूध होता ही नहीं। गाय जो तुम छोड़ गयी थी, वह मर गयी। दूध नहीं पाता।

‘राम राम! बेचारा मुरझा गया। मैं कल ही गाय लाऊँगी। सभी गृहस्थी उठा लाऊँगी। वहाँ क्या रक्खा है।’

लास धूम से उठी। रजिया उसके साथ गयी। दाहकर्म किया। भोज हुआ। कोई दो सौ रुपये खर्च हो गये। किसी से माँगने न पड़े।

दसिया के जौहर भी इस त्याग की आँच में निकल आये। विलासिनी सेवा की मूर्ति बन गयी।

८

आज रामू को मरे सात साल हुए है। रजिया घर सम्हाले हुए है। दसिया को वह सौत नहीं, बेटा समझती है। पहले उसे पहनाकर तब आप पहनती है। उसे खिलाकर आप खाती है। जोखू पढ़ने जाता है। उसकी सगाई की बातचीत पक्की हो गयी है। इस जाति में बचपन में ही ब्याह हो जाता है। दसिया ने कहा — बहन, गहने बनवाकर क्या करोगी। मेरे गहने तो धरे ही हैं।

रजिया ने कहा — नहीं री, उसके लिए नये गहने बनवाऊँगी। अभी तो मेरा हाथ चलता है। जब थक जाऊँ, तो जो चाहे करना। तेरे अभी पहनने-ओढ़ने के दिन हैं, तू अपने गहने रहने दे।

नाइन ठकुरसोहाती करके बोली — आज जोखू के बाप होते, तो कुछ और ही बात होती।

रजिया ने कहा — वे नहीं है, तो मैं तो हूँ। वे जितना करते, मैं उसका दूना करूँगी। जब मैं मर जाऊँ, तब कहना जोखू का बाप नहीं है !

ब्याह के दिन दसिया को रोते देखकर रजिया ने कहा — बहू, तुम क्यों रोती हो ? अभी तो मैं जीती हूँ। घर तुम्हारा है। जैसे चाहो रहो। मुझे एक पीटी दे दो, बस। और मुझे क्या करना है। मेरा आदमी मर गया। तुम्हारा तो अभी जीता है।

दसिया ने उसकी गोद में सिर रख दिया और खूब रोई — जीजी, तुम मेरी माता हो। तुम न होती, तो मैं किसके द्वार पर खड़ी होती। घर में तो चूहे लोटते थे। उनके राज में मुझे दुख ही दुख उठाने पड़े। सोहाग का सुख तो मुझे तुम्हारे राज में मिला। मैं दुख से नहीं रोती, रोती हूँ भगवान की दया पर कि कहाँ मैं और कहाँ यह खुसियाली !

रजिया मुस्कराकर रो दी।

— विशाल भारत, दिसंबर १९३१

देवी

बूढो में जो एक तरह की बच्चो की-सी बेशर्मी आ जाती है वह इस वक्त भी तुलिया मे न आयी थी, यद्यपि उसके सिर के बाल चाँदी हो गये थे और गाल लटककर दाढो के नीचे आ गये थे। वह खुद तो निश्चित रूप से अपनी उम्र न बतः सकती थी, लेकिन लोगों का अनुमान था कि वह सौ की सीमा को पार कर चुकी है। और अभी तक वह चलती तो अचल से सिर ढाँककर, आँखे नीची किये हुए, मानो नवेली बहू है। थी तो चमारिन, पर क्या मजाल कि किसी के घर का पकवान देखकर उसका जी ललचाय। गाँव में ऊँची जातो के बहुत से घर थे। तुलिया का सभी जगह जाना-जाना था। सारा गाँव उसकी इज्जत करता था और गृहिणियाँ तो उसे श्रद्धा की आँखो से देखती थी। उसे आग्रह के साथ अपने घर बुलाती, उसके सिर मे तेल डालती, माँग मे सेदुर भरती, कोई अच्छी चीज पकायी होती, जैसे हलवा या खीर या पकौड़ियाँ, तो उसे खिलाना चाहती, लेकिन बुढ़िया को जीभ से सम्मान कही प्यारा था। कभी न खाती। उसके आगे-पीछे कोई न था। उसके टोले के लोग कुछ तो गाँव छोड़कर भाग गये थे, कुछ प्लेग और मलेरिया की भेंट हो गये थे और अब थोड़े से खँडहर मानो उनकी याद मे नगे सिर, खड़े छाती-सी पीट रहे थे। केवल तुलिया की मँडैया ही जिन्दा बच रही थी, और यद्यपि तुलिया जीवन-यात्रा की उस सीमा के निकट पहुँच चुकी थी, जहाँ आदमी धर्म और समाज के सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है और अब श्रेष्ठ प्राणियो को भी उससे उसकी जात के कारण कोई भेद न था, सभी उसे अपने घर में आश्रय देने को तैयार थे, पर मान-प्रिय बुढ़िया क्यो किसी का एहसान ले, क्यो अपने मालिक की इज्जत में बट्टा लगाये, जिसकी उसने सौ बरस पहले केवल एक बार सूरत देखी थी। हाँ, केवल एक बार !

तुलिया की जब सगाई हुई तो वह केवल पाँच साल की थी और उसका पति अठारह साल का बलिष्ठ युवक था। विवाह करके वह पूरब कमाने चला गया। सोचा, अभी इस लड़की के जवान होने मे दस-बारह साल की देर है। इतने दिनों मे क्यो न कुछ धन कमा लूँ और फिर निश्चिन्त होकर खेती-बारी करूँ। लेकिन

तुलिया जवान भी हुई, बूढ़ी भी हो गयी, वह लौटकर घर न आया। पचास साल तक उसके खत हर तीसरे महीने आते रहे। खत के साथ जवाब के लिए एक पता लिखा हुआ लिफाफा भी होता था और तीस रुपये का मनीआर्डर। खत में वह बराबर अपनी विवशता, पराधीनता और दुर्भाग्य का रोना रोता था — क्या कर्लू तुला, मन में तो बड़ी अभिलाषा है कि अपनी मँडैया को आबाद कर देता और तुम्हारे साथ सुख से रहता, पर सब कुछ नसीब के हाथ है, अपना कोई बस नहीं। जब भगवान लावेगे तब आऊँगा। तुम धीरज रखना। मेरे जीते जी तुम्हें कोई कष्ट न होगा। तुम्हारी बाँह पकड़ी है तो मरते दम तक निबाह करूँगा। जब आँवे बन्द हो जायेगी तब क्या होगा, कौन जाने ? प्रायः सभी पत्रों में थोड़े से फेर-फार के साथ यही शब्द और यही भाव होते थे। हाँ, जवानी के पत्रों में विरह की जो ज्वाला होती थी, उसकी जगह अब निराशा की राख ही रह गयी थी। लेकिन तुलिया के लिए सभी पत्र एक-से प्यारे थे, मानो उसके हृदय के अंग हों। उसने एक खत भी कभी न फाड़ा था — ऐसे शगुन के पत्र कहीं फाड़े जाते हैं — उनका एक छोटा-सा पोथा जमा हो गया था। उनके कागज का रंग उड़ गया था, स्याही भी उड़ गयी थी, लेकिन तुलिया के लिए वे अभी उतने ही सजीव, उतने ही सतृष्ण, उतने ही व्याकुल थे। सब के सब उसकी पेटारी में, लाल डोरे से बँधे हुए, उसके दीर्घ जीवन के सचित सोहाग की भोंति, रखे हुए थे। इन पत्रों को पाकर तुलिया गद्गद हो जाती। उसके पाँव जमीन पर न पड़ते, उन्हें बार-बार पढ़वाती और बार-बार रोती। उस दिन वह अवश्य केशों में तेल डालती, सिन्दूर से माँग भरवाती, रगीन साड़ी पहनती, अपनी पुरखिनों के चरन छूती और आशीर्वाद लेती। उसका सोहाग जाग उठता था। गाँव की बिरहिनियों के लिए पत्र पत्र नहीं, जो पढ़कर फेंक दिया जाता है, अपने प्यारे परदेसी के प्राण है, देह से मूल्यवान। उनमें देह की कठोरता नहीं, कलुषता नहीं, आत्मा की आकुलता और अनु-राग है। तुलिया पति के पत्रों ही को शायद पति समझती थी। पति का कोई दूसरा रूप उसने कहाँ देखा था ?

रमणियाँ हँसी से पूछती — क्यों बुआ, तुम्हें फूफा की कुछ याद आती है — तुमने उनको देखा तो होगा ? और तुलिया के झुर्रियों से भरे हुए मुखमण्डल पर यौवन चमक उठता, आँखों में लाली आ जाती। पुलककर कहती — याद क्यों नहीं आती बेटा, उनकी सूरत तो आज भी मेरी आँखों के सामने है। बड़ी-बड़ी आँखें, लाल-लाल ऊँचा माथा, चौड़ी छाती, गठी हुई देह, ऐसा तो अब यहाँ कोई

पट्टा ही नहीं है। मोतियों के से दाँत थे बेटा। लाल-लाल कुरता पहने हुए थे। जब ब्याह हो गया तो मैंने उनसे कहा, मेरे लिए बहुत से गहने बनवाओगे न, नहीं मैं तुम्हारे घर नहीं रहूँगी। लड़कपन था बेटा, सरम-लिहाज कुछ थोडा ही था। मेरी बात सुनकर वह बड़े जोर से ठट्ठा मारकर हँसे और मुझे अपने कंधे पर बैठाकर बोले — मैं तुझे गहनो से लाद दूँगा, तुलिया कितने गहने पहनेगी। मैं परदेस कमाने जाता हूँ, वहाँ से रुपये भेजूँगा, तू बहुत से गहने बनवाना। जब वहाँ से आऊँगा तो अपने साथ भी सन्दूक भर गहने लाऊँगा। मेरा डोला हुआ था बेटा, माँ-बाप की ऐसी हैसियत कहाँ थी कि उन्हें बारात के साथ अपने घर बुलाते। उन्ही के घर मेरी उनसे सगाई हुई और एक ही दिन मे मुझे वह कुछ ऐसे भाये कि जब वह चलने लगे तो मैं उनके गले लिपटकर रोती थी और कहती थी कि मुझे भी अपने साथ लेते चलो, मैं तुम्हारा खाना पकाऊँगी, तुम्हारी खाट बिछाऊँगी, तुम्हारी धोती छाँटूँगी। वहाँ उन्ही के उमर के दो-तीन लडके और बैठे हुए थे। उन्ही के सामने वह मुस्कराकर मेरे कान मे बोले — और मेरे साथ सोयेगी नहीं ? बस, मैं उनका गला छोड़कर अलग खडी हो गयी और उनके ऊपर एक ककड़ फेककर बोली — मुझे गाली दोगे तो कहे देती हूँ, हाँ !

और यह जीवन-कथा नित्य के सुमिरन और जाप से जीवन-मन्त्र बन गयी थी। उस समय कोई उसका चेहरा देखता ! खिला पड़ता था। घूँघट निकालकर, भाव बताकर, मुँह फेरकर हँसती हुई, मानो उसके जीवन मे दुख जैसी कोई चीज है ही नहीं। वह अपने जीवन की इस पुण्य स्मृति का वर्णन करती, अपने अन्तस्तल के इस प्रकाश को दर्शाती जो सौ बरसो से उसके जीवन-पथ को काँटों और गढ़ों से बचाता आता था। कैसी अनन्त अभिलाषा थी, जिसे जीवन-सत्यो ने ज़रा भी धूमिल न कर पाया था।

२

वह दिन भी थे, जब तुलिया जवान थी, सुन्दर थी और पतंगों को उसके रूप-दीपक पर मँडराने का नशा सवार था। उनके अनुराग और उन्माद तथा समर्पण की कथाएँ जब वह काँपते हुए स्वरो और सजल नेत्रो से कहती तो शायद उन शहीदों की आत्माएँ स्वर्ग मे आनन्द से नाच उठती होंगी, क्योकि जीते जी उन्हे जो कुछ न मिला वही अब तुलिया उन पर दोनो हाथो से निछावर कर रही थी। उसकी उठती हुई जबानी थी। जिधर से निकल जाती युवक समाज कलेजे पर हाथ रखकर रह जाता। तब बसीसिंह नाम का एक ठाकुर था, बड़ा छैला, बड़ा रसिया

गाँव का सबसे मनचला जवान, जिसकी तान रात के सत्राटे में कोस भर से सुनायी पड़ती थी। दिन में सैकड़ों बार तुलिया के घर के चक्कर लगाता। तालाब के किनारे, खेत में, खलिहान में, कुएँ पर, जहाँ वह जाती, परछाई की तरह उसके पीछे लगा रहता। कभी दूध लेकर उसके घर जाता, कभी घी लेकर। कहता, तुलिया, मैं तुझसे कुछ नहीं चाहता, बस जो कुछ मैं तुझे भेंट किया करूँ, वह ले लिया कर। तू मुझसे नहीं बोलना चाहती मत बोल, मेरा मुँह नहीं देखना चाहती, मत देख, लेकिन मेरा चढावो को ठुकरा मत। बस, मैं इसी से सन्तुष्ट हो जाऊँगा। तुलिया ऐसी भोली न थी, जानती थी यह उँगली पकड़ने की बातें हैं, लेकिन न जाने कैसे वह एक दिन उसके धोखे में आ गयी — नहीं, धोखे में नहीं आयी — उसकी जवानी पर उभे दया आ गयी। एक दिन वह पके हुए कलमी आमो की एक टोकरी लाया। तुलिया ने कभी कलमी आम न खाये थे। टोकरी उससे ले ली। फिर तो आये दिन आम की डालियाँ आने लगी। एक दिन जब तुलिया टोकरी लेकर घर में जाने लगी तो बसी ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर अपने सीने पर रख लिया और चट उसके पैरो पर गिर पड़ा। फिर बोला — तुलिया, अगर अब भी तुझे मुझ पर दया नहीं आती तो आज मुझे मार डाल। तेरे हाथों से मर जाऊँ, बस यही साथ है।

तुलिया ने टोकरी पटक दी, अपने पाँव छुड़ाकर एक पग पीछे हट गयी और रोषभरी आँखों से ताकती हुई बोली — अच्छा ठाकुर, अब यहाँ से चले जाव, नहीं तो या तो तुम न रहोगे या मैं न रहूँगी। तुम्हारे आमो में आग लगे, और तुमको क्या करूँ! मेरा आदमी काले कोसो मेरे नाम पर बैठा हुआ है, इसीलिए कि मैं यहाँ उसके साथ कपट करूँ? वह मर्द है, चार पैसे कमाता है, क्या वह दूसरी न रख सकता था? क्या औरतो की ससार में कमी है? लेकिन वह मेरे नाम पर बैठा हुआ है, मर्द होकर बैठा हुआ है। तुमसे कम पट्टा नहीं है, तुम्हारा जैसा बाँका चाहे न हो। पढ़ोगे उसकी चिट्ठियाँ जो वह मेरे नाम भेजता है? आप चाहे जिस दशा में हो, मैं कौन यहाँ बैठी देखती हूँ, लेकिन मेरे पास बराबर रुपये भेजता है। इसीलिए कि मैं यहाँ दूसरों से विहार करूँ? जब तक वह मुझको अपनी और अपने को मेरा समझता रहेगा, तुलिया उसी की रहेगी, मन से भी, करम से भी। जब उससे मेरा ब्याह हुआ तब मैं पाँच साल की अल्हड़ छोकरी थी। उसने मेरे साथ कौन-सा सुख उठाया? बाँह पकड़ने की लाज ही तो निभा रहा है! जब वह मर्द होकर प्रीत निभाता है तो मैं औरत होकर उसके साथ दगा करूँ!

यह कहकर वह भीतर गयी और पत्रों की पिटारी लाकर ठाकुर के सामने पटक दी। मगर ठाकुर की आँखों से आँसुओं का तार बँधा हुआ था, ओठ बिचके जा रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि भूमि में घँसा जा रहा है।

एक क्षण के बाद उसने हाथ जोड़कर कहा — मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया तुलिया। मैंने तुझे पहचाना न था। अब इसकी यही सज़ा है कि इसी क्षण मुझे मार डाल। ऐसे पापी के उद्धार का यही एक मार्ग है।

तुलिया को उस पर दया नहीं आयी। वह समझती थी कि यह अभी तक शरारत किये जाता है। झल्लाकर बोली — मरने को जी चाहता है तो मर जाव। क्या ससार में कुएँ-तालाब नहीं हैं, या तुम्हारे पास तलवार-कटार नहीं है। मैं किसी को क्यों मारूँ ?

ठाकुर ने हताश आँखों से देखा।

‘तो यही तेरा हुक्म है?’

‘मेरा हुक्म क्यों होने लगा? मरनेवाले किसी से हुक्म नहीं माँगते।’

ठाकुर चला गया और दूसरे दिन उसकी लाश नदी में तैरती हुई मिली। लोगों ने समझा तड़के नहाने आया होगा, पाँव फिसल गया होगा। महीनो तक गाँव में इसकी चर्चा रही, पर तुलिया ने जबान तक न खोली, उधर का आना-जाना बन्द कर दिया।

बसीसिंह के मरते ही छोटे भाई ने जायदाद पर कब्जा कर लिया और उसकी स्त्री और बालक को सताने लगा। देवरानी ताने देती, देवर ऐब लगाता। आखिर अनाथ विधवा एक दिन जिन्दगी से तंग आकर घर से निकल पड़ी। गाँव में सोता पड़ गया था। तुलिया भोजन करके हाथ में लालटेन लिये गाय को रोटी खिलाने निकली थी। प्रकाश में उसने ठकुराइन को दबे पाँव जाते देखा। सिसकती और अंचल से आँसू पोंछती जाती थी। तीन साल का बालक गोद में था।

तुलिया ने पूछा — इतनी रात गये कहाँ जाती हो ठकुराइन? सुनो, बात क्या है, तुम तो रो रही हो।

ठकुराइन घर से जा तो रही थी, पर उसे खुद न मालूम था कहाँ। तुलिया की ओर एक बार भीत नेत्रों से देखकर बिना कुछ जवाब दिये आगे बढ़ी। जवाब कैसे देती? गले में तो आँसू भरे हुए थे और इस समय न जाने क्यों और उमड़ आये थे।

तुलिया सामने आकर बोली — जब तक तुम बता न दोगी, मैं एक पग भी आगे न जाने दूंगी।

ठकुराइन खड़ी हो गयी और आँसू-भरी आँखों में क्रोध भरकर बोली — तू क्या करेगी पूछकर? तुझसे मतलब?

‘तुझसे कोई मतलब ही नहीं? क्या मैं तुम्हारे गाँव में नहीं रहती? गाँव-वाले एक दूसरे के दुख-दर्द में साथ न देगे तो कौन देगा?’

‘इस ज़माने में कौन किसका साथ देता है तुलिया? जब अपने घरवालो ने ही साथ नहीं दिया और तेरे भैया के मरते ही मेरे खून के प्यासे हो गये, तो फिर मैं और किससे आशा रखूँ? तुझसे मेरे घर का हाल कुछ छिपा है? वहाँ मेरे लिए अब जगह नहीं है। जिस देवर-देवरानी के लिए मैं प्राण देती थी, वही अब मेरे दुश्मन है। चाहते हैं कि यह एक रोटी खाय और अनार्थों की तरह पडी रहे। मैं रखेली नहीं हूँ, उढ़री नहीं हूँ, ब्याहता हूँ, दस गाँव के बीच में ब्याह के आयी हूँ। अपनी रत्नी भर जायदाद न छोड़ूँगी। आज कोई न दे, मैं दुखिया हूँ, लेकिन चाहे मेरी आबरू जाय, इनको मिटा के छोड़ूँगी और अपना आधा लेकर रहूँगी।’

‘तेरे भैया’, ये दो शब्द तुलिया को इतने प्यारे लगे कि उसने ठकुराइन को गले लगा लिया और उसका हाथ पकड़कर बोली — तो बहिन, मेरे घर मे चलकर रहो। और कोई साथ दे या न दे, तुलिया मरते दम तक तुम्हारा साथ देगी। मेरा घर तुम्हारे रहने लायक नहीं है, लेकिन घर मे और कुछ नहीं शान्ति तो है और मैं कितनी ही नीच हूँ, तुम्हारी बहिन तो हूँ।

ठकुराइन ने तुलिया के चेहरे पर अपनी विस्मय भरी आँखें जमा दी।

‘ऐसा न हो मेरे पीछे मेरा देवर तुम्हारा भी दुश्मन हो जाय।’

‘मैं दुश्मनों से नहीं डरती, नहीं इस टोले मे अकेली न रहती।’

‘लेकिन मैं तो नहीं चाहती कि मेरे कारन तुझ पर आफत आवे।’

‘तो उनसे कहने ही कौन जाता है, और किसे मालूम होगा कि अन्दर तुम हो।’

ठकुराइन को ढाढ़स बाँधा। सकुचाती हुई तुलिया के साथ अन्दर आयी। उसका हृदय भारी था। जो एक विशाल पक्के भवन की स्वामिनी थी, आज इस झोंपडी मे पड़ी हुई है।

घर में एक ही खाट थी, ठकुराइन बच्चे के साथ उस पर सोती। तुलिया ज़मीन पर पड़ रहती। एक ही कम्बल था, ठकुराइन उसको ओढ़ती, तुलिया टाट का टुकड़ा ओढ़कर रात काटती। मेहमान का क्या सत्कार करे, कैसे रखे, यही सोचा करती। ठकुराइन के जूठे बरतन माँजना, कपडे छाँटना, उसके बच्चे को खिलाना, ये सारे काम वह इतने उमंग से करती, मानो देवी की उपासना कर रही हो। ठकुराइन

इस विपत्ति में भी ठकुराइन थी, गर्विणी, विलासप्रिय, कल्पनाहीन। इस तरह रहती थी मानो उसी का घर है और तुलिया पर इस तरह रोब जमाती थी मानो वह उसकी लौड़ी है। लेकिन तुलिया अपने अभागे प्रेमी के साथ प्रीति की रीति का निबाह कर रही थी, उसका मन कभी न मैला होता, माथे पर कभी न बल पड़ता।

एक दिन ठकुराइन ने कहा — तूला, तुम बच्चे को देखती रहना, मैं दो-चार दिन के लिए जरा बाहर जाऊँगी। इस तरह तो यहाँ जिन्दगी भर तुम्हारी रोटियाँ तोड़ती रहूँगी, पर दिल की आग कैसे ठण्डी होगी? इस बेहया को इसकी लाज कहाँ कि उसकी भावज कहाँ चली गयी। वह तो दिल में खुश होगा कि अच्छा हुआ उसके मार्ग का काँटा हट गया। ज्यों ही पता चला कि मैं अपने मैके नहीं गयी, कहीं और पडी हूँ, वह तुरन्त मुझे बदनाम कर देगा और तब सारा समाज उसी का साथ देगा। अब मुझे कुछ अपनी फिक्र करनी चाहिए।

तुलिया ने पूछा — कहाँ जाना चाहती हो बहिन? कोई हर्ज न हो तो मैं भी साथ चलूँ। अकेली कहाँ जाओगी?

‘उस साँप को कुचलने के लिए कोई लाठी खोजूँगी।’

तुलिया इसका आशय न समझ सकी। उसके मुख की ओर ताकने लगी।

ठकुराइन ने निर्लज्जता के साथ कहा — तू इतनी मोटी-सी बात भी नहीं समझी! साफ-साफ ही सुनना चाहती है? अनाथ स्त्री के पास अपनी रक्षा का अपने रूप के सिवा दूसरा कौन अस्त्र है? अब उसी अस्त्र से काम लूँगी। जानती है, इस रूप के क्या दाम होंगे? इस भेड़िये का सिर। इस परगने का हाकिम जो कोई भी हो उसी पर मेरा जादू चलेगा। और ऐसा कौन मर्द है जो किसी युवती के जादू से बच सके, चाहे वह ऋषि ही क्यों न हो। धर्म जाता है जाय, मुझे परवाह नहीं। मैं यह नहीं देख सकती कि मैं बन-बन की पत्तियाँ तोड़ूँ और वह शोहदा मूँछो पर ताव देकर राज करे।

तुलिया को मालूम हुआ कि इस अभिमानिनी के हृदय पर कितनी गहरी चोट है। इस व्यथा को शान्त करने के लिए वह जान ही पर नहीं खेल रही है, धर्म पर खेल रही है जिसे वह प्राणो से भी प्रिय समझती है। बसीसिंह की वह प्रार्थी मूर्ति उसकी आँखों के सामने आ खड़ी हुई। वह बलिष्ठ था, अपनी फौलादी शक्ति से वह बड़ी आसानी के साथ तुलिया पर बल प्रयोग कर सकता था, और उस रात के सन्नाटे में उस अनाया की रक्षा करनेवाला ही कौन बैठा हुआ था। पर उसकी सतीत्व-भरी भर्त्सना ने बसीसिंह को किस तरह मोहित कर लिया, जैसे कोई काला

भयंकर नाग महुअर का सुरीला राग सुनकर मस्त हो गया हो। उसी सच्चे सूरमा की कुल-मर्यादा आज सकट में है। क्या तुलिया उस मर्यादा को लुटने देगी और कुछ न करेगी? नहीं-नहीं! अगर बसीसिंह ने उसके सत् को अपने प्राणों से प्रिय समझा तो वह भी उसकी आबरू को अपने धर्म से बचायेगी।

उसने ठकुराइन को तसल्ली देते हुए कहा — अभी तुम कही मत जाओ बहिन, पहले मुझे अपनी शक्ति आजमा लेने दो। मेरी आबरू चली भी गयी तो कौन हँसेगा। तुम्हारी आबरू के पीछे तो एक कुल की आबरू है।

ठकुराइन ने मुस्कराकर उसको देखा। बोली — तू यह कला क्या जाने तुलिया? 'कौन-सी कला?'

'यही मदों को उल्लू बनाने की।'

'मैं नारी नहीं हूँ?'

'लेकिन पुरुषों का चरित्र तो नहीं जानती?'

'यह तो हम-तुम दोनों माँ के पेट से सीखकर आयी है।'

'कुछ बता तो क्या करेगी?'

'वही जो तुम करने जा रही हो। तुम परगने के हाकिम पर अपना जाहू डालना चाहती हो, मैं तुम्हारे देवर पर जाल फेकूंगी।'

'बडा घाघ है तुलिया।'

'यही तो देखना है।'

३

तुलिया ने बाकी रात कार्यक्रम और उसका विधान सोचने में काटी। कुशल सेनापति की भाँति उसने घावे और मार-काट की एक योजना-सी मन में बना ली। उसे अपनी विजय का विश्वास था। शत्रु निश्चक था, इस घावे की उसे ज़रा भी खबर न थी।

बसीसिंह का छोटा भाई गिरधर कंधे पर छ. फ़ीट का मोटा लट्ठ रखे अकड़ता चला आता था कि तुलिया ने पुकारा — ठकुर, तनिक यह घास का गट्ठा उठाकर मेरे सिर पर रख दो। मुझसे नहीं उठता।

दो पहर हो गया था। मजदूर खेतों से लौटकर आ चुके थे। बगूले उठने लगे थे। तुलिया एक पेड़ के नीचे घास का गट्ठा रखे खड़ी थी। उसके माथे से पसीने की धार बह रही थी।

ठाकुर ने चौककर तुलिया की ओर देखा। उसी वक़्त तुलिया का अचल खिसक गया और नीचे की लाल चोली झलक पड़ी। उसने झट अचल सम्हाल लिया, पर उतावली में जूड़े में गुंथी हुई फूलों की बेनी बिजली की तरह आँखों में कौद गयी। गिरघर का मन चचल हो उठा। आँखों में हल्का-सा नशा पैदा हुआ और चेहरे पर हल्की-सी सुर्खी और हल्की-सी मुस्कराहट। नस-नस में संगीत-सा गूँज उठा।

उसने तुलिया को हजारों बार देखा था, प्यासी आँखों से, ललचायी आँखों से, मगर तुलिया अपने रूप और सत् के घमण्ड में उसकी तरफ कभी आँखें तक न उठाती थी। उसकी मुद्रा और ढंग में कुछ ऐसी रुखाई, कुछ ऐसी निठुरता होती थी कि ठाकुर के सारे हौसले पस्त हो जाते थे, सारा शौक ठण्डा पड़ जाता था। आकाश में उड़नेवाले पछी पर उसके जाल और दाने का क्या असर हो सकता था? मगर आज वह पछी सामनेवाली डाली पर आ बैठा था और ऐसा जान पड़ता था कि भूखा है। फिर वह क्यों न दाना और जाल लेकर दौड़े।

उसने मस्त होकर कहा — मैं पहुँचाये देता हूँ तुलिया, तू क्यों सिर पर उठायेगी।
‘और कोई देख ले तो यही कहे कि ठाकुर को क्या हो गया है?’
‘मुझे कुत्तों के भूँकने की परवा नहीं है।’
‘लेकिन मुझे तो है।’

ठाकुर ने न माना। गद्दा सिर पर उठा लिया और इस तरह आकाश में पाँव रखता चला मानो तीनो लोक का खजाना लूटे लिये जाता हो।

४

एक महीना गुज़र गया। तुलिया ने ठाकुर पर मोहिनी डाल दी थी और अब उसे मछली की तरह खेला रही थी। कभी बसी ढीली कर देती, कभी कड़ी। ठाकुर शिकार करने चला था, खुद जाल में फँस गया। अपना ईमान और धर्म और प्रतिष्ठा सब कुछ हौम करके वह देवी का वरदान न पा सकता था। तुलिया आज भी उससे उतनी ही दूर थी जितनी पहले।

एक दिन वह तुलिया से बोला — इस तरह कब तक जलायेगी तुलिया। चल कहीं भाग चले।

तुलिया ने फदे को और कसा — हाँ, और क्या। जब तुम मुँह फेर लो तो कहीं की न रहूँ। दीन से भी जाऊँ, दुनिया से भी!

ठाकुर ने शिकायत के स्वर में कहा — अब भी तुझे मुझ पर विश्वास नहीं आता ?

‘भौरे फूल का रस लेकर उड़ जाते है।’

‘और पतंगे जलकर राख नहीं हो जाते ?’

‘पतियाँ कैसे ?’

‘मैंने तेरा कोई हुक्म टाला है ?’

‘तुम समझते होगे कि तुलिया को एक रगीन साड़ी और दो-एक छोटे-मोटे गहने देकर फँसा लूँगा। मैं ऐसी भोली नहीं हूँ।’

तुलिया ने ठाकुर के दिल की बात भाँप ली थी। ठाकुर हैरत में आकर उसका मुँह ताकने लगा।

तुलिया ने फिर कहा — आदमी अपना घर छोड़ता है तो पहले कहीं बैठने का ठिकाना कर लेता है।

ठाकुर प्रसन्न होकर बोला — तो तू चलकर मेरे घर में मालकिन बनकर रह। मैं तुझसे कितनी बार कह चुका।

तुलिया आँखें मटकाकर बोली — आज मालकिन बनकर रहूँ, कल लौड़ी बनकर भी न रहने पाऊँ, क्यों ?

‘तो जिस तरह तेरा मन भरे वह कर। मैं तो तेरा गुलाम हूँ।’

‘बचन देते हो ?’

‘हाँ, देता हूँ। एक बार नहीं, सौ बार, हज़ार बार।’

‘फिर तो न जाओगे ?’

‘बचन देकर फिर जाना नामदों का काम है।’

‘तो अपनी आधी जमीन-जायदाद मेरे नाम लिख दो।’

ठाकुर अपने घर की एक कोठरी, दस-पाँच बीघे खेत, गहने-कपड़े तो उसके चरणों पर चढ़ा देने को तैयार था, लेकिन आधी जायदाद उसके नाम लिख देने का साहस उसमें न था। कल को तुलिया उससे किसी बात पर नाराज हो जाय, तो उसे आधी जायदाद से हाथ धोना पड़े। ऐसी औरत का क्या एतबार ! उसे गुमान तक न था कि तुलिया उसके प्रेम की इतनी कड़ी परीक्षा लेगी। उसे तुलिया पर क्रोध आया। यह चमार की बिटिया जरा सुन्दर क्या हो गयी है कि समझती है, मैं अप्सरा हूँ। उसकी मुहब्बत केवल उसके रूप का मोह थी। वह मुहब्बत, जो अपने को मिटा देती है और मिट जाना ही अपने जीवन की सफलता समझती है, उसमें न थी।

उसने माथे पर बल लाकर कहा — मैं न जानता था, तुझे मेरी ज़मीन-जायदाद से प्रेम है तुलिया, मुझसे नहीं !

तुलिया ने छूटते ही जवाब दिया — तो क्या मैं न जानती थी कि तुम्हें मेरे रूप और जवानी ही से प्रेम है, मुझसे नहीं !

‘तू प्रेम को बाजार का सौदा समझती है?’

‘हाँ, समझती हूँ। तुम्हारे लिए प्रेम चार दिन की चाँदनी होगी, मेरे लिए तो अँधेरा पाख हो जायगा। मैं जब अपना सब कुछ तुम्हें दे रही हूँ तो उसके बदले में सब कुछ लेना भी चाहती हूँ। तुम्हें अगर मुझसे प्रेम होता तो तुम आधी क्या पूरी जायदाद मेरे नाम लिख देते। मैं जायदाद क्या सिर पर उठा ले जाऊँगी। लेकिन तुम्हारी नीयत मालूम हो गयी। अच्छा ही हुआ। भगवान न करे कि ऐसा कोई समय आवे, लेकिन दिन किसी के बराबर नहीं जाते, अगर ऐसा कोई समय आया कि तुमको मेरे सामने हाथ पसारना पड़ा तो तुलिया दिखा देगी कि औरत का दिल कितना उदार हो सकता है।’

तुलिया झल्लायी हुई वहाँ से चली गयी, पर निराश न थी, न बेदिल। जो कुछ हुआ वह उसके सोचे हुए विधान का एक अंग था। इसके आगे क्या होने-वाला है, इसके बारे में भी उसे कोई सन्देह न था।

५

ठाकुर ने जायदाद तो बचा ली थी, पर बड़े मँहगे दामों। उसके दिल का इत्मीनान गायब हो गया था। जिन्दगी में जैसे कुछ रह ही न गया हो। जायदाद आँखों के सामने थी, तुलिया दिल के अन्दर। तुलिया जब रोज सामने आकर अपनी तिछीं चितवनो से उसके हृदय में बाण चलाती थी, तब वह ठोस सत्य थी। अब जो तुलिया उसके हृदय में बैठी हुई थी, वह स्वप्न थी जो सत्य से कहीं ज्यादा मादक है, विदारक है।

कभी-कभी तुलिया स्वप्न की एक झलक-सी नजर आ जाती, और स्वप्न ही की भाँति विलीन भी हो जाती। गिरघर उससे अपने दिल का दर्द कहने का अवसर ढूँढ़ता रहता लेकिन तुलिया उसके साये से भी परहेज करती। गिरघर को अब अनुभव हो रहा था कि उसके जीवन को सुखी बनाने के लिए उसकी जायदाद जितनी जरूरी है, उससे कहीं ज्यादा जरूरी तुलिया है। उसे अब अपनी कृपणता पर क्रोध आता। जायदाद क्या तुलिया के नाम रही, क्या उसके नाम। इस जरा-सी बात में

क्या रक्खा है। तुलिया तो इसलिए अपने नाम लिखा रही थी कि कहीं मैं उसके साथ बेवफाई कर जाऊँ तो वह अनाथ न हो जाय। जब मैं उसका बिना कौड़ी का गुलाम हूँ तो बेवफाई कैसी? मैं उसके साथ बेवफाई करूँगा, जिसकी एक निगाह के लिए, एक शब्द के लिए तरसता रहता हूँ। कहीं उससे एक बार एकान्त में भेंट हो जाती तो उससे कह देता — तूला, मेरे पास जो कुछ है, वह सब तुम्हारा है। कहीं बखशिशनामा लिख दूँ, कहीं बयनामा लिख दूँ। मुझसे जो अपराध हुआ उसके लिए नादिम हूँ। जायदाद से मनुष्य को जो एक सस्कार-गत प्रेम है, उसी ने मेरे मुँह से वह शब्द निकलवाये। यही रिवाजी लोभ मेरे और तुम्हारे बीच में आकर खड़ा हो गया। पर अब मैंने जाना कि दुनिया में वही चीज़ सबसे कीमती है जिससे जीवन में आनन्द और अनुराग पैदा हो। अगर दरिद्रता और वैराग्य में आनन्द मिले तो वही सबसे प्रिय वस्तु है, जिस पर आदमी जमीन और मिल्कियत सब कुछ होम कर देगा। आज भी लाखों माई के लाल हैं जो ससार के सुखों पर लात मारकर जगलों और पहाड़ों की सैर करने में मस्त हैं। और उस वक्त मैं इतनी मोटी-सी बात न समझा। हाय रे दुर्भाग्य !

६

एक दिन ठाकुर के पास तुलिया ने पैगाम भेजा — मैं बीमार हूँ, आकर देख जाव, कौन जाने बचूँ कि न बचूँ।

इधर कई दिन से ठाकुर ने तुलिया को न देखा था। कई बार उसके द्वार के चक्कर भी लगाये, पर वह न दीख पड़ी। अब जो यह संदेशा मिला तो वह जैसे पहाड़ से नीचे गिर पड़ा। रात के दस बजे होंगे। पूरी बात भी न सुनी और दौड़ा। छाती धड़क रही थी और सिर उड़ा जाता था। तुलिया बीमार है! क्या होगा भगवान! तुम मुझे क्यों नहीं बीमार कर देते? मैं तो उसके बदले मरने को भी तैयार हूँ। दोनों ओर के काले-काले वृक्ष मौत के दूतों की तरह दौड़े चले आते थे। रह-रहकर उसके प्राणों से एक ध्वनि निकलती थी, हसरत और दर्द में डूबी हुई — तुलिया बीमार है!

उसकी तुलिया ने उसे बुलाया है। उस कृतघ्नी, अधम, नीच, हत्यारे को बुलाया है कि आकर मुझे देख जाओ, कौन जाने बचूँ कि न बचूँ। तू अगर न बचेगी तुलिया तो मैं भी न बचूँगा, हाय, न बचूँगा! दीवार से सिर फोड़कर मर जाऊँगा। फिर मेरी और तेरी चिंता एक साथ बनेगी, दोनों के जनाजे एक साथ निकलेगे।

उसने क्रदम और तेज किये। आज वह अपना सब कुछ तुलिया के कदमो पर रख देगा। तुलिया उसे बेवफा समझती है। आज वह दिखायेगा, वफा किसे कहते है। जीवन मे अगर उसने वफा न की तो मरने के बाद करेगा। इस चार दिन की जिन्दगी में जो कुछ न कर सका वह अनन्त युगो तक करता रहेगा। उसका प्रेम कहानी बनकर घर-घर फैल जायगा।

मन में शका हुई, तुम अपने प्राणों का मोह छोड़ सकोगे ? उसने जोर से छाती पीटी और चिल्ला उठा — प्राणो का मोह किसके लिए ? और प्राण भी तो वही है, जो बीमार है। देखूँ मौत कैसे प्राण ले जाती है, और देह को छोड़ देती है।

उसने घड़कते हुए दिल और थरथराते हुए पाँवो से तुलिया के घर मे कदम रक्खा। तुलिया अपनी खाट पर एक चादर ओढे सिमटी पड़ी थी, और लालटेन के अन्धे प्रकाश में उसका पीला मुख मानों मौत की गोद मे विश्राम कर रहा था।

उसने उसके चरणों पर सिर रख दिया और आँसुओ में डूबी हुई आवाज से बोला — तूला, यह अभागा तुम्हारे चरणो पर पडा हुआ है। क्या आँखे न खोलोगी ?

तुलिया ने आँखें खोल दी और उसकी ओर करुण दृष्टि डालकर कराहती हुई बोली — तुम हो गिरघर सिंह, तुम आ गये ? अब मैं आराम से मरूँगी। तुम्हें एक बार देखने के लिए जी बहुत बेचैन था। मेरा कहा-सुना माफ कर देना और मेरे लिए रोना मत। इस मिट्टी की देह मे क्या रक्खा है गिरघर ! वह तो मिट्टी में मिल जायगी। लेकिन मैं कभी तुम्हारा साथ न छोडूँगी। परछाई की तरह नित्य तुम्हारे साथ रहूँगी। तुम मुझे देख न सकोगे, मेरी बाते सुन न सकोगे, लेकिन तुलिया आठों पहर सोते-जागते तुम्हारे साथ रहेगी। मेरे लिए अपने को बदनाम मत करना गिरघर ! कभी किसी के सामने मेरा नाम जबान पर न लाना। हाँ, एक बार मेरी चित्ता पर पानी के छीटे मार देना। इससे मेरे हृदय की ज्वाला शान्त हो जायगी।

गिरघर फूट-फूटकर रो रहा था। हाथ मे कटार होती तो इस वक्त जिगर में मार लेता और उसके सामने तड़पकर मर जाता।

जरा दम लेकर तुलिया ने फिर कहा — मैं बचूँगी नही गिरघर, तुमसे एक बिनती करती हूँ, मानोगे ?

गिरघर ने छाती ठोंककर कहा — मेरी लाश भी तेरे साथ ही निकलेगी तुलिया। अब जीकर क्या करूँगा और जिऊँ भी तो कैसे ? तू मेरा प्राण है तुलिया।

उसे ऐसा मालूम हुआ तुलिया मुस्करायी।

‘नहीं-नहीं, ऐसी नादानी मत करना। तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, उनका पालन करना। अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम है, तो ऐसा कोई काम मत करना जिससे किसी को इस प्रेम की गन्ध भी मिले। अपनी तुलिया को मरने के पीछे बदनाम मत करना।’

गिरधर ने रोकर कहा — जैसी तेरी इच्छा।

‘मेरी तुमसे एक बिनती है।’

‘अब तो जिऊँगा ही इसीलिए कि तेरा हुक्म पूरा करूँ। यही मेरे जीवन का ध्येय होगा।’

‘मेरी यही बिनती है कि अपनी भाभी को उसी तरह मान-मर्यादा के साथ रखना जैसे वह बंसीसिंह के सामने रहती थी। उसका आधा उसको दे देना।’

‘लेकिन भाभी तो तीन महीने से अपने मँके में है, और कह गयी है कि अब कभी न आऊँगी।’

‘यह तुमने बुरा किया है गिरधर, बहुत बुरा किया है। अब मेरी समझ में आया कि क्यों मुझे बुरे-बुरे सपने आ रहे थे। अगर चाहते हो कि मैं अच्छी हो जाऊँ, तो जितनी जल्द हो सके, लिखा-पढी करके कागज-पत्तर मेरे पास रख दो। तुम्हारी यह बददियानती ही मेरी जान का गाहक हो रही है। अब मुझे मालूम हुआ कि बंसीसिंह क्यों मुझे बार-बार सपना देते थे। मुझे और कोई रोग नहीं है। बंसीसिंह ही मुझे सता रहे हैं। बस अभी जाओ। देर की तो मुझे जीता न पाओगे। तुम्हारी बेइन्साफी का दंड बंसीसिंह मुझे दे रहे हैं।’

गिरधर ने दबी ज़बान से कहा — लेकिन रात को कैसे लिखा-पढी होगी तूला ? स्टाम्प कहाँ मिलेगा ? लिखेगा कौन ? गवाह कहाँ है ?

‘कल साँझ तक भी तुमने लिखा-पढी कर ली तो मेरी जान बच जायगी, गिरधर। मुझे बंसीसिंह लगे हुए हैं, वही मुझे सता रहे हैं, इसीलिए कि वह जानते हैं तुम्हें मुझसे प्रेम है। मैं तुम्हारे ही प्रेम के कारन मारी जा रही हूँ। अगर तुमने देर की तो तुलिया को जीता न पाओगे।’

‘मैं अभी जाता हूँ तुलिया। तेरा हुक्म सिर और आँखों पर। अगर तूने पहले ही यह बात मुझसे कह दी होती तो क्यों यह हालत होती ? लेकिन कहीं ऐसा न हो, मैं तुझे देख न सकूँ और मन की लालसा मन में ही रह जाय।’

‘नहीं-नहीं, मैं कल साँझ तक नहीं मरूँगी, विश्वास रखो।’

गिरधर उसी छन वहाँ से निकला और रातों-रात पच्चीस कोस की मजिल काट दी। दिन निकलते-निकलते सदर पहुँचा, वकीलों से सलाह-मशविरा किया,

स्टाम्प लिया, भावज के नाम आधी जायदाद लिखी, रजिस्ट्री करायी, और चिराग जलते-जलते हैरान-परीशान, थका-माँदा, बेदाना-पानी, आशा और दुराशा से काँपता हुआ आकर तुलिया के सामने खड़ा हो गया। रात के दस बजे थे। उस वक़्त न रेले थी, न लारियाँ। बेचारे को पचास कोस की कठिन यात्रा करनी पड़ी। ऐसा थक गया था कि एक-एक पग पहाड़ मालूम होता था। पर भय था कि कहीं देर हो गयी तो अनर्थ हो जायगा।

तुलिया ने प्रसन्न मन से पूछा — तुम आ गये गिरघर ? काम कर आये ?

गिरघर ने कागज उसके सामने रख दिया और बोला — हाँ तूला, कर आया, मगर अब भी तुम अच्छी न हुई तो तुम्हारे साथ मेरी जान भी जायगी। दुनिया चाहे हँसे, चाहे रोये, मुझे परवाह नहीं है। कसम ले लो, जो एक घूँट पानी भी पिया हो।

तुलिया उठ बैठी और कागज को अपने सिरहाने रखकर बोली — अब मैं बहुत अच्छी हूँ। सबेरे तक बिलकुल अच्छी हो जाऊँगी। तुमने मेरे साथ जो नेकी की है, वह मरते दम तक न भूलूँगी। लेकिन अभी-अभी मुझे जरा नीद आ गयी थी। मैंने सपना देखा कि बसीसिंह मेरे सिरहाने खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं, तुलिया तू ब्याहता है, तेरा आदमी हजार कोस पर बैठा तेरे नाम की माला जप रहा है। चाहता तो दूसरी कर लेता, लेकिन तेरे नाम पर बैठा हुआ है और जन्म भर बैठा रहेगा। अगर तूने उससे दगा की तो मैं तेरा दुश्मन हो जाऊँगा, और फिर जान लेकर ही छोड़ूँगा। अपना भला चाहती है तो अपने सत् पर रह। तूने उससे कपट किया, उसी दिन मैं तेरी साँसत कर डालूँगा। बस यह कहकर वह लाल-लाल आँखों से मुझे तरेरते हुए चले गये।

गिरघर ने एक छन तुलिया के चेहरे की तरफ देखा, जिस पर इस समय एक दैवी तेज विराज रहा था, और एकाएक जैसे उसकी आँखों के सामने से पर्दा हट गया और सारी साजिश समझ में आ गयी। उसने सच्ची श्रद्धा से तुलिया के चरणों को चूमा और बोला — समझ गया तुलिया, तू देवी है।

— चाँद, अप्रैल १९३५

सिद्धान्त का सबसे बड़ा दुश्मन है मुरौवत। कठिनाइयों, बाधाओं, प्रलोभनों का सामना आप कर सकते हैं दृढ़ सकल्प और आत्मबल से। लेकिन एक दिली दोस्त से बेमुरौवती तो नहीं की जाती, सिद्धान्त रहे या जाय। कई साल पहले मैंने जनेऊ हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की थी कि अब कभी किसी की बरात में न जाऊँगा चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। ऐसी विकट प्रतिज्ञा करने की जरूरत क्यों पड़ी, इसकी कथा लम्बी है और आज भी उसे याद करके मेरी प्रतिज्ञा को जीवन मिल जाता है। बरात थी कायस्थों की। समधी थे मेरे पुराने मित्र। बरातियों में अधिकांश जान-पहचान के लोग थे। देहात में जाना था। मैंने सोचा, चलो दो-तीन दिन देहात की सैर रहेगी, चल पड़ा। लेकिन मुझे यह देखकर हैरत हुई कि बरातियों की वहाँ जाकर बुद्धि ही कुछ भ्रष्ट हो गयी है। बात-बात पर झगड़ा-तकरार। सभी कन्या-पक्षवालों से मानों लड़ने को तैयार। यह चीज नहीं आयी, वह चीज नहीं भेजी, यह आदमी है या जानवर, पानी बिना बरफ़ के कौन पियेगा। गधे ने बरफ़ भेजी भी तो दस सेर। पूछो दस सेर बरफ़ लेकर आँखों में लगायें या किसी देवता को चढ़ाये! अजब चिल-पों मची हुई थी। कोई किसी की न सुनता था। समधी साहब सिर पीट रहे थे कि यहाँ उनके मित्रों की जितनी दुर्गति हुई, उसका उन्हें उम्र भर खेद रहेगा। वह क्या जानते थे कि लड़कीवाले इतने गँवार हैं। गँवार क्यों, मतलबी कहिए। कहने को शिक्षित हैं, सम्य हैं, भद्र हैं, धन भी भगवान की दया से कम नहीं, मगर दिल के इतने छोटे। दस सेर बरफ़ भेजते हैं! सिगरेट की एक डिबिया भी नहीं! फँस गया और क्या।

मैंने उनसे बिना सहानुभूति दिखाये कहा — सिगरेट नहीं भेजे तो कौन-सा बड़ा अनर्थ हो गया, खमीरा तम्बाकू तो दस सेर भेज दिया है, पीते क्यों नहीं घोल-घोल कर।

मेरे समधी मित्र ने विस्मयभरी आँखों से मुझे देखा मानों उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हो। ऐसी अनीति!

बोले — आप भी अजीब आदमी है, खमीरा यहाँ कौन पीता है। मुद्दत हुई लोगों ने गुडगुड़ियाँ और फर्शियाँ गुदड़ी बाजार मे बेच डालीं। थोड़े से दकियानूसी अब भी हुक्का गुडगुड़ते है लेकिन बहुत कम। यहाँ तो ईश्वर की कृपा से सभी नयी रोशनी, नये विचार, नये जमाने के लोग है और कन्यावाले यह बात जानते हैं, फिर भी सिगरेट नहीं भेजी। यहाँ कई सज्जन आठ-दस डिबिया रोज पी जाते है। एक साहब तो बारह तक पहुँच जाते है। और चार-पाँच डिबिया तो आम बात है। इतने आदमियों के बीच मे पाँच सौ डिबिया भी न हो तो क्या हो। और बरफ़ देखी आपने, जैसे दबा के लिए भेजी है। यहाँ इतनी बरफ़ घर-घर आती है। मैं तो अकेला ही दस सेर पी जाता हूँ। देहातियों को कभी अकल न आयेगी, पढ़-लिख कितने ही जायें।

मैंने कहा — तो आपको अपने साथ एक गाड़ी सिगरेट और टन भर बरफ़ लेते आना चाहिए था।

वह स्तम्भित हो गये — आप भंग तो नहीं खा गये ?

— जी नहीं, कभी उम्र भर नहीं खायी।

— तो फिर ऐसी ऊल-जलूल बातें क्यों करते हो ?

— मैं तो सम्पूर्णतः अपने होश में हूँ।

— होश में रहनेवाला आदमी ऐसी बात नहीं कर सकता। हम यहाँ लड़का ब्याहने आये है, लड़कीवालों को हमारी सारी फ़रमाइशें पूरी करनी पड़ेगी, सारी। हम जो कुछ माँगेंगे उन्हें देना पड़ेगा, रो-रोकर देना पड़ेगा। दिल्लगी नहीं है। नाकों चने न चबवा दें तो कहिएगा। यह हमारा खुला हुआ अपमान है। द्वार पर बुलाकर ज़लील करना। मेरे साथ जो लोग आये हैं वे नाई-कहार नहीं है, बड़े-बड़े आदमी है। मैं उनकी तौहीन नहीं देख सकता। अगर इन लोगों की यह जिद है तो बरात लौट जायगी।

मैंने देखा यह इस वक़्त ताव में है, इनसे बहस करना उचित नहीं। आज जीवन में पहली बार, केवल दो दिन के लिए, इन्हें एक आदमी पर अधिकार मिल गया है। उसकी गर्दन इनके पाँव के नीचे है। फिर इन्हें क्यों न नशा हो जाय, क्यों न सिर फिर जाय, क्यों न उस पर दिल खोलकर रोब जमायें। वरपक्षवाले कन्यापक्षवालों पर मुद्दतों से हुकूमत करते चले आये है, और उस अधिकार को त्याग देना आसान नहीं। इन लोगों के दिमाग में इस वक़्त यह बात कैसे आयेगी कि तुम कन्यापक्षवाले के मेहमान हो और वे तुम्हें जिस तरह रखना चाहें तुम्हें रहना पड़ेगा। मेहमान को जो

आदर-सत्कार, चूनी-चोकर, रूखा-सूखा मिले, उस पर उसे सन्तुष्ट होना चाहिए। शिष्टता यह कभी गवारा नहीं कर सकती कि वह जिनका मेहमान है, उनसे अपनी खातिरदारी का टैक्स वसूल करे। मैंने वहाँ से टल जाना ही मुनासिब समझा।

लेकिन जब विवाह का मुहूर्त आया, इधर से एक दर्जन बिहस्की की बोतलो की फरमाइश हुई और कहा गया कि जब तक बोतले न आ जायेंगी, हम विवाह-संस्कार के लिए मंडप में न जायेंगे, तब मुझसे न देखा गया। मैंने समझ लिया कि ये सब पशु है, इसानियत से खाली। इनके साथ एक क्षण रहना भी अपनी आत्मा का खून करना है। मैंने उसी वक्त प्रतिज्ञा की कि अब कभी किसी बरात में न जाऊँगा और अपना बोरिया-बकचा लेकर उसी क्षण वहाँ से चल दिया।

इसलिए जब गत मंगलवार को मेरे परम मित्र सुरेश बाबू ने मुझे अपने लड़के के विवाह का निमन्त्रण दिया तो मैंने साहस को दोनो हाथों में पकड़कर कहा — जी नहीं, मुझे क्षमा कीजिए, मैं न जाऊँगा।

उन्होंने खिन्न होकर कहा — आखिर क्यों ?

‘मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि अब किसी बरात में न जाऊँगा।’

‘अपने बेटे की बरात में भी नहीं ?’

‘बेटे की बरात में खुद अपना स्वामी रहूँगा।’

‘तो समझ लीजिए यह आप ही का पुत्र है और आप यहाँ अपने स्वामी है।’

मैं निरुत्तर हो गया। फिर भी मैंने अपना पक्ष न छोड़ा।

‘आप लोग वहाँ कन्यापक्षवालों से सिगरेट, बर्फ, तेल, शराब आदि-आदि चीजों के लिए आग्रह तो न करेंगे ?’

‘भूलकर भी नहीं, इस विषय में मेरे विचार वही हैं जो आपके।’

‘ऐसा तो न होगा कि मेरे जैसे विचार रखते हुए भी आप वहाँ दुराग्रहियों की बातों में आ जायें और वे अपने हथकड़े शुरू कर दें ?’

‘मैं आप ही को अपना प्रतिनिधि बनाता हूँ। आपके फ़ैसले की वहाँ कहीं अपील न होगी।’

दिल में तो मेरे अब भी कुछ सशय था, लेकिन इतना आश्वासन मिलने पर और ज्यादा अड़ना असज्जनता थी। आखिर मेरे वहाँ जाने से यह बेचारे तर तो नहीं जायेंगे। केवल मुझसे स्नेह रखने के कारण ही तो सब कुछ मेरे हाथों में सौंप रहे हैं। मैंने चलने का वादा कर लिया। लेकिन जब सुरेश बाबू बिदा होने लगे तो मैंने घड़े को ज़रा और ठोका —

‘लिन-देन का तो कोई झगड़ा नहीं है?’

‘नाम को नहीं। वे लोग अपनी खुशी से जो कुछ देगे, वह हम ले लेंगे। माँगने न माँगने का अधिकार आपको रहेगा।’

‘अच्छी बात है, मैं चलूँगा।’

शुक्रवार को बरात चली। केवल रेल का सफर था और वह भी पचास मील का। तीसरे पहर के एक्सप्रेस से चले और शाम को कन्या के द्वार पर पहुँच गये। वहाँ हर तरह का सामान मौजूद था। किसी चीज के माँगने की ज़रूरत न थी। बरातियों की इतनी खातिरदारी भी हो सकती है, इसकी मुझे कल्पना भी न थी। घराती इतने विनीत हो सकते हैं, कोई बात मुँह से निकली नहीं कि एक की जगह चार आदमी हाथ बाँधे हाज़िर!

लग्न का मुहूर्त आया। हम सभी मडप में पहुँचे। वहाँ तिल रखने की जगह भी न थी। किसी तरह धँस-धँसाकर अपने लिए जगह निकाली। सुरेश बाबू मेरे पीछे खड़े थे। बैठने को वहाँ जगह न थी।

कन्या-दान संस्कार शुरू हुआ। कन्या का पिता, एक पीताम्बर पहने आकर वर के सामने बैठ गया और उसके चरणों को धोकर उन पर अक्षत, फूल आदि चढ़ाने लगा। मैं अब तक सैकड़ों बरातों में जा चुका था, लेकिन विवाह-संस्कार देखने का मुझे कभी अवसर न मिला था। इस समय वर के सगे-सबधी ही जाते हैं। अन्य बराती जनवासे में पड़े सोते हैं। या नाच देखते हैं, या ग्रामोफोन के रिकार्ड सुनते हैं। और कुछ न हुआ तो कई टोलियों में ताश खेलते हैं। अपने विवाह की मुझे याद नहीं। इस वक्त कन्या के वृद्ध पिता को एक युवक के चरणों की पूजा करते देखकर मेरी आत्मा को चोट लगी। यह हिन्दू विवाह का आदर्श है या उसका परिहास? जामाता एक प्रकार से अपना पुत्र है, उसका धर्म है कि अपने धर्मपिता के चरण धोये, उस पर पान-फूल चढ़ाये। यह तो नीति-संगत मालूम होता है। कन्या का पिता वर के पाँव पूजे यह तो न शिष्टता है, न धर्म, न मर्यादा। मेरी विद्रोही आत्मा किसी तरह शांत न रह सकी। मैंने झल्लाये हुए स्वर में कहा — यह क्या अनर्थ हो रहा है, भाइयो! कन्या के पिता का यह अपमान! क्या आप लोगों में आदमियत रही ही नहीं?

मडप में सन्नाटा छा गया। मैं सभी आँखों का केन्द्र बन गया। मेरा क्या आशय है, यह किसी की समझ में न आया।

आखिर सुरेश बाबू ने पूछा — कैसा अपमान और किसका अपमान? यहाँ तो किसी का अपमान नहीं हो रहा है।

‘कन्या का पिता वर के पाँव पूजे, यह अपमान नहीं तो क्या है ?’

‘यह अपमान नहीं, भाई साहब, प्राचीन प्रथा है।’

कन्या के पिता महोदय बोले — यह मेरा अपमान नहीं है मान्यवर, मेरा अहो-भाग्य कि आज यह शुभ अवसर आया। आप इतने ही से घबरा गये। अभी तो कम से कम एक सौ आदमी पैपुजी के इंतजार में बैठे हुए हैं। कितने ही तरसते हैं कि कन्या होती तो वर के पाँव पूजकर अपना जन्म सफल करते।

मैं लाजवाब हो गया। समधी साहब पाँव पूज चुके तो स्त्रियों और पुरुषों का एक समूह वर की तरफ उमड़ पड़ा और प्रत्येक प्राणी लगा उसके पाँव पूजने। जो आता था, अपनी हैसियत के अनुसार कुछ न कुछ चढ़ा जाता था। सब लोग प्रसन्न-चित्त और गद्गद नेत्रों से यह नाटक देख रहे थे और मैं मन में सोच रहा था — जब समाज में औचित्य ज्ञान का इतना लोप हो गया है और लोग अपने अपमान को अपना सम्मान समझते हैं तो फिर क्यों न स्त्रियों की समाज में यह दुर्दशा हो, क्यों न वे अपने को पुरुष के पाँव की जूती समझें, क्यों न उनके आत्मसम्मान का सर्व-नाश हो जाय !

जब विवाह-संस्कार समाप्त हो गया और वर-वधू मंडप से निकले तो मैंने जल्दी से आगे बढ़कर उसी थाल से थोड़े से फूल चुन लिये और एक अर्द्ध-चेतना की दशा में, न जाने किन भावों से प्रेरित होकर, उन फूलों को वधू के चरणों पर रख दिया, और उसी वृत्त वहाँ से घर चल दिया।

—माघुरी, अक्टूबर १९३५

क्रिकेट मैच

१ जनवरी १९३५

आज क्रिकेट मैच में मुझे जितनी निराशा हुई मैं उसे व्यक्त नहीं कर सकता। हमारी टीम दुश्मनों से कहीं ज्यादा मजबूत थी मगर हमें हार हुई और वे लोग जीत का डका बचाते हुए ट्रॉफी उड़ा ले गये। क्यों? सिर्फ इसलिए कि हमारे यहाँ नेतृत्व के लिए योग्यता शर्त नहीं। हम नेतृत्व के लिए धन-दौलत जरूरी समझते हैं। हिज हाइनेस कप्तान चुने गये, क्रिकेट बोर्ड का फैसला सबको मानना पड़ा। मगर कितने दिलों में आग लगी, कितने लोगों ने हुक्मे हाकिम समझकर इस फैसले को मजूर किया, वह खेलनेवालों से पूछिए। और जहाँ सिर्फ मुंहदेखी है वहाँ उमंग कहाँ, जोश कहाँ, सकल्प कहाँ, खून की आखिरी बूँद गिरा देने का उत्साह कहाँ। हम खेले और जाहिरा दिल लगाकर खेले। मगर यह सच्चाई के लिए जान देनेवालों की फौज न थी। खेल में किसी का दिल न था।

मैं स्टेशन पर खड़ा अपना तीसरे दर्जे का टिकट लेने की फिक्र में था कि एक युवती ने जो अभी कार से उतरी थी आगे बढ़कर मुझसे हाथ मिलाया और बोली — आप भी तो इसी गाड़ी से चल रहे हैं मिस्टर जफ़र ?

मुझे हैरत हुई कि यह कौन लड़की है और इसे मेरा नाम क्योंकर मालूम हो गया। मुझे एक पल के लिए सकता-सा हो गया कि जैसे शिष्टाचार और अच्छे आचरण की सब बातें दिमाग से गायब हो गयी हों। सौन्दर्य में एक ऐसी शान होती है जो बड़ों-बड़ों का सिर झुका देती है। मुझे अपनी तुच्छता की ऐसी अनुभूति कभी न हुई थी। मैंने निज़ाम हैदराबाद से, हिज़्र एक्सलेन्सी वायसराय से, महाराज मैसूर से हाथ मिलाया, उनके साथ बैठकर खाना खाया मगर यह कमजोरी मुझ पर कभी न छापी थी। बस यही जी चाहता था कि अपनी पलकों से उसके पाँव चूम लूँ। यह वह सलोनापन न था जिस पर हम जान देते हैं, न वह नज़ाकत जिसकी कवि लोग कसमें खाते हैं। उस जगह बुद्धि की कांति थी, गभीरता थी, गरिमा थी, उमंग थी और थी आत्म-अभिव्यक्ति की निस्सकोच लालसा। मैंने सवाल भरे अंदाज़ से कहा — जी हाँ।

यह कैसे पूछूँ कि मेरी आपसे भेंट कब हुई। उसकी बेतकल्लुफी कह रही थी वह मुझसे परिचित है। मैं बेगाना कैसे बनूँ। इसी सिलसिले में मैंने अपने मर्द होने का फर्ज़ भी अदा कर दिया — मेरे लिए कोई खिदमत ?

उसने मुस्कराकर कहा — जी हाँ, आपसे बहुत से काम लूँगी। चलिए, अदर वेटिंग रूम में बैठें। लखनऊ जा रहे होंगे ? मैं भी वही चल रही हूँ।

वेटिंग रूम आकर उसने मुझे आरामकुर्सी पर बिठाया और खुद एक मामूली कुर्सी पर बैठकर सिगरेट केस मेरी तरफ बढ़ाती हुई बोली — आज तो आपकी बॉर्लिंग बड़ी भयानक थी, वरना हम लोग पूरी इनिंग से हारते।

मेरा ताज्जुब और भी बढ़ा। इस सुन्दरी को क्या क्रिकेट से भी शौक है। मुझे उसके सामने आरामकुर्सी पर बैठते झिझक हो रही थी। ऐसी बदतमीजी मैंने कभी न की थी। ध्यान उसी तरफ लगा था। तबियत में कुछ घुटन-सी हो रही थी। रगों में वह तेजी और तबियत में वह गुलाबी नशा न था जो ऐसे मौके पर स्वभावतः मुझ पर छा जाना चाहिए था। मैंने पूछा — क्या आप वही तशरीफ रखती थीं ?

उसने अपना सिगरेट जलाते हुए कहा — जी हाँ, शुरू से आखिर तक। मुझे तो सिर्फ आपका खेल ज़ाँचा। और लोग तो कुछ बेदिल से हो रहे थे और मैं उसका राज समझ रही हूँ। हमारे यहाँ लोगों में सही आदमियों को सही जगह पर रखने का माद्दा ही नहीं है। जैसे इस राजनीतिक पस्ती ने हमारे सभी गुणों को कुचल डाला हो। जिसके पास धन है उसे हर चीज़ का अधिकार है। वह किसी ज्ञान-विज्ञान के, साहित्यिक-सामाजिक जलसे का सभापति हो सकता है, इसकी योग्यता उसमें हो या न हो। नयी इमारतों का उद्घाटन उसके हाथों कराया जाता है, बुनियादे उसके हाथों रखवायी जाती है, सांस्कृतिक आंदोलनों का नेतृत्व उसे दिया जाता है, वह कान्फ़ेक्शन के भाषण पढ़ेगा, लड़कों को इनाम बाँटेगा, यह सब हमारी दास-मनोवृत्ति का प्रसाद है। कोई ताज्जुब नहीं कि हम इतने नीचे और गिरे हुए हैं। जहाँ हुकम और अख़्तियार का मामला है वहाँ तो ख़ैर मजबूरी है, हमें लोगों के पैर चूमने ही पड़ते हैं मगर जहाँ हम अपने स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र आचरण से काम ले सकते हैं वहाँ भी हमारी जी हुजूरी की आदत हमारा गला नहीं छोड़ती। इस टीम का कप्तान आपको होना चाहिए था, तब देखती कि दुश्मन क्योंकर बाज़ी ले जाता। महाराजा साहब में इस टीम का कप्तान बनने की इतनी ही योग्यता है जितनी आप में असेम्बली का सभापति बनने की या मुझमें सिनेमा ऐक्टिंग की।

बिल्कुल वही भाव जो मेरे दिल में था मगर उसकी ज़बान से निकलकर कितने असरदार और कितने आँख खोलनेवाले हो गये। मैंने कहा — आप ठीक कहती हैं। सचमुच यह हमारी कमजोरी है।

— आपको इस टीम में शरीक न होना चाहिए था।

— मैं मजबूर था।

इस सुन्दरी का नाम मिस हेलेन मुकर्जी है। अभी इंग्लैण्ड से आ रही है। यही क्रिकेट मैच देखने के लिए बम्बई उतर गयी थी। इंग्लैण्ड में उसने डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की है और जनता की सेवा उसके जीवन का लक्ष्य है। वहाँ उसने एक अखबार में मेरी तस्वीर देखी थी और मेरा जिक्र भी पढ़ा था तब से वह मेरे लिए अच्छा खयाल रखती है। यहाँ मुझे खेलते देखकर वह और भी प्रभावित हुई। उसका इरादा है कि हिन्दुस्तान की एक नयी टीम तैयार की जाय और उसमें वही लोग लिये जायें जो राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के अधिकारी हैं। उसका प्रस्ताव है कि मैं इस टीम का कप्तान बनाया जाऊँ। इसी इरादे से वह सारे हिन्दुस्तान का दौरा करना चाहती है। उसके स्वर्गीय पिता डा० एन० मुकर्जी ने बहुत काफ़ी सम्पत्ति छोड़ी है और वह उसकी सम्पूर्ण उत्तराधिकारिणी है। उसके प्रस्ताव सुनकर मेरा सर आसमान में उड़ने लगा। मेरी जिन्दगी का सुनहरा सपना इतने अप्रत्याशित ढंग से वास्तविकता का रूप ले सकेगा, यह कौन सोच सकता था। अलौकिक शक्ति में मेरा विश्वास नहीं मगर आज मेरे शरीर का रोआँ-रोआँ कृतज्ञता और भक्ति भावना से भरा हुआ था। मैंने उचित और विनम्र शब्दों में मिस हेलेन को धन्यवाद दिया।

गाड़ी की घण्टी हुई। मिस मुकर्जी ने फ़र्स्ट क्लास के दो टिकट मँगवाये। मैं विरोध न कर सका। उसने मेरा लगेज उठवाया, मेरा हैट खुद उठा लिया और बेघड़क एक कमरे में जा बैठी और मुझे भी अदर बुला लिया। उसका खानसामा तीसरे दर्जे में बैठा। मेरी क्रिया-शक्ति जैसे खो गयी थी। मैं भगवान् जाने क्यों इन सब मामलों में उसे अगुवाई करने देता था जो पुरुष होने के नाते मेरे अधिकार की चीज थी। शायद उसके रूप, उसकी बौद्धिक गरिमा, उसकी उदारता ने मुझ पर रोब डाल दिया था कि जैसे उसने कामरूप की जादूगरनियों की तरह मुझे भेड़ बना लिया हो और मेरी अपनी इच्छा-शक्ति लुप्त हो गयी हो। इतनी ही देर में मेरा अस्तित्व उसकी इच्छा में खो गया था। मेरे स्वाभिमान की यह माँग थी कि मैं उसे अपने लिए फ़र्स्ट क्लास का टिकट न मँगवाने देता और तीसरे ही दर्जे

में आराम से बैठता और अगर पहले दर्जे में बैठना था तो इतनी ही उदारता से दोनों के लिए खुद पहले दर्जे का टिकट लाता, लेकिन अभी तो मेरी क्रियाशक्ति लुप्त हो गयी थी।

२ जनवरी — मैं हैरान हूँ हेलेन को मुझसे इतनी हमदर्दी क्यों है, और यह सिर्फ दोस्ताना हमदर्दी नहीं है। इसमें मुहब्बत की सच्चाई है। दया में तो इतना आतिथ्य-सत्कार नहीं हुआ करता, और रही मेरे गुणों की स्वीकृति, तो मैं अकल से इतना खाली नहीं हूँ कि इस धोखे में पड़ूँ। गुणों की स्वीकृति ज़्यादा से ज़्यादा एक सिगरेट और एक प्याली चाय पा सकती है। यह सेवा-सत्कार तो मैं वही पाता हूँ जहाँ किसी मैच में खेलने के लिए मुझे बुलाया जाता है। तो भी वहाँ भी इतने हार्दिक ढंग से मेरा सत्कार नहीं होता, सिर्फ रस्मी खातिरदारी बरती जाती है। उसने जैसे मेरी सुविधा और मेरे आराम के लिए अपने को समर्पित कर दिया हो। मैं तो शायद अपनी प्रेमिका के सिवा और किसी के साथ इस हार्दिकता का बर्ताव न कर सकता। याद रहे, मैंने प्रेमिका कहा है पत्नी नहीं कहा। पत्नी की हम खातिरदारी नहीं करते, उससे तो खातिरदारी करवाना ही हमारा स्वभाव हो गया है और शायद सच्चाई भी यही है। मगर फ़िलहाल तो मैं इन दोनों नेमतों में से एक का भी हाल नहीं जानता। उसके नाश्ते, डिनर, लच में तो मैं शरीक था ही, हर स्टेशन पर (वह डाक थी और खास-खास स्टेशनों पर ही सकती थी) मेवे और फल मँगवाती और मुझे आग्रहपूर्वक खिलाती। कहाँ की क्या चीज़ मशहूर है इसका उसे खूब पता है। मेरे दोस्तों और घरवालों के लिए तरह-तरह के तोहफ़े खरीदे मगर हैरत यह है कि मैंने एक बार भी उसे मना न किया। मना क्योंकि करता, मुझसे पूछकर तो लाती नहीं। जब वह एक चीज़ लाकर मुहब्बत के साथ मुझे भेंट करती है तो मैं कैसे इन्कार करूँ। खुदा जाने क्यों मैं मर्द होकर भी उसके सामने औरत की तरह शर्माँला, कम बोलनेवाला हो जाता हूँ कि जैसे मेरे मुँह में ज़बान ही नहीं। दिन की थकान की वजह से रात भर मुझे बेचैनी रही। सर में हल्का-सा दर्द था मगर मैंने इस दर्द को बढ़ाकर कहा। अकेला होता तो शायद इस दर्द की ज़रा भी परवाह न करता मगर आज उसकी मौजूदगी में मुझे उस दर्द को ज़ाहिर करने में मज़ा आ रहा था। वह मेरे सर में तैल की मालिश करने लगी और मैं खामखाह निढाल हुआ जाता था। मेरी बेचैनी के साथ उसकी परीशानी

बढ़ती जाती थी। मुझे बार-बार पूछनी, अब दर्द कैसा है और मैं अनमने ढग से कहता — अच्छा हूँ। उसकी नाजुक हथेलियों के स्पर्श से मेरे प्राणों में गुदगुदी होती थी। उसका वह आकर्षक चेहरा मेरे सर पर झुका है, उसकी गर्म साँसें मेरे माथे को चूम रही है और मैं गोया जन्नत के मञ्जे ले रहा हूँ। मेरे दिल में अब उस पर फ़नेह पाने की ख़्वाहिश झकोले ले रही है। मैं चाहता हूँ वह मेरे नाज़ उठाये। मेरी तरफ से कोई ऐसी पहल न होनी चाहिए जिससे वह समझ जाये कि मैं उस पर लट्टू हो गया हूँ। चौबीस घंटे के अन्दर मेरी मनःस्थिति में कैसे यह क्रांति हो जाती है, मैं क्योकर प्रेम के प्रार्थी से प्रेम का पात्र बन जाता हूँ। वह बदस्तूर उसी तल्लीनता से मेरे सिर पर हाथ रखे बैठी हुई है। तब मुझे उस पर रहम आ जाता है और मैं भी उस एहसास से बरी नहीं हूँ मगर इस मासूकी में आज जो लुत्फ आया उस पर आशिकी निखावर है। मुहब्बत करना गुलामी है, मुहब्बत किया जाना बादशाहत।

मैंने दया दिखलाते हुए कहा — आपको मेरी वजह से बड़ी तकलीफ हुई।

उसने उमगकर कहा — मुझे क्या तकलीफ हुई। आप दर्द से बेचैन थे और मैं बैठी थी। काश यह दर्द मुझे हो जाता।

मैं सातवे आसमान पर उड़ा जा रहा था।

५ जनवरी — कल शाम को हम लखनऊ पहुँच गये। रास्ते में हेलेन से सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक प्रश्नों पर खूब बातें हुईं। ग्रेजुएट तो भगवान की दया से मैं भी हूँ और तब से फुर्सत के वक़्त किताबें भी देखता ही रहा हूँ, विद्वानों की सगत में भी बैठा हूँ लेकिन उसके ज्ञान के विस्तार के आगे कदम-कदम पर मुझे अपनी हीनता का बोध होता है। हर एक प्रश्न पर उसकी अपनी राय है और मालूम होता है कि उसने छान-बीन के बाद वह राय कायम की है। उसके विपरीत मैं उन लोगों में हूँ जो हवा के साथ उड़ते हैं, जिन्हें क्षणिक प्रेरणाएँ उलट-पलटकर रख देती हैं। मैं कोशिश करता था कि किसी तरह उस पर अपनी अक्ल का सिक्का जमा दूँ मगर उसके दृष्टिकोण मुझे बेज़बान कर देते थे। जब मैंने देखा कि ज्ञान-विज्ञान की बातों में मैं उससे न जीत सकूँगा तो मैंने एबीसीनिया और इटली की लडाई का जिक्र छेड़ दिया जिस पर मैंने अपनी समझ में बहुत कुछ पढा था और इंग्लैण्ड और फ्रांस ने इटली पर जो दबाव डाला है उसकी तारीफ़ में मैंने अपनी सारी वाक्-शक्ति खर्च कर दी। उसने एक मुस्कराहट के साथ कहा—आपका

यह खयाल है कि इंगलैण्ड और फ्रांस सिर्फ इंसानियत और कमजोर की मदद करने की भावना से प्रभावित हो रहे हैं तो आपकी गलती है। उनकी साम्राज्य-लिप्सा यह नहीं बर्दाश्त कर सकती कि दुनिया की कोई दूसरी ताकत फले-फूले। मुसोलिनी वही कर रहा है जो इंगलैण्ड ने कितनी ही बार किया है और आज भी कर रहा है। यह सारा बहुरूपियापन सिर्फ एबीसीनिया में व्यावसायिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए है। इंगलैण्ड को अपने व्यापार के लिए बाजारों की जरूरत है, अपनी बड़ी हुई आबादी के लिए जमीन के टुकड़ों की जरूरत है, अपने शिक्षितों के लिए ऊँचे पदों की जरूरत है तो इटली को क्या न हो। इटली जो कुछ कर रहा है ईमानदारी के साथ एलानिया कर रहा है। उसने कभी दुनिया के सब लोगों के भाईचारे का डका नहीं पीटा, कभी शांति का राग नहीं अलापा। वह तो साफ कहता है कि सघर्ष ही जीवन का लक्षण है। मनुष्य की उन्नति लडाई ही के जरिये होती है। आदमी के अच्छे गुण लडाई के मैदान में ही खुलते हैं। सबकी बराबरी के दृष्टिकोण को वह पागलपन कहता है। वह अपना शुमार भी उन्ही बड़ी कौमों में करता है जिन्हें रगीन आबादियों पर हुकूमत करने का हक है। इसलिए हम उसकी कार्य-प्रणाली को समझ सकते हैं। इंगलैण्ड ने हमेशा घोखेराजी से काम लिया है। हमेशा एक राष्ट्र के विभिन्न तत्वों में भेद डालकर या उनके आपसी विरोधों को राजनीति का आधार बनाकर उन्हें अपना पिछलग्गू बनाया है। मैं तो चाहती हूँ कि दुनिया में इटली, जापान और जर्मनी खूब तरक्की करें और इंगलैण्ड का आधिपत्य टूटे। तभी दुनिया में असली जनतंत्र और शान्ति पैदा होगी। वर्तमान सभ्यता जब तक मिट न जायेगी, दुनिया में शांति का राज्य न होगा। कमजोर कौमों को जिन्दा रहने का कोई हक नहीं, उसी तरह जिस तरह कमजोर पौधों को। सिर्फ इसलिए नहीं कि उनका अस्तित्व स्वयं उनके लिए कष्ट का कारण है बल्कि इसलिए कि वही दुनिया के इस झगड़े और रक्तपात के लिए जिम्मेदार है।

मैं भला क्यों इस बात से सहमत होने लगा। मैंने जवाब तो दिया और इन विचारों का इतने ही जोरदार शब्दों में खडन भी किया। मगर मैंने देखा कि इस मामले में वह सतुलित बुद्धि से काम नहीं लेना चाहती या नहीं ले सकती।

स्टेशन पर उतरते ही मुझे यह फ़िक्र सवार हुई कि हेलेन को अपना मेहमान कैसे बनाऊँ। अगर होटल में ठहराऊँ तो भगवान जाने अपने दिल में क्या कहे। अगर अपने घर ले जाऊँ तो शर्म मालूम होती है। वहाँ ऐसी रुचि-सम्पन्न और

अमीरों जैसे स्वभाववाली युवती के लिए सुविधा की क्या सामग्रियाँ हैं। यह सयोग की बात है कि मैं क्रिकेट अच्छा खेलने लगा और पढ़ना-लिखना छोड़-छाड़कर उसी का हो रहा और एक स्कूल का मास्टर हूँ मगर घर की हालत बदस्तूर है। वही पुराना, अँबेरा, टूटा-फूटा मकान, तग गली में, वही पुराने रंग-ढग, वही पुराना ढक्कर। अम्माँ तो शायद हेलेन को घर में कदम ही न रखने दे। और यहाँ तक नौबत ही क्यों आने लगी, हेलेन खुद दरवाजे ही से भागेगी। काश आज अपना मकान होता, सजा-सँवरा, मैं इस काबिल होता कि हेलेन की मेहमानदारी कर सकता, इससे ज्यादा खुशानसीबी और क्या हो सकती थी लेकिन बेसरोसामानी का बुरा ही।

मैं यही सोच रहा था कि हेलेन ने कुली से असबाब उठवाया और बाहर आकर एक टैक्सी बुला ली। मेरे लिए इस टैक्सी में बैठ जाने के सिवा दूसरा चारा क्या बाक़ी रह गया था। मुझे यकीन है, अगर मैं उसे अपने घर ले जाता तो उस बेसरोसामानी के बावजूद वह श्रुश होती। हेलेन रुचि-सम्पन्न है मगर नखरेबाज नहीं है। वह हर तरह की आज्ञामाईश और तजुबों के लिए तैयार रहती है। हेलेन शायद आज्ञामाईशों को और नागवार तजुबों को बुलाती है। मगर मुझमें न यह कल्पना है न वह साहस।

उसने ज़रा ग़ौर से मेरा चेहरा देखा होता तो उसे मालूम हो जाता कि उस पर कितनी शर्मिन्दगी और कितनी बेचारगी झलक रही थी। मगर शिष्टाचार का निबाह तो ज़रूरी था, मैंने आपत्ति की — मैं तो आपको भी अपना मेहमान बनाना चाहता था मगर आप उल्टा मुझे होटल लिये जा रही हैं।

उसने शरारत से कहा — इसीलिए कि आप मेरे क़ाबू से बाहर न हो जायें। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की बात क्या होती कि आपके आतिथ्य-सत्कार का आनंद उठाऊँ लेकिन प्रेम ईर्ष्यालु होता है, यह आपको मालूम है। वहाँ आपके इष्ट मित्र आपके वक्त का बड़ा हिस्सा लेंगे, आपको मुझसे बात करने का वक्त ही न मिलेगा और मर्द आम तौर पर कितने बेमुरब्बत और जल्द भूल जानेवाले होते हैं इसका मुझे अनुभव हो चुका है। मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी अलग नहीं छोड़ सकती। मुझे अपने सामने देखकर तुम मुझे भूलना भी चाहो तो नहीं भूल सकते।

मुझे अपनी इस खुशानसीबी पर हैरत ही नहीं, बल्कि ऐसा लगने लगा कि जैसे सपना देख रहा हूँ। जिस सुन्दरी की एक नज़र पर मैं अपने को कुर्बान कर देता वह इस तरह मुझसे मुहब्बत का इजहार करे। मेरा तो जी चाहता था कि इसी

बात पर उसके क़दमों को पकड़कर सीने से लगा लूँ और आँसुओं से तर कर दूँ।

होटल में पहुँचे। मेरा कमरा अलग था। खाना हमने साथ खाया और थोड़ी देर तक वहीं हरी-हरी घास पर टहलते रहे। खिलाड़ियों को कैसे चुना जाय, यही सवाल था। मेरा जी तो यही चाहता था कि सारी रात उसके साथ टहलता रहूँ लेकिन उसने कहा — आप अब आराम करें, सुबह बहुत काम है। मैं अपने कमरे में जाकर लेट रहा मगर सारी रात नीद नहीं आयी। हेलेन का मन अभी तक मेरी आँखों से छिपा हुआ है, हर क्षण वह मेरे लिए पहेली होती जा रही है।

१२ जनवरी — आज दिन भर लखनऊ के क्रिकेटरों का जमाव रहा। हेलेन दीपक थी और प्रतिगो उसके गिर्द मँडरा रहे थे। यहाँ से मेरे अलावा दो लोगो का खेल हेलेन को बहुत पसंद आया — बृजेन्द्र और सादिक। हेलेन उन्हें आल इंडिया टीम में रखना चाहती थी। इसमें कोई शक नहीं कि दोनों इस फन के उस्ताद हैं लेकिन उन्होंने जिस तरह शुरुआत की है उससे तो यही मालूम होता है कि वह क्रिकेट खेलने नहीं अपनी किस्मत की बाज़ी खेलने आये है। हेलेन किस भिजाज की औरत है, यह समझना मुश्किल है। बृजेन्द्र मुझसे ज्यादा सुन्दर है यह मैं स्वीकार करता हूँ, रहन-सहन से पूरा साहब है। लेकिन पक्का शोहदा, लोफर। मैं नहीं चाहता कि हेलेन उससे किसी तरह का सन्नव रखे। अदब तो उसे छू नहीं गया। बदजवान परले सिर्रे का, बेहूदा गन्दे मजाक, बातचीत का ढंग नहीं और मौके-महल की समझ नहीं। कभी-कभी हेलेन से ऐसे मतलब-भरे इशारे कर जाता है कि मैं शर्म से सिर झुका लेता हूँ लेकिन हेलेन को शायद उसका बाज़ारूनन, उसका छिछोरापन महसूस नहीं होता। नहीं, वह शायद उसके गंदे इशारों का मज़ा लेती है। मैंने कभी उसके माथे पर शिकन नहीं देखी। यह मैं नहीं कहता कि यह हँसमुखपन कोई बुरी चीज़ है, न जिन्दादिली का मैं दुश्मन हूँ लेकिन एक लेडी के साथ तो अदब और कायदे का लिहाज रखना ही चाहिए।

सादिक एक प्रतिष्ठित कुल का दीपक है, बहुत ही शुद्ध-आचरण, यहाँ तक कि उसे ठण्डे स्वभाव का भी कह सकते हैं, बहुत घमंडी, देखने में चिडचिडा लेकिन अब वह भी शहीदों में दाखिल हो गया है। कल आप हेलेन को अपने शेर सुनाते

रहे और वह खुश होती रही। मुझे तो उन शेरों में कुछ मजा न आया। इससे पहले मैंने इन हजरत को कभी शायरी करते नहीं देखा, यह मस्ती कहाँ से फट पड़ी है? रूप में जादू की ताकत है और क्या कहूँ। इतना भी न सूझा कि उसे शेर ही सुनाना है तो हसरत या जिगर या जोश के कलाम से दो-चार शेर याद कर लेता। हेलेन सबका कलाम पढे थोड़े ही बैठी है। आपको शेर कहने की क्या जरूरत मगर यही बात उनसे कह दूँ तो बिगड़ जायेगे, समझेगे मुझे जलन हो रही है। मुझे क्यों जलन होने लगी। हेलेन की पूजा करनेवालों में एक मैं ही हूँ? हाँ इतना जरूर चाहता हूँ कि वह अच्छे-बुरे की पहचान कर सके, हर आदमी से बेतकलुफी मुझे पसन्द नहीं, मगर हेलेन की नज़रों में सब बराबर है। वह बारी-बारी से सबसे अलग हो जाती है और सबसे प्रेम करती है। किसी की ओर ज्यादा झुकी हुई है, यह फैसला करना मुश्किल है। सादिक की धन-सम्पत्ति से वह जरा भी प्रभावित नहीं जान पड़ती। कल शाम को हम लोग सिनेमा देखने गये थे। सादिक ने आज असाधारण उदारता दिखायी। जब से वह रूपा निकालकर सबके लिए टिकट लेने चले। मियाँ सादिक जो इस अमीरी के बावजूद तगदिल आदमी है, मैं तो कजूस कहूँगा, हेलेन ने उनकी उदारता को जगा दिया है। मगर हेलेन ने उन्हे रोक लिया और खुद अदर जाकर सबके लिए टिकट लायी। और यो भी वह इतनी बेदर्दी से रुपया खर्च करती है कि मियाँ सादिक के छक्के छूट जाते हैं। जब उनका हाथ जब में जाता है, हेलेन के रुपये काउन्टर पर जा पहुँचते हैं। कुछ भी हो, मैं तो हेलेन के स्वभाव-ज्ञान पर जान देता हूँ। ऐसा मालूम होता है वह हमारी फर्माइशों का इन्तज़ार करती रहती है और उनको पूरा करने में उसे खास मजा आता है। सादिक साहब को उसने अलबम भेंट कर दिया जो योरोप के दुर्लभ चित्रों की अनुकृतियों का सग्रह है और जो उसने योरोप की तमाम चित्रशालाओं में जाकर खुद इकट्ठा किया है। उसकी आँखें कितनी सौन्दर्य-प्रेमी हैं। बृजेन्द्र जब शाम को अपना नया सूट पहनकर आया, जो उसने अभी सिलाया है, तो हेलेन ने मुस्कराकर कहा — देखो कहीं नज़र न लग जाय तुम्हें! आज तो तुम दूसरे यूसुफ बने हुए हो। बृजेन्द्र बाग-बाग हो गया। मैंने जब लय के साथ अपनी ताज़ा गज़ल सुनायी तो वह एक-एक शेर पर उछल-उछल पड़ी। अद्भुत काव्यमर्मज्ञ है। मुझे अपनी कविता-रचना पर इतनी खुशी कभी न हुई थी मगर तारीफ जब सबका बुलैवा हो जाये तो उसकी क्या कीमत। मियाँ सादिक को कभी अपनी सुन्दरता का दावा नहीं हुआ। भीतरी सौन्दर्य से आप जितने मालामाल है बाहरी सौन्दर्य में

उतने ही कगाल। मगर आज शराब के दौर में ज्योंही उनकी आँखों में सुर्खी आयी हेलेन ने प्रेम से पगे हुए स्वर में कहा — भइ, तुम्हारी ये आँखें तो जिगर के पार हुई जाती हैं। और सादिक साहब उस वक्त्र उसके पैरों पर गिरते-गिरते रुक गये। लज्जा बाधक हुई। उनकी आँखों की ऐसी तारीफ शायद ही किसी ने की हो। मुझे कभी अपने रूत-रग, चाल-ढाल की तारीफ सुनने की इच्छा नहीं हुई। मैं जो कुछ हूँ, जानता हूँ। मुझे अपने बारे में यह धोखा कभी नहीं हो सका कि मैं खूबसूरत हूँ। यह भी जानता हूँ कि हेलेन का यह सब सत्कार कोई मतलब नहीं रखता। लेकिन अब मुझे भी यह बेचैनी होने लगी कि देखो मुझ पर क्या इनायत होती है। कोई बात न थी, मगर मैं बेचैन रहा। जब मैं शाम को यूनिवर्सिटी ग्राउण्ड से खेल की प्रैक्टिस करके आ रहा था तो मेरे ये बिखरे हुए बाल कुछ और ज्यादा बिखर गये थे। उसने आसक्त नेत्रों से देखकर फौरन कहा — तुम्हारी इन बिखरी हुई जल्फों पर निसार होने को जी चाहता है! मैं निहाल हो गया, दिल में क्या-क्या तूफान उठे कह नहीं सकता।

मगर खुदा जाने क्यों हम तीनों में से एक भी उसकी किसी अदा या अदाज़ या रूप की प्रशंसा शब्दों में नहीं कर पाता। हमें लगता है कि हमें ठीक शब्द नहीं मिलते। जो कुछ हम कह सकते हैं उसमें कहीं ज्यादा प्रभावित है। कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती।

१ फरवरी — हम दिल्ली आ गये। इस बीच में मुरादाबाद, नैनीताल, देहरादून वगैरह जगहों के दौरे किये मगर कहीं कोई खिलाड़ी न मिला। अलीगढ़ और दिल्ली से कई अच्छे खिलाड़ियों के मिलने की उम्मीद है इसलिए हम लोग वहाँ कई दिन रहेंगे। एलेविन पूरी होते ही हम लोग बम्बई आ जायेंगे और वहाँ एक महीने प्रैक्टिस करेंगे। मार्च में आस्ट्रेलियन टीम यहाँ से रवाना होगी। तब तक वह हिन्दुस्तान में सारे पहले से निश्चित मैच खेल चुकी होगी। हम उससे आखिरी मैच खेलेंगे और खुदा ने चाहा तो हिन्दुस्तान की सारी शिकस्तों का बदला चुका देंगे। सादिक और बृजेन्द्र भी हमारे साथ घूमते रहे। मैं तो न चाहता था कि ये लोग आये मगर हेलेन को शायद प्रेमियों के जमघट में मजा आता है। हम सब के सब एक ही होटल में हैं और सब हेलेन के मेहमान हैं। स्टेशन पर पहुँचे तो सैकड़ों आदमी हमारा स्वागत करने के लिए मौजूद थे। कई औरतें भी थी

लेकिन हेलेन को न मालूम क्यों औरतों से आपत्ति है। उनकी सगत से भागती है, खासकर सुन्दर औरतों की छाया से भी दूर रहती है हालाँकि उसे किसी सुन्दरी से जलने का कोई कारण नहीं है। यह मानते हुए भी कि हुस्न उस पर ख़त्म नहीं हो गया है, उसमें आकर्षण के ऐसे तत्व मौजूद हैं कि कोई परी भी उसके मुकाबले में नहीं खड़ी हो सकती। नख-शिख ही तो सब कुछ नहीं है। रुचि का सौन्दर्य, बातचीत का सौन्दर्य, अदाओं का सौन्दर्य भी तो कोई चीज़ है। प्रेम उसके दिल में है या नहीं खुदा जाने लेकिन प्रेम के प्रदर्शन में वह बेजोड़ है। दिलजोई और नाज़बरदारी के फन में हम जैसे दिलदारों को भी उससे शर्मिन्दा होना पड़ता है। शाम को हम लोग नयी दिल्ली की सैर को गये। दिलकश जगह है, खुली हुई सड़के, जमीन के खूबसूरत टुकड़े, सुहानी रविशे। उसको बनाने में सरकार ने बेदरोग रुपया खर्च किया है और बेज़रूरत। यह रकम रियाया की भलाई पर खर्च की जा सकती थी मगर इसको क्या कीजिए कि जनसाधारण इसके निर्माण से जितने प्रभावित है उतने अपनी भलाई की किसी योजना से न होते। आप दस-पाँच मदरसे ज्यादा खोल देते या सड़कों की मरम्मत में या, खेती की जाँच पड़ताल में इस रुपये को खर्च कर देते मगर जनता को शान-शौकत, धन-वैभव से आज भी जितना प्रेम है उतना आपके रचनात्मक कामों से नहीं है। बादशाह की जो कल्पना उसके रोम-रोम में घुल गयी है वह अभी सदियों तक न मिटेगी। बादशाह के लिए शान-शौकत जरूरी है। पानी की तरह रुपया बहाना जरूरी है। किफ़ायतशार या कजूस बादशाह चाहे वह एक-एक पैसा प्रजा की भलाई के लिए खर्च करे, इतना लोकप्रिय नहीं हो सकता। अग्रेज मनोविज्ञान के पंडित है। अग्रेज ही क्यों हर एक बादशाह जिसने अपने बाहुबल और अपनी बुद्धि से यह स्थान प्राप्त किया है स्वभावतः मनोविज्ञान का पंडित होता है। इसके बाँर जनता पर उसे अधिकार क्योंकर प्राप्त होता। खैर, यह तो मैंने यूँही कहा। मुझे ऐसा अदेशा हो रहा है कि शायद हमारी टीम सपना ही रह जाये। अभी से हम लोगों में अनबन रहने लगी है। बृजेन्द्र क्रदम-क्रदम पर मेरा विरोध करता है। मैं आम कहूँ तो वह अदबदाकर इमली कहेगा और हेलेन को उससे प्रेम है। जिन्दगी के कैसे-कैसे मीठे सपने देखने लगा था मगर बृजेन्द्र-कृतघ्न स्वार्थी बृजेन्द्र मेरी जिन्दगी तबाह किये डालता है। हम दोनों हेलेन के प्रिय पात्र नहीं रह सकते, यह तय बात है; एक को मैदान से हटना पड़ेगा।

७ फ़रवरी — शुक्र है दिल्ली में हमारा प्रयत्न सफल हुआ। हमारी टीम में तीन नये खिलाड़ी जुड़े—जाफ़र, मेहरा और अर्जुन सिंह। आज उनके कमाल देखकर आस्ट्रेलियन क्रिकेटर्स की धाक मेरे दिल से जाती रही। तीनों गेद फेंकते हैं। जाफ़र अचूक गेद फेंकता है, मेहरा सब्र की आजमाइश करता है और अर्जुन बहुत चालाक है, तीनों दृढ़ स्वभाव के लोग हैं, निगाह के सच्चे और अथक। अगर कोई इन्साफ़ से पूछे तो मैं कहूँगा कि अर्जुन मुझसे बेहतर खेलता है। वह दो बार इंग्लैण्ड हो आया है। अँग्रेजी रहन-सहन से परिचित है और मिज़ाज पहचानने-वाला भी अब्बल दर्जे का है, सम्यता और आचार का पुतला। बृजेन्द्र का रग फीका पड़ गया। अब अर्जुन पर खास कृपा-दृष्टि है और अर्जुन पर फ़तह पाना मेरे लिए आसान नहीं है, मुझे तो डर है वह कहीं मेरी राह का रोड़ा न बन जाये।

२५ फरवरी — हमारी टीम पूरी हो गयी। दो प्लेयर हमें अलीगढ़ से मिले, तीन लाहौर से और एक अजमेर से और कल हम बम्बई आ गये। हमने अजमेर, लाहौर और दिल्ली में वहाँ की टीमों से मैच खेले और उन पर बड़ी शानदार फतह पायी। अ.ज. बम्बई की हिन्दू टीम से हमारा मुकाबला है और मुझे यकीन है कि मैदान हमारे हाथ रहेगा। अर्जुन हमारी टीम का सबसे अच्छा खिलाड़ी है और हेलेन उसकी इतनी ख़ातिरदारी करती है कि मुझे जलन नहीं होती। इतनी ख़ातिरदारी तो मेहमान की ही की जा सकती है। मेहमान से क्या डर। मुझे की बात यह है कि हर व्यक्ति अपने को हेलेन का कृपा-पात्र समझता है और उससे अपने नाज़ उठवाता है। अगर किसी के सिर में दर्द है तो हेलेन का फर्ज है कि उसकी मिज़ाजपुर्सी करे, उसके सर में चदन तक घिसकर लगा दे। मगर उसके साथ ही उसका रोब हर एक के दिल पर इतना छाया हुआ है कि कोई उसके किसी काम की आलोचना करने का साहस नहीं कर सकता। सब के सब उसकी मर्जी के गुलाम हैं। वह अगर सबके नाज़ उठाती है तो हुकूमत भी हर एक पर करती है। शामियाने में एक से एक सुन्दर औरतों का जमवट है मगर हेलेन के क़ैदियों की मजाल नहीं कि किसी की तरफ देखकर मुस्करा भी सके। हर एक के दिल पर ऐसा डर छाया रहता है कि जैसे वह हर जगह पर मौजूद है। अर्जुन ने एक मिस पर यूँ ही कुछ नज़र डाली थी, हेलेन ने ऐसी प्रलय की आँख से उसे देखा कि सरदार साहब का रग उड़ गया। हर एक समझता है कि वह उसकी तक्रदीर की मालिक

है और उसे अपनी तरफ से नाराज करके वह शायद जिन्दा न रह सकेगा। औरों की तो मैं क्या कहूँ, मैंने ही गोया अपने को उसके हाथों बेच दिया है। मुझे तो अब ऐसा लग रहा है कि मुझमें कोई ऐसी चीज खत्म हो गयी है जो पहले मेरे दिल में डाह की आग-सी जला दिया करती थी। हेलेन अब किसी से बोले, किसी से प्रेम की बातें करे, मुझे गुस्सा नहीं आता। दिल पर चोट लगती जरूर है मगर उसका इजहार अकेले में आँसू बहाकर करने को जी चाहता है। वह स्वाभिमान कहाँ गायब हो गया नहीं कह सकता। अभी उसकी नाराजगी से दिल के टुकड़े हो गये थे कि एकाएक उसकी एक उचटती हुई-सी निगाह ने या एक मुस्कराहट ने गुदगुदी पैदा कर दी। मालूम नहीं उसमें वह कौन-सी ताकत है जो इतने हौसलामद नौजवान दिलों पर हुकूमत कर रही है। उसे बहादुरी कहूँ, चालाकी और फूर्ती कहूँ, हम सब जैसे उसके हाथों की कठपुतलियाँ हैं। हममें अपनी कोई शक्तिशयत, कोई हस्ती नहीं है। उसने अपने सौन्दर्य से, अपनी बुद्धि से, अपने धन से और सबसे ज्यादा सबको समेट सकने की अपनी ताकत से हमारे दिलों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है।

१ मार्च — कल आस्ट्रेलियन टीम से हमारा मैच खत्म हो गया। पचास हज़ार से कम तमाशाइयो की भीड़ न थी। हमने पूरी इनिंग्स से उनको हराया और देव-ताओं की तरह पुजे। हममें से हर एक ने दिलोजान से काम किया और सभी एकसाँ तौर पर फूले हुए थे। मैच खत्म होते ही शहरवालों की तरफ़ से हमें एक शानदार पार्टी दी गयी। ऐसी पार्टी तो शायद वाइसराय के सम्मान में भी न दी जाती होगी। मैं तो तारीफ़ों और बधाइयो के बोझ से दब गया। मैंने ४४ रनों में पाँच खिलाड़ियों का सफाया कर दिया था। मुझे खुद अपने भयानक गेद फेकने पर अचरज हो रहा था। जरूर कोई अलौकिक शक्ति हमारा साथ दे रही थी। इस भीड़ में बम्बई का सौन्दर्य अपनी पूरी शान और रंगीनी के साथ चमक रहा था और मुझे दावा है कि सुन्दरता की दृष्टि से यह शहर जितना भाग्यशाली है दुनिया का कोई दूसरा शहर शायद ही हो। मगर हेलेन इस भीड़ में भी सबकी दृष्टियों का केन्द्र बनी हुई थी। यह जालिम महज हसीन नहीं है, भीठा बोलती भी है और उसकी अदाएँ भी मीठी हैं। सारे नौजवान परवानों की तरह उस पर मँडला रहे थे, एक से एक खूबसूरत, मनचले, और हेलेन उनकी भावनाओं से खेल

रही थी, उसी तरह जैसे वह हम लोगों की भावनाओं से खेला करती थी। महाराज-कुमार जैसा सुन्दर जवान मैंने आज तक नहीं देखा। सूरत से रोब टपकता है। उनके प्रेम ने कितनी सुन्दरियों को दुख दिया है कौन जाने। मर्दाना दिलकशी का जादू-सा बिखरता चलता है। हेलेन उनसे भी वैसी ही आजाद बेतकल्लुफी से मिली जैसे दूसरे हजारों नौजवानों से। उनके सौन्दर्य का, उनकी दौलत का उस पर ज़रा भी असर न था। न जाने इतना गर्व, इतना स्वाभिमान उसमें कहाँ से आ गया है। कभी नहीं डगमगाती, कही रोब में नहीं आती, कभी किसी की तरफ नहीं झुकती। वही हँसी-मजाक है, वही प्रेम का प्रदर्शन, किसी के साथ कोई विशेषता नहीं, दिलजोई सब की मगर उसी बेपरवाही की शान के साथ।

हम लोग सैर करके कोई दस बजे रात को होटल पहुँचे तो सभी जिन्दगी के नये सपने देख रहे थे। सभी के दिलों में एक धुकधुकी-सी ही रही थी कि देखे अब क्या होता है। आशा और भय ने सभी के दिलों में एक तूफान-सा उठा रक्खा था गोया आज हर एक के जीवन की एक स्मरणीय घटना होनेवाली है। अब क्या प्रोग्राम है, इसकी किसी को खबर न थी। सभी जिन्दगी के सपने देख रहे थे। हर एक के दिल पर एक पागलपन सवार था। हर एक को यकीन था कि हेलेन की खास दृष्टि उस पर है मगर यह अदेशा भी हर एक के दिल में था कि खुदा न खास्ता कही हेलेन ने बेवफाई की तो यह जान उसके कदमों पर रख देगा, यहाँ से जिन्दा घर जाना कयामत था।

उसी वक्त हेलेन ने मुझे अपने कमरे में बुला भेजा। जाकर देखता हूँ तो सभी खिलाड़ी जमा है। हेलेन उस वक्त अपनी शर्बती बेलदार साड़ी में आँखों में चकाचौंव पैदा कर रही थी। मुझे उस पर झूँझलाहट हुई, इस आम मजमे में मुझे बुलाकर कवायद कराने की क्या ज़रूरत थी। मैं तो खास बर्ताव का अधिकारी था। मैं भूल रहा था कि शायद इसी तरह उनसे से हर एक अपने को खास बर्ताव का अधिकारी समझता हो।

हेलेन ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा — दोस्तो, मैं कह नहीं सकती कि आप लोगों की कितनी कृतज्ञ हूँ और आपने मेरी जिन्दगी की कितनी बड़ी आरजू पूरी कर दी। आप में से किसी को मिस्टर रतन लाल की याद आती है ?

रतन लाल ! उसे भी कोई भूल सकता है ! वह जिसने पहली बार हिन्दुस्तान की क्रिकेट टीम को इंग्लैण्ड की धरती पर अपने जौहर दिखाने का मौका दिया, जिसने अपने लाखों रुपये इस चीज की नज़र किये और आखिर बारबार

की पराजयों से निराश होकर वही इंग्लैण्ड में आत्म-हत्या कर ली। उसकी वह सूरत अब भी हमारी आँखों के सामने फिर रही है।

सब ने कहा — खूब अच्छी तरह, अभी बात ही कै दिन की है।

‘आज इस शानदार कामयाबी पर मैं आपको बधाई देती हूँ। भगवान ने चाहा तो अगले साल हम इंग्लैण्ड का दौरा करेंगे। आप अभी से इस मोर्चे के लिए तैयारियाँ कीजिए। लुटफ तो जब है कि हम वहाँ एक मैच भी न हारे, मैदान बराबर हमारे हाथ रहे। दोस्तों, यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। किसी लक्ष्य को पूरा करने के लिये जो काम किया जाता है उसी का नाम जिन्दगी है। हमें कामयाबी वहीं होती है जहाँ हम अपने पूरे हौसले से काम में लगे हो, वही लक्ष्य हमारा स्वप्न हो, हमारा प्रेम हो, हमारे जीवन का केन्द्र हो। हमने और इस लक्ष्य के बीच में और कोई इच्छा, कोई आरजू दीवार की तरह न खड़ी हो। माफ कीजिएगा आपने अपने लक्ष्य के लिए जीना नहीं सीखा। आपके लिए क्रिकेट सिर्फ एक मनोरंजन है। आपको उससे प्रेम नहीं। इसी तरह हमारे सैकड़ों दोस्त हैं जिनका दिल कहीं और होता है, दिमाग कहीं और, और वह सारी जिन्दगी नाकाम रहते हैं। आपके लिए मैं ज्यादा दिलचस्पी की चीज़ थी, क्रिकेट तो सिर्फ मुझे खुश करने का ज़रिया था। फिर भी आप कामयाब हुए। मुल्क में आप जैसे हजारों नौजवान हैं, जो अगर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए जीना और मरना सीख जायें तो चमत्कार कर दिखायें। जाइए और वह कमाल हासिल कीजिए। मेरा रूप और मेरी रातें वासना का खिलौना बनने के लिए नहीं हैं। नौजवानों की आँखों को खुश करने और उनके दिलों में मस्ती पैदा करने के लिए जीना मैं शर्मनाक समझती हूँ। जीवन का लक्ष्य इससे कहीं ऊँचा है। सच्ची जिन्दगी वही है जहाँ हम अपने लिए नहीं सबके लिए जीते हैं।’

हम सब सिर झुकाये सुनते रहे और झल्लाते रहे। हेलेन कमरे से निकलकर कार पर जा बैठी। उसने अपने रवानगी का इन्तजाम पहले ही कर लिया था। इसके पहले कि हमारे होश-हवास सही हों और हम परिस्थिति समझे, वह जा चुकी थी।

हम सब हफ़्ते भर तक बंबई की गलियों, होटलों, बँगलों की खाक छानते रहे, हेलेन कहीं न थी। और ज्यादा अफ़सोस यह है कि उसने हमारी जिन्दगी का जो आइडियल रखा वह हमारी पहुँच से ऊँचा है। हेलेन के साथ हमारी जिन्दगी का सारा जोश और उमग ख़त्म हो गयी।

कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो

उन दिनों दूध की तकलीफ थी। कई डेरी फार्मों की आजमाइश की, अहीरों का इम्तहान लिया, कोई नतीजा नहीं। दो-चार दिन तो दूध अच्छा मिलता फिर मिलावट शुरू हो जाती। कभी शिकायत होती दूध फट गया, कभी उसमें से नागवार बू आने लगती, कभी मक्खन के रेजे निकलते। आखिर एक दिन एक दोस्त से कहा — भाई, आओ साझे में एक गाय ले ले। तुम्हें भी दूध का आराम होगा, मुझे भी। लागत आधी आधी, खर्च आधा आधा, दूध भी आधा आधा। दोस्त साहब राजी हो गये। मेरे घर में जगह न थी और गोबर वगैरह से मुझे नफ़रत है। उनके मकान में काफी जगह थी इसलिए प्रस्ताव हुआ कि गाय उन्हीं के घर रहे। इसके बदले में उन्हें गोबर पर एकछत्र अधिकार रहे। वह उसे पूरी आज्ञादी से पाये, उपले बनाये, घर लीपें, पडोसियों को दें या उसे किसी आयुर्वेदिक उपयोग में लाये, इकरार करनेवाले को इसमें किसी प्रकार की आपत्ति या प्रतिवाद न होगा और इकरार करनेवाला सही होश-ह्वास में इकरार करता है कि वह गोबर पर कभी अपना अधिकार जमाने की कोशिश न करेगा और न किसी को उसे इस्तेमाल करने के लिए आमदा करेगा।

दूध आंने लगा, रोज-रोज की झंझट से मुक्ति मिली। एक हफ़्ते तक किसी तरह की शिकायत न पैदा हुई। गरम-गरम दूध पीता था और खुश होकर गाता था —

रब का शुक्र अदा कर भाई जिसने हमारी गाय बनाई।
ताजा दूध पिलाया उसने लुत्फ़े-हयात चखाया उसने।
दूध में भीगी रोटी मेरी उसके करम ने बख़्शी सेरी।
खुदा की रहमत की है मूरत कौसी भोली-भाली सूरत।

मगर धीरे-धीरे यहाँ भी पुरानी शिकायतें पैदा होने लगी। यहाँ तक नौबत

पहुँची कि दूध सिर्फ नाम का दूध रह गया। कितना ही उबालो न कही मलाई का पता न मिठास। पहले तो शिकायत कर लिया करता था, इससे दिल का बुखार निकल जाता था। शिकायत से सुधार न होता तो दूध बन्द कर देता था। अब तो शिकायत का भी मौका न था, बन्द कर देने का जिन्न ही क्या। भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर, पियो या नाले में डाल दो। आठ आने रोज का नुस्खा किस्मत में लिखा हुआ। बच्चा दूध को मुँह न लगाता, पीना तो दूर रहा। आधो आध शक्कर डालकर कुछ दिनो दूध पिलाया तो फोडे निकलने शुरू हुए और मेरे घर में रोज बमचख मची रहती थी। बीवी नौकर से फरमाती — दूध ले जाकर उन्हीं के सर पटक आ। मैं नौकर को मना करता। वह कहती — अच्छे दोस्त है तुम्हारे, उसे शरम भी नहीं आती। क्या इतना अहमक है कि इतना भी नहीं समझता कि यह लोग दूध देखकर क्या कहेंगे! गाय को अपने घर मँगवा लो, बला से बदबू आयगी, मच्छर होंगे, दूध तो अच्छा मिलेगा। रुपये खर्च है तो उसका मजा तो मिलेगा।

चड्ढा साहब मेरे पुराने मेहरबान है। खासी बेतकल्लुफी है उनसे। यह हरकत उनकी जानकारी में होती हो यह बात किसी तरह गले के नीचे नहीं उतरती। या तो उनकी बीवी की शरारत है या नौकर की लेकिन जिन्न कैसे करूँ। और फिर उनकी बीवी से भी तो राह-रस्म है। कई बार मेरे घर आ चुकी है। मेरी बीवी जी भी उनके यहाँ कई बार मेहमान जा चुकी है। क्या वह यकायक इतनी बेवकूफ हो जायेगी, सरीहन आँखों में धूल झोंकेगी! और फिर चाहे किसी की शरारत हो, मेरे लिए यह गैरमुमकिन था कि उनसे दूध की खराबी की शिकायत करता। खैरियत यह हुई कि तीसरे महीने चड्ढा का तबादला हो गया। मैं अकेले गाय रख न सकता था। साझा टूट गया। गाय आधे दामो बेच दी गयी। मैंने उस दिन इल्मीनान की साँस ली।

आखिर यह सलाह हुई कि एक बकरी रख ली जाय। वह बीच आँगन के एक कोने में पड़ी रह सकती है। उसे दुहने के लिए न ग्वाले की जरूरत न उसका गोबर उठाने, माँद धोने, चारा-भूसा डालने के लिए किसी अहीरिन की जरूरत। बकरी तो मेरा नौकर भी आसानी से दुह लेगा। थोड़ी-सी चोकर डाल दी, चलिये किस्सा तमाम हुआ। फिर बकरी का दूध फायदेमन्द भी ज़्यादा है, बच्चों के लिए खास तौर पर। जल्दी हजम होता है, न गर्मी करे न सर्दी, स्वास्थ्यवर्द्धक है। संयोग से मेरे यहाँ जो पड्डित जी मेरे मसौदे नकल करने आया करते थे, इन मामलों

में काफी तजुर्बेकार थे। उनसे जिक्र आया तो उन्होंने एक बकरी की ऐसी स्तुति गायी, उसका ऐसा कसीदा पढ़ा कि मैं बिन देखे ही उसका प्रेमी हो गया। पछाँही नसल की बकरी है, ऊँचे कद की, बड़े-बड़े थन जो जमीन से लगते चलते है। बेहद कमखोर लेकिन बेहद दुघार। एक वक्त में दो-ढाई सेर दूध ले लीजिए। अभी पहली बार ही बियाई है। पच्चीस रुपये मे आ जायगी। मुझे दाम कुछ ज्यादा मालूम हुए लेकिन पडितजी पर मुझे एतबार था। फ़रमाइश कर दी गयी और तीसरे दिन बकरी आ पहुँची। मैं देखकर उछल पड़ा। जो-जो गुण बताये गये थे उनसे कुछ ज्यादा ही निकले। एक छोटी-सी मिट्टी की नाँद मँगवायी गयी, चोकर का भी इन्तज़ाम हो गया। शाम को मेरे नौकर ने दूध निकाला तो सचमुच ढाई सेर। मेरी छोटी पतीली लबालब भर गयी थी। अब मूसलों ढोल बजायेगे। यह मसला इतने दिनों के बाद जाकर कहीं हल हुआ। पहले ही यह बात सूझती तो क्यों इतनी परेशानी होती। पडितजी का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया। मुझे सबरे तड़के और शाम को उसके सींग पकड़ने पड़ते थे तब आदमी दुह पाता था। लेकिन यह तकलीफ इस दूध के मुकाबले मे कुछ न थी। बकरी क्या है, कामधेनु है। बीबी ने सोचा इसे कहीं नजर न लग जाय इसलिए उसके थन के लिए एक गिलाफ़ तैयार हुआ, उसकी गर्दन में नीले चीनी के दानों का एक माला पहनाया गया। घर मे जो कुछ जूठा बचता, देवी जी खुद जाकर उसे खिला आती थीं।

लेकिन एक ही हफ्ते में दूध की मात्रा कम होने लगी। जरूर नजर लग गयी। बात क्या है। पण्डित जी से हाल कहा तो उन्होंने कहा — साहब, देहात की बकरी है, जमीन्दार की ! बेदरेग अनाज खाती थी और सारे दिन बाग मे घूमा-चरा करती थी। यहाँ बँधे-बँधे दूध कम हो जाये तो ताज्जुब नहीं। इसे ज़रा टहला दिया कीजिए।

लेकिन शहर में बकरी को टहलाये कौन और कहाँ ? इसलिए यह तय हुआ कि बाहर कहीं मकान लिया जाय। वहाँ बस्ती से जरा निकलकर खेत और बाग होंगे, कहार घण्टे-दो घण्टे टहला लाया करेगा। झटपट मकान बदला और गो कि मुझे दफ़्तर आने-जाने में तीन मील का फ़ासला तय करना पड़ता था लेकिन अच्छा दूध मिले तो मैं इसका दुगना फ़ासला तय करने को तैयार था। यहाँ मकान खूब खुला हुआ था, मकान के सामने सहन था, ज़रा और बढ़कर आम और महुए वगैरह का बाग। बाग से निकलिए तो काछियों के खेत थे, किसी में

आलू, किसी में गोभी। एक काछी से तय कर लिया कि रोजाना बकरी के लिए कुछ हरियाली दे जाया करे। मगर इतनी कोशिश करने पर भी दूध की मात्रा में कुछ खास बढ़ती नहीं हुई। ढाई सेर की जगह मुश्किल से सेर भर दूध निकलता था लेकिन यह तस्कीन थी कि दूध खालिस है, यही क्या कम है।

मैं यह कभी नहीं मान सकता कि खिदमतगारी के मुकाबले में बकरी चराना ज्यादा जलील काम है। हमारे देवताओं और नबियो का बहुत सम्मानित बर्ग गल्ले चराया करता था। कृष्ण जी गाये चराते थे। कौन कह सकता है कि उस गल्ले में बकरियाँ न रही होंगी। हजरत ईसा और हजरत मुहम्मद दोनों ही भेड़े चराते थे। लेकिन आदमी रूढ़ियों का दास है। जो कुछ बुजुर्गों ने नहीं किया उसे वह कैसे करे। नये रास्ते पर चलने के लिए जिस संकल्प और दृढ़ आस्था की जरूरत है वह हर एक में तो होती नहीं। घोबी आपके गन्दे कपड़े धो लेगा लेकिन आपके दरवाजे पर झाड़ू लगाने में अपनी हतक समझता है। जरायमपेशा कौमों के लोग बाजार से कोई चीज क्रीमत देकर खरीदना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। मेरे खिदमतगार को बकरी लेकर बाग में जाना बुरा मालूम होता था। घर से तो ले जाय लेकिन बाग में उसे छोड़कर खुद किसी पेड़ के नीचे सो जाता। बकरी पत्तियाँ चर लेती थी। मगर एक दिन उसके जी में आया कि जरा बाग से निकलकर खेतों की सैर करे। यों वह बहुत ही सभ्य और सुसंस्कृत बकरी थी, उसके चेहरे से गम्भीरता झलकती थी। लेकिन बाग और खेत में उसे एकसाँ आजादी नहीं है, इसे वह शायद न समझ सकी। एक रोज किसी खेत में घुस गयी और गोभी की कई बथारियाँ साफ कर गयी। काछी ने देखा तो उसके कान पकड़ लिये और मेरे पास लाकर बोला — बाबूजी, इस तरह आपकी बकरी हमारे खेत चरेगी तो हम तो तबाह हो जायेंगे। आपको बकरी रखने का शौक है तो इसे बाँधकर रखिये। आज तो हमने आपका लिहाज किया लेकिन फिर हमारे खेत में गयी तो हम या तो उसकी टाँग तोड़ देंगे या कानीहौद भेज देंगे।

अभी वह अपना भाषण खतम न कर पाया था कि उसकी बीवी आ पहुँची और उसने इसी विचार को और भी जोरदार शब्दों में अदा किया — हाँ हाँ करती ही रही मगर राँड खेत में घुस गयी और सारा खेत चौपट कर दिया, इसके पेट में भवानी बैठे! यहाँ कोई तुम्हारा दबैल नहीं है। हाकिम होंगे अपने घर के होंगे। बकरी रखना है तो बाँधकर रखो नहीं गला ऐठ दूँगी!

मैं भीगी बिल्ली बना हुआ खड़ा था। जितनी फटकार आज सहनी पड़ी

उतनी जिन्दगी मे कभी न सही। और जिस धीरज से आज काम लिया अगर उससे दूसरे मौको पर काम लिया होता तो आज आदमी होता। कोई जवाब ही न सूझता था। बस यही जी चाहता था कि बकरी का गला घोट दूँ और खिदमतगार को डेढ़ सौ हण्टर जमाऊँ। मेरी खामोशी से वह औरत और भी शेर होती जाती थी। आज मुझे मालूम हुआ कि किन्हीं-किन्हीं मौकों पर खामोशी नुकसान-देह नाबित होती है। खैर मेरी बीबी ने घर मे यह गुल-गपाडा सुना तो दरवाखे पर आ गयी और हेकडी से बोली — तू कानीहौज पहुँचा दे और क्या करेगी, नाहक टर्र टर्र कर रही है, घण्टे भर से। जानवर ही है, एक दिन खुल गयी तो क्या उसकी जान लेगी? खबरदार जो एक बात भी मुँह से निकाली होगी। क्यों नही खेत के चारो तरफ झाड लगा देती, काँटो से रूँध दे। अपनी गलती तो मानती नहीं, ऊपर से लडने आयी है। अभी पुलिस मे इत्तला कर दे तो बँबे-बँबे फिरो।

वात कहने की इस शासनपूर्ण शैली ने उन दोनों को ठडा कर दिया। लेकिन उनके चले जाने के वाद मैंने देवी जी की खूब खबर ली — गरीबो का नुकसान भी करती हो ऊपर से रोब जमाती हो। इसी का नाम इंसाफ है ?

देवी जी ने गर्बपूर्वक उत्तर दिया — मेरा एहसान तो न मानोगे कि शैतानों को कितनी आसानी से भगा दिया, लगे उल्टे डाँटने। गँवारो को राह बतलाने का सख्ती के सिवा दूसरा कोई तरीका नही। सज्जनता या उदारता उनकी समझ में नही आती। उसे यह लोग कमजोरी समझते है और कमजोर को कौन नहीं दबाना चाहता।

खिदमतगार से जवाब तलब किया तो उसने साफ कह दिया — साहब बकरी चराना मेरा काम नही है।

मैने कहा — तुमसे बकरी चराने को कौन कहता है, जरा उसे देखते रहा करो कि किसी खेत मे न जाय, इतना भी तुमसे नही हो सकता ?

‘मै बकरी नहीं चरा सकता साहब, कोई दूसरा आदमी रख लीजिए।’

खाखिर मैने खुद शाम को उसे बाग में चरा लाने का फैसला किया। इतने ज़रा से काम के लिए एक नया आदमी रखना मेरी हैसियत से बाहर था। और अपने इस नौकर को जवाब भी नही देना चाहता था जिसने कई साल तक वफादारी से मेरी सेवा की थी और ईमानदार था। दूसरे दिन मै दफतर से ज़रा जल्द चला आया और चटपट बकरी को लेकर बाग मे जा पहुँचा। जाड़ों के दिन थे। ठण्डी हवा चल रही थी। पेड़ों के नीचे सूखी पत्तियाँ गिरी हुई थी। बकरी पत्तियों

पर टूटी पड़ती थी गोया महीनों की भूखी हो। अभी इस पेड़ के नीचे थी, एक पल में वह जा पहुँची। मेरी दलेल हो रही थी, उसके पीछे-पीछे दौड़ता फिरता था। दपतर से लौटकर जरा आराम किया करता था, आज यह कवायद करना पड़ी, थक गया, मगर मेहनत सुफल हो गयी, आज बकरी ने कुछ ज्यादा दूध दिया। ✓

यह खयाल आया, अगर सूखी पत्तियाँ खाने से दूध की मात्रा बढ़ गयी तो यकीनन हरी पत्तियाँ खिलायी जायँ तो इससे कहीं बेहतर नतीजा निकले। लेकिन हरी पत्तियाँ आये कहाँ से? पेड़ों से तोड़ूँ तो बाग का मालिक जरूर एतराज करेगा, कीमत देकर हरी पत्तियाँ मिल न सकती थी। सोचा क्यों न एक बार बाँस के लगे से पत्तियाँ तोड़े। मालिक ने शोर मचाया तो उससे आरजू-मिन्नत कर लेंगे। राजी हो गया तो खैर, नहीं देखी जायगी। थोड़ी-सी पत्तियाँ तोड़ लेने से पेड़ का क्या बिगडा जाता है। चुनाचे एक पडोसी से एक पतला लम्बा बाँस माँग लाया, उसमे एक आँकुस बाँधा और शाम को बकरी को साथ लेकर पत्तियाँ तोड़ने लगा। चौर आँखों से इधर-उधर देखता जाता था, कहीं मालिक तो नहीं आ रहा है। अचानक वही काछी एक तरफ से आ निकला और मुझे पत्तियाँ तोड़ते देखकर बोला — यह क्या करते हो बाबू जी, आपके हाथ मे यह लग्गा अच्छा नहीं लगता। बकरी पालना हम गरीबों का काम है कि आप जैसे सरीफों का। मैं कट गया, कुछ जवाब न सूझा। इसमे क्या बुराई है, अपने हाथ से अपना काम करने में क्या शर्म वगैरह जवाब कुछ हलके, बेहकीकत, बनावटी मालूम हुए। सफेदपोशी के आत्मगौरव ने जबान बन्द कर दी। काछी ने पास आकर मेरे हाथ से लग्गा ले लिया और देखते-देखते हरी पत्तियों का ढेर लगा दिया और पूछा — पत्तियाँ कहाँ रख आऊँ।

मैंने झेपते हुए कहा — तुम रहने दो मैं उठा ले जाऊँगा।

उसने थोड़ी-सी पत्तियाँ बगल मे उठा लीं और बोला — आप क्या पत्तियाँ रखने जायँगे, चलिए मैं रख आऊँ।

मैंने बरामदे मे पत्तियाँ रखवा लीं। उसी पेड़ के नीचे उसकी चौगुनी पत्तियाँ पड़ी हुई थीं, काछी ने उनका एक गट्ठा बनाया और सर पर लादकर चला गया। अब मुझे मालूम हुआ, यह देहाती कितने चालाक होते हैं। कोई बात मतलब से खाली नहीं।

मगर दूसरे दिन बकरी को बाग में ले जाना मेरे लिए कठिन हो गया। काछी

फिर देखेगा और न जाने क्या-क्या फिकरे चुस्त करे। उसकी नजरों में गिर जाना मुँह में कालिख लगाने से कम शर्मनाक न था। हमारे सम्मान और प्रतिष्ठा की जो कसौटी लोगो ने बना रखी है, हमको उसका आदर करना पडेगा, नक्कू बनकर रहे तो क्या रहे।

लेकिन बकरी इतनी आसानी से अपनी निर्द्वन्द्व आजाद चहलकदमी से हाथ न खीचना चाहती थी जिसे उसने अपनी साधारण दिनचर्या समझना शुरू कर दिया था। शाम होते ही उसने इतने जोर-शोर से प्रतिवाद का स्वर उठाया कि घर में बैठना मुश्किल हो गया। गिटकिरीदार 'मे मे' का निरन्तर स्वर आ-आकर कान के पर्दों को क्षत-विक्षत करने लगा। कहाँ भाग जाऊँ? बीबी ने उसे गालियाँ देना शुरू की। मैंने गुस्से में आकर कई डंडे रसीद किये, मगर उसे सत्याग्रह स्थगित न करना था न किया। बड़े सकट में जान थी।

आखिर मजबूर हो गया। अपने किये का क्या इलाज! आठ बजे रात जाडो के दिन। घर से बाहर मुँह निकालना मुश्किल और मैं बकरी को बाग में टहला रहा था और अपनी किस्मत को कोस रहा था। अँधेरे में पाँव रखते मेरी रूह काँपती है। एक बार मेरे सामने से एक साँप निकल गया था। अगर उसके ऊपर पैर पड जाता तो ज़रूर काट लेता। तब से मैं अँधेरे में कभी न निकलता था। मगर आज इस बकरी के कारण मुझे इस खतरे का भी सामना करना पडा। ज़रा भी हवा चलती और पत्ते खडकते तो मेरी आँखें ठिठुर जाती और पिंडलियाँ काँपने लगतीं। शायद उस जनम में मैं बकरी रहा हूँगा और यह बकरी मेरी मालकिन रही होगी। उसी का प्रायश्चित्त इस जिन्दगी में भोग रहा था। बुरा हो उस पंडित का, जिसने यह बला मेरे सिर मढ़ी। गिरस्ती भी जजाल है। बच्चा न होता तो क्यो इस मूजी जानवर की इतनी खुशामद करनी पडती। और यह बच्चा बड़ा हो जायगा तो बात न सुनेगा, कहेगा, आपने मेरे लिये क्या किया है। कौन-सी जायदाद छोड़ी है! यह सजा भुगतकर नौ बजे रात को लौटा। अगर रात को बकरी मर जाती तो मुझे जरा भी दुःख न होता।

दूसरे दिन सुबह से ही मुझे यह फिक्र सवार हुई कि किसी तरह रात की बेगार से छुट्टी मिले। आज दफ्तर में छुट्टी थी। मैंने एक लम्बी रस्सी मँगवायी और शाम को बकरी के गले में रस्सी डाल एक पेड की जड से बाँधकर सो गया — अब चरे जितना चाहे। अब चिराग जलते-जलते खोल लाऊँगा। छुट्टी थी ही, शाम को सिनेमा देखने की ठहरी। एक अच्छा-सा खेल आया हुआ था। नौकर को

भी साथ लिया वर्ना बच्चे को कौन सँभालता। जब नौ बजे रात को घर लौटे और मैं लालटेन लेकर बकरी लेने गया तो क्या देखता हूँ कि उसने रस्सी को दो-तीन पेड़ों में लपेटकर ऐसा उलझा डाला है कि सुलझना मुश्किल है। इतनी रस्सी भी न बची थी कि वह एक कदम भी चल सकती। लाहौलविलाकूवत, जी मे आया कि कम्बख्त को यही छोड़ दूँ, मरती है तो मर जाय, अब इतनी रात को लालटेन की रोशनी से कौन रस्सी सुलझाने बैठे। लेकिन दिल न माना। पहले उसकी गर्दन से रस्सी खोली, फिर उसकी पंच-दर-पंच ऐठन छुड़ायी, एक घटा लग गया। मारे सर्दी के हाथ ठिठुरे जाते थे और जी जल रहा था वह अलग। यह तरकीब और भी तकलीफदेह साबित हुई।

अब क्या करूँ कुछ अक़ल काम न करती थी। दूध का ख़याल न होना तो किसी को मुफ्त दे देता। शाम होते ही चुडैल अपनी चीख-पुकार शुरू कर देगी और घर में रहना मुश्किल हो जायगा, और आवाज भी कितनी कर्कश और मनहूस होती है। शास्त्रों में लिखा भी है, जितनी दूर उसकी आवाज जाती है उतनी दूर देवता नहीं आते। स्वर्ग की बसनेवाली हस्तियाँ, जो अप्सराओं के गाने सुनने की आदी हैं, उसकी कर्कश आवाज से नफरत करे तो क्या ताज्जुब ! मुझ पर उसकी कर्णकटु पुकारों का ऐसा आतक सवार था कि दूसरे दिन दफ्तर से आते ही मैं घर से निकल भागा। लेकिन एक मील निकल जाने पर भी ऐसा लग रहा था कि उसकी आवाज मेरा पीछा किये चली आती है। अपने इस चिडचिडेपन पर शर्म भी आ रही थी। जिसे एक बकरी रखने की भी सामर्थ्य न हो वह इतना नाजुक-दिमाग़ क्यों बने और फिर तुम सारी रात तो घर से बाहर रहोगे नहीं, आठ बजे पहुँचोगे तो क्या वह गीत तुम्हारा स्वागत न करेगा ?

सहसा एक नीची शाखोवाला पेड़ देखकर मुझे बरबस उस पर चढ़ने की इच्छा हुई। सपाट तनों पर चढ़ना मुश्किल होता है, यहाँ तो छ सात फुट की ऊँचाई पर शाखे फूट गयी थी। हरी-हरी पत्तियों से पेड़ लदा खड़ा था और पेड़ भी था गूलर का जिसकी पत्तियों से बकरियों को खास प्रेम है। मैं इधर तीस साल से किसी रूख पर नहीं चढ़ा। वह आदत जाती रही। इसलिए आसान चढ़ाई के बावजूद मेरे पाँव काँप रहे थे पर मैंने हिम्मत न हारी और पत्तियाँ तोड़-तोड़ नीचे गिराने लगा। यहाँ अकेले मे कौन मुझे देखता है कि पत्तियाँ तोड़ रहा हूँ। अभी अँधेरा हुआ जाता है। पत्तियों का एक गूँथा बगल में दबाऊँगा और घर जा पहुँचूँगा। अगर इतने पर भी बकरी ने कुछ चीँ-चपड की तो उसकी शामत ही आ जायगी।

मैं अभी ऊपर ही था कि बकरियो और भेड़ों का एक गोल न जाने किधर से आ निकला और पत्तियों पर पिल पडा। मैं ऊपर चीख से रहा हूँ मगर कौन सुनता है। चरवाहे का कहीं पता नहीं। कहीं दुबक रहा होगा कि देख लिया जाऊँगा तो गालियाँ पड़ेगी। झल्लाकर नीचे उतरने लगा। एक-एक पल मे पत्तियाँ गायब होती जाती थी। उतरकर एक-एक की टाँग तोड़ूँगा। यकायक पाँव फिसला और मैं दस फिट की ऊँचाई से नीचे आ रहा। कमर में ऐसी चोट आयी कि पाँच मिनट तक आँखों तले अँधेरा छा गया। खैरियत हुई कि और ऊपर से नहीं गिरा, नहीं तो यहीं शहीद हो जाता। बारे, मेरे गिरने के घमाके से बकरियाँ भागी और थोड़ी-सी पत्तियाँ बच रही। जब जरा होश ठिकाने हुए तो मैंने उन पत्तियों को जमा करके एक गट्ठा बनाया और मजदूरो की तरह उसे कंधे पर रखकर शर्म की तरह छिपाये घर चला। रास्ते में कोई दुर्घटना न हुई। जब मकान कोई चार फर्लांग रह गया और मैंने कदम तेज किये कि कहीं कोई देख न ले तो वह काछी सामने से आता दिखायी दिया। कुछ न पूछो उस वक्त मेरी क्या हालत हुई। रास्ते के दोनों तरफ खेतों की ऊँची मेडे थी जिनके ऊपर नागफनी के कांटे लगे हुए थे। अगर रस्ते रस्ते जाता हूँ तो वह जालिम मेरे बगल से होकर निकलेगा और भगवान जाने क्या सितम ढाये। कहीं मुडने का रास्ता नहीं और वह मरदूद जमदूत की तरह चला आता था। मैंने धोती ऊपर सरकायी, चाल बदल ली और सिर झुकाकर इस तरह निकल जाना चाहता था कि कोई मजदूर है। तले की साँस तले थी, ऊपर की ऊपर, जैसे वह काछी कोई खूँखार शेर हो। बार-बार ईश्वर को याद कर रहा था कि हे भगवान, तू ही आफत के मारे हुआ का मददगार है, इस मरदूद की जबान बन्द कर दे। एक क्षण के लिए, इसकी आँखों की रोशनी गायब कर दे. . .आह, वह यत्रणा का क्षण जब मैं उसके बराबर एक गज के फासले से निकला। एक-एक कदम तलवार की धार पर पड रहा था कि शैतानी आवाज कानों में आयी— कौन है रे, कहाँ से पत्तियाँ तोड़े लाता है।

मुझे मालूम हुआ, नीचे से जमीन निकल गयी है और मैं उसके गहरे पेट में जा पहुँचा हूँ। रोएँ, बछियाँ बने हुए थे, दिमाग में उबाल-सा आ रहा था, शरीर को लकवा-सा मार गया था, जवाब देने का होश न रहा। तेजी से दो-तीन कदम आगे बढ़ गया, मगर वह ऐच्छिक क्रिया न थी, प्राण-रक्षा की सहज क्रिया थी।

कि एक जालिम हाथ गट्ठे पर पड़ा और गट्ठा नीचे गिर पडा। फिर मुझे

याद नहीं, क्या हुआ। मुझे जब होश आया तो मैं अपने दरवाजे पर पसीने में तर खड़ा था गोया मिरगी के दौर के बाद उठा हूँ। इस बीच मेरी आत्मा पर उपचेतना का आधिपत्य था और बकरी की वह घृणित आवाज, वह कर्कश आवाज, वह हिम्मत तोड़नेवाली आवाज, वह दुनिया की सारी मुसीबतों का खुलासा, वह दुनिया की सारी लानतों की रूह कानों में चुभी जा रही थी।

बीबी ने पूछा — आज कहाँ चले गये थे ? इस चुड़ैल को जरा बाग भी न ले गये, जीना मुहाल किये देती है। घर से निकलकर कहाँ चली जाऊँ !

मैंने इत्मीनान दिलाया — आज चिल्ला लेने दो, कल सबसे पहला यह काम करूँगा कि इसे घर से निकाल बाहर करूँगा, चाहे कसाई को देना पड़े।

‘और लोग न जाने कैसे बकरियाँ पालते हैं।’

‘बकरी पालने के लिए कुत्ते का दिमाग चाहिए।’

सुबह को बिस्तर से उठकर इसी फिक्र में बैठा था कि इस काली बला से क्योंकर मुक्ति मिले कि सहसा एक गड़रिया बकरियों का एक गल्ला चराता हुआ आ निकला। मैंने उसे पुकारा और उससे अपनी बकरी को चराने की बात कही। गड़रिया राज़ी हो गया। यही उसका काम था। मैंने पूछा — क्या लोगे ?

‘आठ आने बकरी मिलते हैं हज़ूर।’

‘मैं एक रुपया दूँगा लेकिन बकरी कभी मेरे सामने न आवे।’

गड़रिया हैरत में रह गया — मरकही है क्या बाबूजी ?

‘नहीं, नहीं, बहुत सीधी है, बकरी क्या मारेगी, लेकिन मैं उसकी सूरत नहीं देखनी चाहता।’

‘अभी तो दूध देती है ?’

‘हाँ, सेर-सवा सेर दूध देती है।’

‘दूध आपके घर पहुँच जाया करेगा।’

‘तुम्हारी मेहरबानी।’

जिस वक्त्र बकरी घर से निकली है मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे घर का पाप निकला जा रहा है। बकरी भी खुश थी गोया कैद से छूटी है। गड़रिये ने उसी वक्त्र दूध निकाला और घर में रखकर बकरी को लिये चला गया। ऐसा बेगरज गाहक उसे जिन्दगी में शायद पहली ही बार मिला होगा।

एक हफ्ते तक तो दूध थोड़ा-बहुत आता रहा फिर उसकी मात्रा कम होने लगी यहाँ तक कि एक महीना खतम होते-होते दूध विलकुल बन्द हो गया। मालूम

हुआ बकरी गाभिन हो गयी है। मैंने ज़रा भी एतराज न किया। काछी के पास गाय थी, उससे दूध लेने लगा। मेरा नौकर खुद जाकर दुहा लाता था।

कई महीने गुजर गये। गड़रिया महीने में एक बार आकर अपना रुपया ले जाता। मैंने कभी उससे बकरी का जिक्र न किया। उसके खयाल ही से मेरी आत्मा कॉप जाती थी। गड़रिये को अगर चेहरे का भाव पढ़ने की कला आती होती तो वह बड़ी आसानी से अपनी सेवा का पुरस्कार दुगना कर सकता था।

एक दिन मैं दरवाजे पर बैठा हुआ था कि गड़रिया अपनी बकरियों का गल्ला लिये आ निकल। मैं उसका रुपया लाने अन्दर गया, कि क्या देखता हूँ मेरी बकरी दो बच्चों के साथ मकान में आ पहुँची। वह पहले सीधी उस जगह गयी जहाँ बँधा करती थी फिर वहाँ से आँगन में आयी और शायद परिचय दिखलाने के लिए मेरी बीबी की तरफ ताकने लगी। उन्होंने दौड़कर एक बच्चे को गोद में ले लिया और कोठरी में जाकर महीनों का जमा चोकर निकाल लायीं और ऐसी मुहुब्बत से बकरी को खिलाने लगी कि जैसे बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई सहेली आ गयी हो। न वह पुरानी कटुता थी न वह मनमुटाव। कभी बच्चे को चुमकारती थी, कभी बकरी को सहलाती थी और बकरी डाकगाड़ी की रफ्तार से चोकर उड़ा रही थी।

तब मुझसे बोली — कितने खूबसूरत बच्चे है!

‘हाँ, बहुत खूबसूरत।’

‘जी चाहता है, एक पाल लूँ।’

‘अभी तबियत नहीं भरी।’

‘तुम बड़े निर्मोही हो।’

चोकर खतम हो गया, बकरी इत्मीनान से बिदा हो गयी। दोनों बच्चे भी उसके पीछे फुदकते चले गये। देवी जी आँख में आँसू भरे यह तमाशा देखती रही।

गड़रिये ने चिलम भरी और घर में आग माँगने आया। चलते वक्त बोला — कल से दूध पहुँचा दिया करूँगा मालिक।’

देवीजी ने कहा — और दोनों बच्चे क्या पियेगे ?

‘बच्चे कहीं तक पियेगे बहूजी। दो सेर दूध देती है, अभी दूध अच्छा न होता था, इस मारे नहीं लाया।’

मुझे रात को वह मर्यान्तिक घटना याद आ गयी।

मैंने कहा — दूध लाओ या न लाओ, तुम्हारी खुशी, लेकिन बकरी को इधर न लाना।

कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो

२८३

उस दिन से न वह गड़रिया नज़र आया और न वह बकरी, और न मैंने पता लगाने की कोशिश की। लेकिन देवीजी उसके बच्चों को याद करके कभी-कभी आँसू बहा लेती है।

— 'बारदात' से